सामायिक साधना है। धर्म-ध्यान का उपाय, शुक्ल-ध्यान का उपाय, निर्वाण का उपाय, सामायिक है। सामायिक में कुछ नहीं करना होता है और बिना किये पाँच व्रत पूर्ण हो जाते हैं। ''कुछ न करना ही तो सब कुछ करना है।'' जो क्रियायें, जो परिणतियाँ अनादि से करते आयें हैं उन परिणतियों को उन क्रियाओं को विराम देना ही तो सामायिक है।

सारस्वत कवि श्रमणाचार्य विभवसागर मुनिराज

॥ सारस्वत श्रमण ॥

| | | |
|---|---|---|
| पूर्वनाम | - | पं. अशोक कुमार जैन ''शास्त्री' |
| जन्म | - | 23.10.1976 को, प्रकाशित अमावश्या दीपावली |
| स्थान | - | किशनपुरा (सागर) |
| पिताश्री | - | श्रावक रत्न श्री लखमीचन्द्र जैन |
| माताश्री | - | श्राविका-रत्न श्रीमती गुलाबबाई जैन |
| शिक्षा | - | इण्टर संस्कृत शास्त्री प्रथमवर्ष |
| धार्मिक शिक्षा | - | धर्मशास्त्री द्वितीय वर्ष |
| शिक्षण संस्थान | - | श्री गणेशप्रसाद वर्णी दि. जैन महाविद्यालय, मोराजी, सागर (म. प्र.) |
| वैराग्य | - | 9 अक्टूबर 1994 को ब्रह्मचर्य व्रत लिया |
| क्षुल्लक दीक्षा | - | 28 जनवरी 1996, देवेन्द्र नगर, पन्ना (म.प्र.) |
| ऐलक दीक्षा | - | 23.02.1997, अतिशय क्षेत्र वरासौं, भिण्ड (म.प्र.) |
| मुनि दीक्षा | - | 14.12.1998, अतिशय क्षेत्र वरासौं, भिण्ड (म.प्र.) |
| दीक्षागुरु | - | गणाचार्य श्री 108 विरागसागर जी महाराज |
| आचार्यपद | - | 31 मार्च 2007, औरंगाबाद (महाराष्ट्र) |
| विशेष | - | जैन आगम रूपी मानसरोवर के राजहंस की तरह झलक देने वाले प्रज्ञा श्रमण की प्रवचन शैली जन-जन द्वारा हृदय-ग्राह्य है। |
| अलंकरण | - | 'सारस्वत श्रमण' एवं 'सारस्वत कवि' जबलपुर में 2009 |
| रुचि | - | पठन-पाठन, काव्य सृजन, चिंतन, मनन |
| कृतियां | - | अभी तक आचार्य श्री द्वारा 54 कृतियों की सर्जना की गई है जो इसी पुस्तक में सूचीबद्ध है। |

सामायिक शास्त्र

सारस्वत कवि श्रमणाचार्य विभवसागर मुनिराज

# सामायिक शास्त्र

प्रवचनकार

सारस्वत कवि श्रमणाचार्य विभवसागर मुनिराज

प्रस्तुत कृति ''सामायिक शास्त्र'' आचार्य अमितगति प्रणीत ''सामायिक पाठ'' अपरनाम ''अमितगति द्वात्रिंशतिका'' शास्त्र पर आधारित शास्त्रीय प्रवचनों का महत्वपूर्ण नित्योपयोगी सुखद आलेखन है। जो आध्यात्मिक भाषा शैली में रसपूरित, आत्म चिंतन के निर्मल प्रवाह को लिए हुए जैनागम के तत्वदर्शन को अखिल विश्व के समक्ष प्रस्तुत करने वाली तीर्थंकर महावीर देशना का मंगल मंत्रोंच्चारण समाहित किए हुए यह आत्म-कल्याण कारक कृति तत्त्व पिपासु, जिज्ञासु पाठकों के लिए अनुपमेय गुरु उपहार है।

खाली

खाली

आचार्य अमितगति विरचित सामायिक पाठ
पर स्वोपज्ञ प्रवचन कृति

# सामायिक शास्त्र

प्रवचनकार
सारस्वत कवि श्रमणाचार्य
**विभवसागर मुनिराज**

| | | |
|---|---|---|
| मूलकृति | - | **सामायिक पाठ**<br>**अपरनाम- अमितगति द्वात्रिंशतिका** |
| मूल कृतिकार | - | **आचार्य अमितगति** |
| शुभाशीष | - | **प.पू. गणाचार्य श्री विरागसागरजी महाराज** |
| प्रवचनकृति | - | **सामायिक शास्त्र** |
| प्रवचनकार | - | **सारस्वत कवि श्रमणाचार्य**<br>**विभवसागर मुनिराज** |
| आलेखन | - | **बा.ब्र. रीना दीदी संघस्थ** |
| आलेख वाचन | - | **बा.ब्र. प्रियादीदी, बा.ब्र. अंजूदीदी** |
| विमोचन प्रसंग | - | **गणाचार्य श्री विरागसागर स्वर्णजयन्ती वर्ष एवं**<br>**श्री मज्जिनेन्द्र पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव**<br>**सेक्टर-3, प्रताप नगर, जयपुर (राज.)**<br>**8 फरवरी, 2013 से 14 फरवरी, 2013** |
| संस्करण | - | **प्रथम** |
| आवृति | - | **प्रथम, प्रतियाँ- एक हजार** |
| भाव मूल्य | - | **स्वाध्याय प्रतिज्ञा** |
| प्रकाशक/पुण्यार्जक | - | **श्री फतेहलाल जैन - श्रीमती रतनबाई जैन, जयपुर** |

***मुद्रक :***
**नवजीवन प्रिन्टर्स व स्टेशनर्स**
'नवजीवन कॉम्पलेक्स' निवाई (टोंक-राज.) भारत
☎ : 01438- 222127, 228377
Email : navjeewannew@yahoo.com

# प्रस्तावना

**- श्रमणाचार्य विभवसागर**

**रागद्वेषत्यागान्निखिल द्रव्येषु साम्यमवलम्बय।**

**तत्त्वोपलब्धि मूलं, बहुशः सामायिकं कार्यम्॥148॥ पु.सि.उ.**

अखिल विश्व के सम्पूर्ण पदार्थों में रागद्वेष का त्याग करने से तथा साम्य भाव का आश्रय लेकर के आत्मतत्व की प्राप्ति का मुख्य उपाय सामायिक है, इस सामायिक को बहुत बार करना चाहिए।

सुधी श्रावकों को रात्रि और दिन के अन्त में तो नियमतः सामायिक करना ही चाहिए। अन्य समय में भी सामायिक करें तो दोष रूप नहीं अपितु गुण पोषण के लिए है। सामायिक के काल में आत्माश्रित पुरुष सम्पूर्ण पापकार्यों का त्याग कर देने से महाव्रती तुल्य हो जाता है। आत्मध्यान सुविकसित करने के लिए तथा सामायिक संस्कार को स्थिर रखने के लिए प्रतिदिन आगमोक्त विधि से समताभाव प्रधान सामायिक करना चाहिए।

श्रावकाचार में सामायिक को शिक्षाव्रत के रूप में स्वीकार किया है तथा स्पष्ट रूप से घोषित किया कि सामायिक शिक्षाव्रत महाव्रत धारण की प्रबल प्रेरणा अन्तरात्मा में भरता है। जहाँ, जिस समय, जितने समय के लिए पाँच पापों को पूर्ण रूपेण त्याग दिया जाये वहाँ, उस समय ही, उतने समय के लिए सामायिक हो जाती है।

योग्य द्रव्य, योग्य क्षेत्र, योग्य काल, यह सामायिक की साधन सामग्री है, सामायिक योग्य भाव की प्राप्ति होना, उत्पत्ति होना साध्य है। ''योग्य श्रमण या योग्य श्रावक जिस आगमोक्त समीचीन क्रिया को करता है, उस सम्यक् क्रिया-चर्या को करने से योग्यता प्रकट होती है। अतः प्रत्येक साधक को भली भाँति सामायिक करना चाहिए।

एकान्त, प्रशान्त स्थान में, विघ्न बाधा रहित प्रशस्त क्षेत्र में, वन, भवन अथवा जिनालय में आत्मीय विशुद्धि के साथ प्रसन्नतापूर्वक सामायिक बढ़ाना चाहिए। यह सामायिक अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाँच व्रतों को परिपूर्ण करने वाली आवश्यक क्रिया है। अत: व्रतधारियों और व्रताभिलाषियों को यथावत् आलस्य भाव त्यागकर प्रमाद रहित होकर सावधानी पूर्वक प्रयत्नशील होकर सामायिक संस्कार आरोपित करना चाहिए। तथा सामायिक संवर्द्धन के लिए मौन धारण करके विविध परिषह और उपसर्गों को सहन करते हुए मन, वचन, काय को अचल रखकर संसार की असारता, शरीर की अशुचिता एवं भोगों की अनित्यता का विचार करते हुए स्वात्म चिंतन सहित धर्मध्यान करना चाहिए।

निरतिचार क्रिया महाफलदायी होती है। अत: मन, वचन, काय की दुष्प्रवृत्ति का त्याग करके पूर्ण आदर भाव के साथ, सामायिक क्रिया का यथावत् सम्मान रखते हुए, पाठ आदि को न भूलते हुए यथासमय, यथागम, यथावत् सामायिक बढ़ाना चाहिए। जहाँ जीव की बुद्धि जाती है, वहाँ श्रद्धा जाती है। जहाँ श्रद्धा जाती है, वहाँ चित्त लीन हो जाता है। अत: सामायिक में मन लगे इसके लिए हमें चाहिए कि हम सर्वप्रथम सामायिक के महत्व को समझें। सामायिक की दुर्लभता का परिज्ञान होने से सामायिक का महत्व समझ में आयेगा। महत्व समझ में आते ही श्रद्धा बलवती हो जायेगी। सामायिक के प्रति दृढ़ता, श्रद्धा प्रकट होते ही सामायिक में मन लगने लगेगा। यदि इतना हुआ तो फिर कभी सामायिक में विलम्ब एवं प्रमाद नहीं होगा। तथा पंचातिचार रहित सामायिक पंचव्रत पूरक सिद्ध होगी। अत: क्रिया के पूर्व क्रिया के महत्व एवं फल को अवश्य जानें तभी वह क्रिया भाव सहित, फलदायक होती है।

प्रस्तुत कृति ''सामायिक शास्त्र'' आचार्य अमितगति प्रणीत ''सामायिक पाठ'' अपरनाम ''अमितगति द्वात्रिंशतिका'' शास्त्र पर आधारित शास्त्रीय प्रवचनों का महत्वपूर्ण नित्योपयोगी सुखद आलेखन है। जो आध्यात्मिक भाषा शैली में रसापूरित, आत्म चिंतन के निर्मल प्रवाह को लिए हुए जैनागम के तत्वदर्शन को अखिल विश्व के समक्ष प्रस्तुत करने वाली तीर्थंकर महावीर देशना का मंगल मंत्रोच्चारण समाहित किए हुए यह आत्म-कल्याण कारक कृति तत्त्व पिपासु, जिज्ञासु पाठकों के लिए अनुपमेय गुरु उपहार है।

यह अमूल्य दुर्लभ गुरु उपहार भारतदेश में राजस्थान प्रान्त की राजधानी जयपुर शहर के श्री चन्द्रप्रभु दिगम्बर जैन पल्लीवाल मंदिर शक्तिनगर वर्षायोग दो हजार बारह में किए गये सोलह दिवसीय सामायिक संस्कार आध्यात्मिक शिक्षण शिविर में प्रस्तुत सार गर्भित, शास्त्र संदर्भित,

मुक्ति मार्ग प्रकाशित, आध्यात्मिक तत्वदेशना की महामंगलकारी सुनिश्चित अभूतपूर्व उपलब्धि है।

यह अपूर्व अश्रुत दिव्य संदेश समग्र विश्व में प्रसारित हो तथा अखिल विश्व के प्राणी गुरुवाणी का पावन प्रसाद पा सकें यह मंगल मनुहार तत्कालीन प्रवचन सभा के आदर्श श्रोता श्री इन्द्रराज, महेशकुमार, फतेहलालजी, सपरिवार में जागृत हुई। फलस्वरूप आपने प्रकाशन की प्रार्थना की। आपकी हार्दिक अभिलाषा को मूर्त प्रारूप दिया संघस्थ बा.ब्र. बहिन रीना दीदी ने अथक परिश्रम कर आलेखन करके तथा श्रमण आचरण सागरजी, बा.ब्र. बहिन प्रिया दीदी, अंजू दीदी ने शास्त्र वाचन एवं शब्द संशोधन में श्रुताराधना अर्घ्य समर्पित करके। आप शुभाशीष के सुपात्र हैं। अतः आपको शुभाशीर्वाद आपके द्वारा सविनय किया हुआ यह श्रुत सेवा महायज्ञ आपको केवलज्ञान प्रदान करे।

अंततोगत्वा जिनके परम आशीर्वाद से यह सम्पूर्ण शास्त्रीय कार्य पूर्ण हुआ उन प. पू. गणाचार्य गुरुदेव विरागसागर जी को कोटिशः नमोस्तु.....!

॥ शुभं भूयात् ॥

# सामायिक निर्युक्ति

**- श्रमण आचरण सागर**

**- श्रमण अमृत सागर**

सामायिक शब्द सम+अय दो शब्दों का मेल होकर इकण् प्रत्यय जुड़कर बना। सम अर्थात् सभी का समान रूप जो अय अर्थात् पुण्य है उसे समाय कहते हैं। उसमें जो होवे वह सामायिक है।

आचार्य परम्परा से आगत यह सामायिक निर्युक्ति है जिसे छह प्रकार से जानना चाहिए।

i. नाम सामायिक

ii. स्थापना सामायिक

iii. द्रव्य सामायिक

vi. क्षेत्र सामायिक

v. काल सामायिक

vi. भाव सामायिक

**नाम सामायिक** - शुभ नाम और अशुभ नाम को सुनकर राग-द्वेष आदि का त्याग करना नाम सामायिक है।

**स्थापना सामायिक** - जिन प्रतिमाओं के आकार-प्रकार, प्रमाण, सावयव, सांगोपांग तथा धातु पाषाण की कलाकृति में रागद्वेष का अभाव होना स्थापना सामायिक है।

**द्रव्य सामायिक** - सोना, चाँदी, मोती, माणिक आदि तथा लकड़ी, मिट्टी, कंटक आदि में समान भाव रखना, उनमें राग-द्वेष नहीं करना द्रव्य सामायिक है।

**क्षेत्र सामायिक** - नगर, बगीचा, नदी, कूप, तालाब आदि रम्यक्षेत्र तथा रूक्षप्रदेश, कांटे बाली भूमि, ऊबड़-खाबड़ भूमि, जीर्ण वन, सूखी नदी आदि में समता भाव रखना क्षेत्र सामायिक है।

**काल सामायिक** – प्रावृड्, वर्षा, हेमन्त, शिशिर, बसंत और ग्रीष्म इन छह ऋतुओं में अथवा रात्रिकाल, दिवस काल में रागद्वेष नहीं करना काल सामायिक है।

**भाव सामायिक** – सभी जीवों पर मैत्री भाव रखना और अशुभ परिणामों का त्याग करना यह भाव सामायिक है। भाव सामायिक के भी दो भेद हैं – आगम भाव सामायिक और नो आगम भाव सामायिक। सामायिक के वर्णन करने वाले शास्त्र का जो ज्ञाता है और वर्तमान में सामायिक क्रिया में उपयोग सहित है वह जीव आगम भाव सामायिक है। और सामायिक से परिणत परिणाम आदि को नो आगम भाव सामायिक है।

इनमें से यहाँ आगम भाव सामायिक और नो आगम भाव सामायिक से प्रयोजन है।

सम्यग्दर्शन, ज्ञान, संयम और तप के साथ जो प्रशस्त समागम है वह समय कहा गया है, तुम उसे ही सामायिक जानो। जो उपसर्ग और परीषहों को जीतने वाले होने से जितेन्द्रिय हैं, पाँच महाव्रत की पच्चीस भावनाओं से अथवा मैत्री, प्रमोद, करूणा माध्यस्थ आदि शुभ भावनाओं से सहित हैं, तथा पाँच समितियों के पालन में लगे हुए हैं, यम और नियम में तत्पर हैं वे मुनि सामायिक शील हैं। रागद्वेष का निरोध करके सभी कार्यों में समता भाव होना, और शास्त्रश्रवण में परिणाम होना इनको तुम उत्तम सामायिक जानो।

जिसकी आत्मा संयम, नियम और तप में स्थित है वह सामायिक है। अथवा जिस जीव के रागद्वेष आदि विकार उत्पन्न नहीं होते वह जीव सामायिक है। जिन्होंने क्रोध, मान, माया और लोभ को जीत लिया है उनके सामायिक होती है।

❑❑❑

# एक दृष्टि यह

**वाणी से गम्भीर शब्द, आँखों से क्षमा बरसती है।**
**प्रवचन शिक्षाप्रद देते, मौलिकता जिनसे झरती है।**
**सारा शहर उन्हें सुनता, जब अर्थ विवेचन करते हैं।**
**पूज्य विभवसागरजी मुनिवर, जीवन में तप भरते हैं।**

सारस्वत श्रमण आचार्यरत्न प.पू. 108 श्री विभवसागरजी महाराज की वाणी में यदि ''शंखनाद'' है तो लेखनी में ''भक्ति सरोवर'' है। वे हर काव्य में अपने इष्ट की भक्ति आराधना करते हुए ही मिले हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में तो वे पराकाष्ठा पर हैं और मूल रचनाकर्ता के अभिप्राय को उत्कर्ष प्रदान किया है। ऐसे में, स्वामी कुंदकुंद आचार्य का श्लोक स्मृति में आ जाता है-

**'उत्साहेन समायुक्ता, नित्यं गायंति ये प्रभोः।**
**गुणगान भवन्ति ते, नैव दुःखोपभोगिनः ।।**

तात्पर्य यह कि जो मनुष्य प्रभु के गुणों का उत्साह पूर्वक गान करते हैं, उन्हें अपने (भले बुरे) कर्मों का दुखद फल नहीं भोगना पड़ता।

पू. आचार्य विभवसागरजी अपने हर ग्रन्थ के माध्यम से श्रावकों को सचेत करते चलते रहे हैं कि यदि तुम सर्वज्ञ प्रभु की आराधना नहीं करते हो तो तुम्हारी विद्वता और सम्पत्ति निरर्थक है। सच जन्म ही व्यर्थ है।

**सुरेश जैन 'सरल'**
(देश के चौदह महान जैन संतों की जीवनी के सुप्रसिद्ध लेखक)

# अनुक्रमणिका


| क्र.सं. | | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|
| 1 | तत्त्वोपलब्धि का मूल उपाय | 1 |
| 2 | साधना का रस समता | 12 |
| 3 | स्वात्मानुसंधान | 22 |
| 4 | दोष मुक्ति-प्रतिक्रमण | 32 |
| 5 | प्रतिक्रमण के पूर्व सामायिक क्यों? | 42 |
| 6 | जिनवाणी ही सरस्वती | 53 |
| 7 | परमात्मा का स्वरूप | 61 |
| 8 | सच्चे देव का स्वरूप | 70 |
| 9 | ध्यान से विकार विनाश | 78 |
| 10 | दो नय दोनों नयन समान | 88 |
| 11 | जिन मुद्रा - ध्यान मुद्रा | 98 |
| 12 | अमितगति का शुभाशीर्वाद | 108 |
| 13 | आत्माकला का लाभ समाधि | 119 |
| 14 | संयोग से दुःख | 129 |
| 15 | विकल्प छोड़ो सुख से जियो | 137 |
| 16 | कर्म बंध एवं कर्म फल | 146 |
| 17 | शांतिधारा | 157 |

# शास्त्र स्वाध्याय का प्रारम्भिक मंगलाचरण

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॐ जय जय जय नमोऽस्तु ! नमोऽस्तु !! नमोऽस्तु !!!

**णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं।**
**णमो उवज्झायाणं, णमो, लोए सव्वसाहूणं।।**
**ओकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।**
**कामंद मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः।।1।।**

**अविरल-शब्दघनौघ - प्रक्षालित-सकलभूतल-कलङ्का।**
**मुनिभि-रूपासित-तीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितम्।।**
**अज्ञान-तिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जन-शलाकया।**
**चक्षुरून्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।2।।**

श्री परमगुरवे नमः, परम्पराचार्यगुरवे नमः सकलकलुष विध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं भव्य-जीवमनः प्रतिबोध-कारकमिदं शास्त्रं श्री (ग्रन्थ का नाम) नामधेयं, अस्य मूलग्रन्थकर्तारः श्री सर्वज्ञदेवास्तदुत्तर ग्रन्थकर्तारः श्री गणधर-देवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचोऽनुसार मासाद्य श्री (आचार्य का नाम) आचार्येण विरचितं, श्रोताः सावधानतया श्रृण्वन्तु।

**मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।**
**मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।।**
**सर्व मङ्गल्य- माङ्गल्यं सर्वकल्याणकारकम्।**
**प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम्।।**

# तत्त्वोपलब्धि का मूल उपाय
# सामायिक

**सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वम्।**
**माध्यस्थ भावं विपरीत वृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव! ॥ 1॥**

**भावार्थ**– हे जिनेन्द्र! मेरा सब प्राणियों पर सदा मैत्री भाव रहे, गुणी जनों को देखकर प्रमोद (हार्दिक स्नेह) भाव उत्पन्न हो, दुखी जीवों पर करूणा भाव रहे और विपरीत आचरण वालों पर माध्यस्थ (उपेक्षा) भाव रहे, इस प्रकार ये चारों गुण दीजिए।

**शरीरतः कर्त्तुमनन्त शक्तिम्, विभिन्न मात्मान मपास्त दोषम्।**
**जिनेन्द्र! कोषादिव खड्गयष्टिम्, तव प्रसादेन ममास्तु शक्तिः ॥2॥**

भावार्थ – हे जिनेन्द्र प्रभो! आपके प्रसाद से मुझे ऐसी शक्ति प्राप्त हो जिसके द्वारा मैं अनंत शक्तिशाली एवं समस्त दोषों से रहित अपनी आत्मा को शरीर से इस तरह पृथक कर सकूँ जैसे कि कोई म्यान से तलवार को निकाल कर अलग कर देता है।

**प्रिय आत्मन् !**

जिसे मैंने अनादि से खोजा एक बार भी मुझे वह न मिली। मिलती ही कहाँ? मैं खोज में निकला कि एक बार तो मिल जाये, लेकिन नहीं मिली। यात्रा में अनादि काल से अनंत काल व्यतीत हो गया। चतुर्गति–चौरासी लाख योनियों के भ्रमण में जो कभी नहीं मिली, कहीं नहीं मिली, वह कितनी दुर्लभ होगी? जिसके मिले बिना आत्म शांति नहीं मिलती। जिसके मिले बिना आत्म सुख नहीं मिलता। जिसके मिले बिना सम्यक् दर्शन नहीं मिलता। जिसके मिले बिना श्रद्धा नहीं मिलती। जिसके मिले बिना बोधि नहीं मिलती। जिसके मिले बिना समाधि नहीं मिलती। जिसके मिले बिना सिद्धि नहीं मिलती। मैं उसकी खोज में निकला। मैंने सर्वत्र खोजा वह कहीं तो मिले, पर

कहीं भी न मिली। सच में वह कितनी दुर्लभ थी। उस परम दुर्लभ तत्त्व को पाने के लिये आज मैं यहाँ आ पहुँचा हूँ। आखिर वह कौनसी अमूल्य वस्तु है? जिसके मिलने पर शांति और सम्यक्त्व मिलता है। जिसके मिलने पर संयम मिलता है। जिसके मिलने पर रत्नत्रय मिलता है। जिसके मिलने पर आत्मा मिलती है। जिसके मिलने पर आत्मा की निधि मिलती है। वह और कुछ नहीं है वह है **सामायिक।**

**तत्त्वोपलब्धिमूलं सामायिकं बहुशः कार्यं।**

आत्म तत्त्व की उपलब्धि का मूल सामायिक है।

सामायिक कब करना चाहिये? कितनी बार करना चाहिये? आचार्य कहते हैं-

**बहुशः कार्यं**

बहुत बार करना चाहिये। जब भी समय मिले सामायिक कर लो। दो मिनिट कर लो। चार मिनिट कर लो। छः मिनिट कर लो। दस मिनिट कर लो। बहुत बार सामायिक करना चाहिये। एक कायोत्सर्ग का समय मिले समता से कर लो। सामायिक आत्मा की समता रूप परिणति है, आत्मा में प्रवेश होकर के जो क्रिया की जाती है वह सामायिक है। आत्मा में लीन होकर के जो क्रिया होती है वह सामायिक है। नाम सामायिक, स्थापना सामायिक, द्रव्य सामायिक, क्षेत्र सामायिक, काल सामायिक, भाव सामायिक के भेद से यह सामायिक के छः भेद हैं।

किसी वस्तु या व्यक्ति का नाम सामायिक रख देना ही नाम सामायिक है। सामायिक की मुद्रा में खड़ा हुआ योगी अथवा उसका चित्र स्थापना सामायिक है। सामायिक का काल-काल सामायिक है। जिस स्थान पर बैठकर के समता जगती है, जिस स्थान पर आने से शांति जगती है, अथवा जिस स्थान पर बैठकर योगी सामायिक करता है वह क्षेत्र सामायिक है। जिन परिणामों से समता आती है, जिन भावों से समता आती है, जिन भावों से भेद ज्ञान आता है, उस ज्ञान पर्याय का जन्म लेना भाव सामायिक है।

**प्रिय आत्मन् !**

संसार की अनंत क्रियायें करने के बाद यदि एक क्रिया नहीं कर पाया तो वे अनंत क्रियायें निष्फल हो जायेंगी। सामायिक ऐसी क्रिया है जिस क्रिया को करने से आत्मा के गुणों का प्रकाश होता है। चारित्र गुण का प्रकाश होता है। स्वयं का भान होता है। मैं कौन हूँ? इसका पता चलता है।

दिन-भर किये हुये क्रिया कलापों के लाभ-हानि का पता चलता है। सामायिक अर्थात् स्वयं का अध्ययन काल, आत्म अध्ययन का काल सामायिक है। अपने भावों के निरीक्षण का काल सामायिक है। स्वयं निरीक्षक बनकर के स्वयं का निरीक्षण करना सामायिक है। एक साथ परिणमन होना, किसमें होना ? सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र इन तीनों में आत्मा का परिणमन होना समय कहलाता है और समय अर्थात् आत्मा में जो हो वह सामायिक है। वर्ष में जो हो वह वार्षिक है। उसी तरह समय (आत्मा) में जो हो वह सामायिक है।

सामायिक साधना है। धर्म-ध्यान का उपाय, शुक्ल-ध्यान का उपाय, निर्वाण का उपाय, सामायिक है। सामायिक में कुछ नहीं करना होता है और बिना किये पाँच व्रत पूर्ण हो जाते हैं। ''कुछ न करना ही तो सब कुछ करना है।'' जो क्रियायें, जो परिणतियाँ अनादि से करते आयें हैं उन परिणतियों को उन क्रियाओं को विराम देना ही तो सामायिक है। सामायिक मैं कुछ नहीं करना, कुछ भी नहीं होता है। मात्र अभी तक जो करते आये, होते आये हैं। उसको बंद कर देना होता है। जो परिणाम हम करते आये हैं। उन परिणामें का त्याग कर देना होता है। सामायिक में क्या परिणति होती है? प्रवेश कैसे होता है? प्रवेश की परिणति कैसे होती है? यह समस्त अध्ययन पहले करलो यहाँ।

**कोटि भवान्तर माहि, मिलन दुर्लभ सामायिक।**

करोड़ों भवों के बाद सामायिक करने का अवसर मिला है। यदि सामायिक करने का भाव जाग जाये तो समझ लेना कि आत्मा को पाने का भाव जाग गया। आत्मा के खजाने को पाने का भाव जाग गया। आत्मा की निधि को पाने की चाबी मिल गयी। मेरी अन्तस चेतना में जो अनंत गुण भरे पड़े हैं उन गुणों को पाने की चाबी है सामायिक। क्रिया काण्डों में उलझा व्यक्ति करता बहुत कुछ है लेकिन जिसके लिये करता है उसकी प्राप्ति बिना सामायिक के होती ही नहीं है।

जैन दर्शन क्रियाकाण्डी दर्शन नहीं है। जैन-दर्शन आध्यात्मिक दर्शन है। यह भाव प्रधान दर्शन है। और भाव बिना सामायिक के निर्मल होते नहीं हैं। जब तक पांचों इन्द्रियाँ चंचल रहेंगी तब तक परिणाम कहाँ निर्मल रहेंगे? पांचों इन्द्रियाँ जब विराम ले लेती हैं, मन विराम ले लेता है। तब आत्मा में प्रवेश करने की बात सूझती है। जब इन्द्रियाँ स्वयं चंचल हैं तो फिर हम आत्मा से कोशों दूर खड़े हैं इसलिये सर्वप्रथम श्रावक हो या साधु उसका सामायिक आवश्यक कर्त्तव्य है। सुदर्शन सेठ श्रावक था किन्तु सामायिक करता था। नागदत्त सेठ साधु नहीं, श्रावक था किन्तु सामायिक

करता था क्योंकि सामायिक के बिना सम्यक् दर्शन पैदा नहीं होता। जब अन्दर के चित्र को देखना हो, आत्मा को देखना हो तो बाहर के पूरे खिड़की दरवाजे बंद कर लेना चाहिये। उपयोग एक समय में एक जगह होता है। मैं आत्मा हूँ। मेरे पास अनंत गुण हैं उनमें ज्ञान प्रमुख गुण है। कुमति ज्ञान, कुश्रुत ज्ञान, कुअवधि ज्ञान, मति ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि ज्ञान, मनः पर्यय ज्ञान, केवल ज्ञान ये ज्ञान गुण की आठ पर्यायें हैं। ज्ञान गुण में प्रतिसमय नयी पर्याय प्रकट होती है। जिस समय मेरा उपयोग कुमति ज्ञान पर जाता है उस समय सुमति ज्ञान पर नहीं जाता। यदि हम टार्च लेकर पूर्व की ओर देखेंगे तो पश्चिम का पदार्थ नहीं दिखेगा। यदि उत्तर को देखेंगे तो दक्षिण का पदार्थ नहीं दिखेगा। जैसे टार्च एक समय में एक ही दिशा में प्रकाश देती है उसी तरह उपयोग एक समय में एक ही जगह लगता है।

जिस समय मैं अच्छा विचारता हूँ उस समय मैं अपनी ज्ञान पर्याय को अच्छा बनाता हूँ यह है ज्ञान दान। अपनी आत्मा को निर्मल ज्ञान की पर्याय प्रदान करना ज्ञान दान है। पवित्र विचार प्रदान करना यह हमारा ज्ञान दान है। मैं दूसरे के लिये क्या दे रहा हूँ। यह महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण यह है कि मैंने अपने लिये क्या दिया है। मैंने दूसरे को क्या परोसा ? उससे पहले महत्वपूर्ण है आज मैंने स्वयं क्या खाया ?

एक ओर स्वर्ण की राशियाँ हैं। दूसरी ओर रेत का ढेर है। बोलो ज्ञानी ! जिस समय तू स्वर्ण की राशि देखेगा उस समय तू रेत के ढेर को नहीं देख पायेगा। उपयोग एक समय में एक ही ओर होता है। जिस समय मेरी ज्ञान धारा में स्वर्ण राशि चलेगी उस समय रेत का ढेर नहीं दिखेगा। जिस समय कंचन दिखेगा उस समय कांच नहीं दिखेगा। जिस समय कांच दिखेगा उस समय कंचन नहीं दिखेगा। एक काल में दो उपयोग नहीं होते हैं। मैं सोचता हूँ- मुझे कुछ करना है ? भूतकाल में तुम कुछ नहीं कर सकते हो। जो हो चुका, बीत चुका, उसमें कुछ भी नहीं कर सकते। हाँ ! कर सकते हो इतना यदि कार्य पवित्र भूतकाल में कोई किया हो तो उसको स्मरण करो, पवित्र वर्तमान हो जायेगा। यदि पवित्र क्षणों को याद करोगे तो वर्तमान पवित्र हो जायेगा। यदि अपवित्र क्षणों को याद करोगे तो वर्तमान अपवित्र हो जायेगा। इसलिये भूत पर दृष्टि ले नहीं जाओ, भविष्य की चिंता मत करो, वर्तमान में शुभ करो, अच्छा करो, भविष्य में लाभ मिलेगा।

***'Good in Good out'***

शुभ में प्रवेश करोगे, लाभ लेके निकलोगे।

**प्रिय आत्मन् !**

आत्मा में प्रवेश पाना सामायिक है। यदि एक भी कर्म शत्रु रहेगा तो स्वराज्य प्रवेश नहीं मिलेगा। भरत चक्रवर्ती अयोध्या के द्वार पर खड़ा है, प्रवेश नहीं मिला क्योंकि अभी कोई तुम्हारा शत्रु शेष है। जो तुम्हें नमस्कार नहीं कर रहा। ओहो! भो भरतेश! जब तेरा एक शत्रु तुझे अयोध्या में प्रवेश नहीं होने देता है। तो भो ज्ञानी! आत्मा में तेरा एक भी दोषरूपी शत्रु रहेगा तो आत्मा के स्वराज्य में प्रवेश नहीं करने देगा। इसलिये संसार में सभी प्राणियों से मित्रता हो, मित्रता का तात्पर्य यह नहीं है कि हम हाथ मिलायें, मित्रता का तात्पर्य यह नहीं है कि हम भोजन खिलायें। मित्रता का तात्पर्य यह नहीं है कि हम गले लगायें। यह मित्रता की परिभाषा नहीं है। मित्रता का तात्पर्य यह है कि उस जीव की रक्षा का भाव होना, उसके प्रति वैर भाव नहीं होना।

**खम्मामि सव्व जीवाणं, सव्वे जीवा खमंतु मे।**

**मित्ती में सव्व भूदेसु, वेरं मज्झं ण केण वि।।**

मैं सब जीवों को क्षमा करता हूँ। मुझे सभी जीव क्षमा करें, सभी प्राणियों में मेरी मैत्री है। मैत्री कब है? जब तुम सब जीवों को क्षमा कर दो। और सब जीव तुम्हें क्षमा कर दें। सामायिक करने वाला पुरुष सबसे पहले एक सूत्र बोलता है।

**खम्मामि सव्व जीवाणं।**

मैं सभी जीवों को क्षमा करता हूँ। सभी जीव मुझे क्षमा करें। यह पहला सूत्र है– क्योंकि एक भी शत्रु रहेगा, तो सामायिक के काल में परमेष्ठि आदि याद नहीं रहेंगे। उसका शत्रुभाव याद आ जायेगा। और सामायिक में आर्त–रौद्र ध्यान चलेगा इसलिये सबसे पहले क्षमा करो। तुम ने पृथ्वी पर पांव रखा तो भी पृथ्वी तुम्हें क्षमा किये है। पृथ्वी जैसे जीती आयी तुम भी वैसे सदा जिओ।

**प्रिय आत्मन् !**

क्षमा जब तक नहीं करेंगे तो ध्यान किसका होगा? मेरा मन प्रभु के ध्यान के लिये था। ओहो! मैं घर से निकला हूँ परमात्मा के ध्यान के लिये और मैंने अपना उपयोग कहाँ लगा दिया? छल, कपट, मायाचारी में। ओहो! भो ज्ञानी! एक व्यक्ति सोच रहा है, साधु की सामायिक चल रही

है लेकिन भो! साधु तू सामायिक के काल में किसका विचार कर रहा है। आत्मा और परमात्मा के सिवा कोई तीसरे का विचार करेगा तो छल हो जायेगा, कपट हो जायेगा, पाप हो जायेगा, पाप क्यों हो जायेगा? क्योंकि जग सोच रहा है साधु सामायिक में बैठा है। लेकिन साधु का उपयोग तो बाहर भटक रहा, आर्तरौद्र ध्यान में इसलिए सामायिक के काल में किसी की शत्रुता याद मत करना। अहो! ज्ञानी! सर्प दुनियाँ भर में कितना भी टेड़ा चले जब बिल में प्रवेश करता है तो सीधा ही प्रवेश करना पड़ता है। तुम दुनियाँ भर में टेढ़े रह लेना लेकिन जब सामायिक में बैठो तो सीधा हो जाना, सबको क्षमा कर देना, क्षमा माँगने न जा सको तो सामायिक में बैठने के पहले बोल देना मैं सबको क्षमा करता हूँ। सबसे क्षमा माँगता हूँ। सभी जीव मुझे क्षमा करें। मेरा किसी से बैर नहीं है। वह सुनने नहीं आ रहा है, तू कहने नहीं जा रहा है, लेकिन फिर भी ऐसा भाव करने से अपने परिणाम निर्मल हो जाते हैं।

मैं दूसरे से क्षमा नहीं माँगता, मैं अपनी आत्मा को निर्मल करने का उपाय कर रहा हूँ। आत्मा को निर्मल बनाने की विधि यही है कि सबसे पहले क्षमा माँग लो और क्षमा कर दो।

**ॐ नमः सबको क्षमा,**

**सबसे क्षमा ओम् नमः।**

**समता में सर्व भूतेषु, संयमे शुभ भावना।**

**आर्त रौद्र परित्याग, तद्धि सामायिकं मतं ।।**

सम्पूर्ण प्राणियों में समता धारण करना तथा, आर्त, रौद्र ध्यान का त्याग करना सामायिक का लक्षण है। किसी के प्रति अमैत्री न होना ही तो मैत्री है। अंधकार का न होना ही तो प्रकाश है। सुख क्या है? दुख न होना ही तो सुख है। इसी प्रकार शत्रुता न होना ही मित्रता है। भो ज्ञानी! जितने शत्रु नहीं हैं, उतने मित्र हैं। यदि तुमने कहा मेरे पाँच मित्र हैं तो अनंत जीवों में से तुझे पाँच मित्र मिले और शेष सब शत्रु हैं। ज्ञानी! ध्यान देना तेरे अनंत मित्र हैं।

**''जे त्रिभुवन में जीव अनंत''**

तीन लोक में अनंत जीव हैं। वे सब हमारे मित्र हैं। मेरा सभी के प्रति मित्रता का भाव है।

**''मैत्री भाव जगत मेरा, सब जीवों से नित्य रहे।''**

मैत्री भाव सब जीवों में मेरा कब-कब रहे? हमेशा रहे, शाश्वत रहे। वह मेरे विषय में क्या सोचता है? मुझे यह सोचने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि! मैं भला सोचूँ तो मेरे कर्मों की निर्जरा होगी, मेरे कर्मों का संवर होगा, मेरा मोक्ष मार्ग प्रशस्त होगा, मैं अपने कल्याण के लिये निकला हूँ। मैं अपने हित के लिये आया हूँ। मेरे विषय में कौन क्या सोच रहा है? मन उसका है, मस्तिष्क उसका है, वह सोचे कौन रोक सकता है? भो ज्ञानी! सोचने का अधिकार सबको है। तुम मेरे विषय में जितना सोच सकते हो, सोचो। तुम्हारा जैसा ज्ञान हो, वैसा सोच सकते हो सोचो। मेरे पास जैसा ज्ञान है मैं वैसा सोचूँगा। मेरे ज्ञान के अनुसार आप नहीं सोचोगे। क्योंकि तुम्हारा ज्ञान ही तुझमें कार्य करेगा और मेरा ज्ञान मुझमें कार्य करेगा।

**प्रिय आत्मन् !**

जितनी सरलता होगी उतने अंश ज्यादा मिलते हैं, जितनी कठिनता होगी उतने अंश कम मिलते हैं। जब हमको सीधी लाइन खींचना होती है तो हमें पटरी (स्केल) की सहायता लेना होती है। और जब टेड़ी लाइन खींचना हो तो किसी की सहायता नहीं लेना होती है। ज्ञानी! प्रतिमा बनाने वाले को ज्यादा लाभ मिलता है कि कार्टून बनाने वाले को? प्रतिमा बनाने वाले को प्रतिमा में सरलता लाना है और कार्टून में वक्रपना है। कैसी भी कलम चलाओ एक चित्र कार्टून बन गया, आँख बंद करके दोनों हाथों में कलम ले लो कुछ भी बना दो, कार्टून बन जायेगा लेकिन मूरत बनाना हो तो साधना चाहिए।

**यह बैर महा दुखदायी है, यह बैर न बैर मिटाता है।**
**यह बैर निरन्तर प्राणी को, भवसागर में भटकाता है॥**

सामायिक के पहले पारसनाथ समझ गये हैं कि कमठ के जीव ने कष्ट दिया है लेकिन जानते हैं कि मुझे उसको याद नहीं करना है, यदि मैं कमठ को याद करूँगा तो मेरा आत्म-ध्यान छूट जायेगा, मेरा धर्म-ध्यान छूट जायेगा। इसलिये वह कमठ को याद नहीं करते हैं। वह तो अपने सिद्ध स्वरूप को याद करते हैं। यदि पारसनाथ कमठ को याद करते तो उनको केवल ज्ञान न होता। अपने सिद्ध स्वरूप को याद किया तो पारसनाथ को केवलज्ञान हो गया।

**प्रिय आत्मन् !**

पारसनाथ ने दस भव में एक भी बार कमठ के बैरभाव को याद नहीं किया और कमठ ने एक भी भव पारसनाथ को छोड़ा नहीं। ज्ञानी! पारसनाथ कहते हैं मेरी सभी से मित्रता है। मेरा कोई भी शत्रु नहीं है। ज्ञान का कार्य क्या है?

**जेण रागा विरज्जेज्ज, जेण सेयेसु रज्जदि।**
**जेण मित्ती पभावेज्ज, तं णाणं जिणसासणे॥**

श्री मूलाचार ग्रंथ में आचार्य वट्टकेर स्वामी लिखते हैं कि जिसके होने पर राग से विरक्ति हो जाये, जिसके द्वारा कल्याण मार्ग में अनुराग हो जाये, जिसके होने पर मैत्री बढ़े, जिनेन्द्र शासन में उसे ज्ञान कहा गया है। यदि मित्रता नहीं बढ़ती है, मैत्री भाव नहीं है तो फिर सच्चा ज्ञान नहीं है। सामायिक का प्रवेश द्वार है मैत्री। भरत! या तो बाहुबली से मैत्री कर लो या फिर बाहुबली को पराजित कर दो। पराजित करने का तात्पर्य वह नमस्कार करें और कुछ नहीं है। पराजित करने पर मैत्री हो जाये। मैत्री के बिना भरत का अयोध्या में प्रवेश नहीं हो सकता है। उसी तरह जब तक तुम्हारी सब जीवों में मित्रता नहीं होगी, तब तक तुम सामायिक में प्रवेश नहीं कर पाओगे। इसलिये हे योगी! हे श्रावको! कितने भी परिणाम कलुषित हों, किसी ने कुछ भी कह दिया हो, भले तू सामने जाकर क्षमा न माँग पाये लेकिन सामायिक को बैठना और क्षमा मांग लेना शांति सागर महाराज कहते हैं- भैया! पाँच मिनट रोज सामायिक करो। क्योंकि सामायिक करोगे तो पहला सूत्र याद आयेगा मैं सबको क्षमा करता हूँ। मेरे मन में आज तक क्षमा का भाव नहीं जागा, किसी से अपराध हो गया, भूल-चूक हो गयी और मैं क्षमा नहीं कर पाया। मैंने एक भी सामायिक नहीं की यदि मैं सामायिक करता हूँ तो पहले सारे जग को क्षमा कर देता हूँ, तब वह सामायिक प्रारम्भ होती है।

**जेण तच्चं विवुझेज्ज, जेण चितं णिरूज्झदि।**
**जेण अत्ता विसुज्झेज्ज, तं णाणं जिणसासणे॥**

जिसके द्वारा आत्मा विशुद्ध होती है, जिसके द्वारा चित्त का निरोध होता है, जिसके द्वारा मोक्ष में प्रवेश होता है उसे जिनशासन में ज्ञान कहा है।

**प्रिय आत्मन् !**

जिनेन्द्र भगवान के शासन में लौकिक ज्ञान को ज्ञान नहीं कहा, जो ज्ञान आत्मा में प्रवेश न करा पाये वह ज्ञान, ज्ञान नहीं है। जो ज्ञान आत्मा में प्रवेश करा दे वह सच्चा ज्ञान है। जो सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र में प्रवेश करा दे वह सच्चा ज्ञान है। जो रत्नत्रय में प्रवेश न कराये वह ज्ञान नहीं है। कभी किसी को शत्रु नहीं बनाना। एक छोटा सा भी शत्रु बहुत बड़ी हानि

पहुँचा देता है। सुभौम चक्रवर्ती ने एक रसोइया को शत्रु बनाया उसने सुभौम चक्रवर्ती के लिये नरक गामी बना दिया, कभी यह मत समझो कि यह छोटा है। न जाने कौन से भव में उसकी ताकत बढ़ जाये और किस साधना के समय मुझे कष्ट में डाल दे। **इसलिये शत्रु कभी बनाना नहीं, मैत्री कभी छोड़ना नहीं।** हानि-लाभ मेरे भाग्य के अनुसार होना है किसी के करने से न मुझे हानि होना न किसी के करने से मुझे लाभ होना। परन्तु कोई निमित्त अवश्य बन सकता है।

**गुणी जनो को देख हृदय में, मेर प्रेम उमड़ आवे।**

गुणी जनों को देखें और खुश हो जायें।

**चार मिलें चौसठ खिलें, बीस मिलाकर जोड़।**
**सज्जन से सज्जन मिले, हरषें रोम करोड़॥**

जिस तरह बादल गरजे कि मोर नाचा। उसी तरह गुणवान व्यक्ति दिखा कि सम्यक् दृष्टि जीव खुश हो गया। यही तो विशेषता है सम्यक् दृष्टि जीव की। जहाँ साधुजन दिख जाते हैं, गुणवान दिख जाते हैं वहाँ उसे रत्नत्रय दिख जाता है। ज्ञानी! अभी पर्यूषण पर्व आयेगा आप सम्यक् ज्ञान की पूजा करोगे, सम्यक् दर्शन की पूजा करोगे, सम्यक् चारित्र की पूजा करोगे। अरे! पूजा उनकी करना है लेकिन सच्ची पूजा तो यहाँ पर बैठे सम्यक् ज्ञानी! ये जीव मुनिराज हैं। सम्यक् चारित्री यह जीव हैं। जिन्होंने अपनी आत्मा में उन गुणों को धारण कर लिया है। पहले उनकी पूजा होना चाहिये। गुण की पूजा गुणवान की पूजा है। **जिनवाणी में पढ़ करके पूजा करना आसान बात है, और सामने जब गुणी दिख जाये तो उसका आदर कर लेना सबसे बड़ी पूजा है।**

आप चारित्र की पूजा कर रहे हैं। किन्तु चारित्रवान का आदर कर रहे कि नहीं ? चारित्रवान का आदर करना चारित्र की पूजा है। साधु दिखते हैं, हृदय आनंद से भर जाता है, खुशी आ जाती है। धन्य हैं मेरे भाग्य, धन्य हैं सौभाग्य। अहो! इस क्षण मुनियों का दर्शन हो गया। मेरे जन्म-जन्म के पाप धुल गये।

कोई दुखी है, पीड़ित है, कष्ट में है, मैं इसके दु:ख को कैसे दूर करूँ ? मैं इसकी पीड़ा का निवारण कैसे करूँ ? यह विचार और प्रयत्न करूणा भाव है, दु:खी जीवों पर भी करूणा होना चाहिये।

**प्रिय आत्मन् !**

प्रत्येक जीव भगवान् आत्मा है। आज चाहे वह दुखी हो, चाहे गुणी हो, चाहे वह कैसा भी हो ? एक दृष्टि तो फेरो बालक, वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष, आखिर है कौन ? है तो भावी परमात्मा, हम क्यों न इनमें परमात्मा का रूप देखें। जब हम अपनी ज्ञान पर्यायों में उसे परमात्मा का रूप देखेंगे, तो वह हमें धर्मात्मा के रूप में देखेगा। तुम कैसे भी देखो लेकिन जब मैं तुम्हें शक्ति रूप परमात्मा के रूप में देखूँगा तो मेरी आत्मा तो पवित्र बनेगी ही बनेगी। यदि तेरे हाथ में अंगारा है और तू दूसरे को फैकेगा। तो वह जले या न जले, पर तेरे हाथ जल जायेंगे। हाथ में कोयला है यदि कोयला लेकर दूसरे पर फेंको तो दूसरे को वह कालिमा लगे या न लगे लेकिन फेंकने वाले के हाथ तो काले हो ही जायेंगे। उसी तरह दूसरे को बुरा कहने से दूसरे का बुरा हो या न हो परन्तु अपने भाव तो बुरे हो ही जाते हैं। मेरा वर्तमान तो बुरा हो ही गया। कोयले को हाथ में लेने से जैसे हाथ काले हो जाते हैं। वर्तमान में अशुभ परिणाम करने से भविष्य खराब हो जाता है। इसलिये कोयला को दूर रखते हैं। यदि हमारे हाथ गंदे होते हैं, तो हम साबुन आदि का उपयोग कर हाथ उज्ज्वल कर लेते हैं। आखिर भावों को उज्ज्वल करने के लिये कौन सी साबुन लगाई तुमने ? हाथ को साफ करने , साबुन हाथ में लेना था कि कोयला हाथ में लेना था ? हाथ तो साफ करने बैठा है लेकिन लकड़ी का कोयला लेके बैठा है। हाँ-हाँ कोयला लेके बैठा है। क्या कर रहे हो ? हाथ साफ कर रहा हूँ। भो ज्ञानी ! ये कैसी नादानी, कोयला से हाथ साफ कर रहा है। अभी हाथ कम काले थे अब और अधिक काले हो गये। ओहो ! जब तक तुमने किसी के विषय में बुरा नहीं विचारा तो तू अच्छा था। जब तुमने किसी के विषय में बुरा विचारा तो आपने अपने ऊपर ही कोयला पोत लिया। भो ज्ञानी ! क्या कर रहे हो ? हाथ साफ कर रहा हूँ। यह हाथ काले तो हो रहे हैं ? अरे ज्ञानी ! साबुन के स्थान पर तू कोयला छू रहा था अब भी सावधान हो जा अब साबुन ले-ले तो साबुन कोयले को भी साफ कर देगी और हाथ भी साफ कर देगी ज्ञानी ! तू कोयले को साफ मत कर, तू हाथ को साफ कर ले, कोयले से दूर हट जा।

**कोयला-होय न ऊजरो, सौ मन साबन जाय।**

यदि तू सौ मन भी साबुन लगायेगा तो भी कोयला सफेद नहीं होगा, काला का काला ही रहेगा। इसलिये **दूसरे के परिणाम सम्हालने के चक्कर में अपने परिणाम मत बिगाड़ लेना।** रे ! मरुभूति ! तूने कमठ के परिणाम सम्हालने के चक्कर में अपनी दुर्गति कर ली ? अपने सिर पर पत्थर पटकवाने क्यों गया ?

**प्रिय आत्मन् !**

दूसरे का उतना भला करने की सोचना जितने भले मैं स्वयं का बुरा न हो जाये। अन्यथा मरुभूति जैसी गलती मत करना कि कमठ के पास गया और कमठ ने पत्थर पटक दिया।

इसलिये करूणा तो करना लेकिन इतनी भी करुणा मत करना कि वह करूणा स्वयं को क्रन्दन बन जाये, सदा सावधानी रखना, किसी का उपकार करने दौड़ना, डॉक्टर भी सावधानी रखता है कितना भी असाध्य रोग का उपचार करेगा लेकिन पहले अपने हाथ सुरक्षित कर लेगा। कैसा भी मरीज पहुँच जाये लेकिन पहले मरीज से लिखवा लेगा बाद में उपचार शुरु करेगा। पहले स्वयं की सुरक्षा आवश्यक है बाद में दूसरे का उपचार। डॉक्टर सावधान रहता है कि मैं दूसरे का उपचार तो करूँगा लेकिन उसके उपचार करने से मुझे बीमारी न हो जाये। यदि दूसरे का उपचार करने से डॉक्टर को बीमारी होती है। तो उसका उपचार कोई डॉक्टर नहीं करता है।

**प्रिय आत्मन् !**

मैं जिसके परिणाम सम्हालने की कोशिश कर रहा हूँ। कहीं उसके परिणाम न सम्हले, तो वह मेरे परिणाम को न बिगाड़ दे। हे आचार्य! तुम शिष्यों के परिणाम को सम्हालना, किन्तु ध्यान रख लेना उनके परिणामों को सम्हालते-सम्हालते अपने परिणाम मत बिगाड़ लेना। अन्यथा शिष्य के भाव सम्हले न सम्हले पर तेरा भव बिगड़ जायेगा। उसका भाव भविष्य में कभी भी सम्हल जायेगा लेकिन तेरा भव अभी बिगड़ जायेगा। इसलिये ध्यान रखो कि उसके भाव इस रीति से सम्हालना कि मेरे भी भाव न बिगड़ें और उसके भी भाव न बिगड़ें। किसी के भी भावों को सम्हालना हो तो पहले कम से कम उनकी अच्छाइयाँ बताओ और अच्छाइयाँ में से धीरे-धीरे बता दो भाई यह कार्य इस तरीके से इस पद्धति से करो और अच्छा हो जायेगा। यह व्यवस्था रीति है।

भो ज्ञानी! दूसरे पर करूणा करना पर इतनी करूणा करना कि उससे तेरे ऊपर संकट न आ जाये। कभी-कभी जीव इतनी करूणा कर देते हैं कि स्वयं संकट में पड़ जाते हैं। ध्यान देना-ज्ञानी! अपना घर बेचकर के दान मत देना। इतनी करूणा भी मत करना कि जिस करूणा से हरिश्चन्द बनना पड़े ऐसा सत्य बोलने को यहाँ पर नहीं बताया गया है।

**राजा हरिशचन्द्र की, सुन लो कहानी।**
**काशी में जाके, बिके दोनों प्राणी॥**

यह दुनिया बहुत अच्छी है। लेकिन तुम हरशिचन्द्र मत बन जाना। यही प्रेरणा है।

****

# साधना का रस - समता

**दुःखे सुखे वैरिणि बन्धुवर्गे, योगे वियोगे भवने वने वा।**
**निराकृताशेष ममत्वबुद्धेः, समं मनोमेऽस्तु सदापि नाथ॥ 3॥**

**भावार्थ** – हे सम्पूर्ण ममता से रहित जिनेन्द्र प्रभु! मेरा मन दु:ख, में सुख में, शत्रु एवं मित्रों पर अनिष्ट संयोग और इष्ट वियोग में, वन में या महल में राग-द्वेष से रहित होकर सदा समता धारण करे।

**मुनीश! लीनाविव कीलिताविव, स्थिरौ निखाताविव बिम्बिताविव।**
**पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा, तमोधुनानौ हृदि दीपकाविव॥ 4॥**

**भावार्थ** – हे मुनियों के ईश/प्रभु/स्वामी! अज्ञान या मोहरूपी अंधकार को नष्ट करने वाले आपके दोनों चरण कमल रूपी दीपक मेरे मन मंदिर में लीन हुए के समान, (दीपक के समान) तथा पत्थर पर उत्कीर्ण (उकेरे) किये के समान अथवा प्रतिबिम्ब/मूर्ति की तरह सदा-सदा के लिए विराजमान रहें।

**प्रिय आत्मन् !**

समता साधु का शृंगार है। समता साधना का रस है। समता साधक की उपलब्धि है। समता गुण खजाने का ताला है। समता सब गुणों का राजा है। समता भाव आत्मा का संरक्षक है। समता चेतना की निधि है। समता साधुओं का आचार है। समता तपस्या का फल है। समता साधु का परिचय है। समता साधु की परिपक्व दशा का प्रमाण पत्र है। समता साधना की कसौटी है। समता सामायिक का प्रवेश द्वार है।

**प्रिय आत्मन् !**

मैं समय हूँ। आप समय हो। हम सब समय हैं। मैं कारण समयसार हूँ। अरिहंत भगवान एक-देश कार्य समयसार हैं। सिद्ध भगवान सर्वदेश कार्यसमयसार है। समय को पाने के लिये सामायिक और समता को पाना अनिवार्य है। समय के बिना समयसार कैसे पाओगे ? न समयसार किताब में है, न समयसार शास्त्र में है। मैं स्वयं समय हूँ। मेरा आत्मा ही समय है। सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र इन तीनों में एक साथ परिणमन होना समय है। रत्नत्रय में लीन होना, निज स्वरूप में लवलीन होना समय है। समय अर्थात् आत्मा। आत्मा दो प्रकार की है :-

1. स्व आत्मा (स्व समय) अर्थात् शुद्धात्मा।
2. पर आत्मा (पर समय) अर्थात् अशुद्धात्मा।

**जीवो चरित्त दंसण, णाणट्ठियं तं हि ससमयं जाण।**
**पुग्गल कम्म पदेसट्ठियं, च तं जाण पर समयं ॥ 2॥ स.सा.**

आचार्य देव श्री कुंद-कुंद भगवान समयसार की इस दूसरी कारिका में लिखते हैं- जो जीव रत्नत्रय अर्थात् सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र में उपस्थित है, स्थित है, ठहरा हुआ है, लवलीन है, लीन है, तल्लीन है, वर्तमान में स्थित है, वह जीव स्व-समय है। वह आत्मा स्वात्मा है। वह आत्मा निजात्मा है। जो रत्नत्रय में लीन आत्मा है वह निजात्मा ही शुद्धात्मा है।

जो पौद्गलिक कर्म तथा उन कर्मों के फलों में लीन है, कर्मों का वेदन कर रही आत्मा, कर्मों के फलों को भोग रही आत्मा वह आत्मा परसमय अथवा अशुद्धात्मा है। अहो! आत्मन् जिस समय तू अपनी आत्मा का संवेदन करता है उस समय निज आत्मा में है। जिस समय कर्मों का वेदन करता है उस समय पर आत्मा है। सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र का वेदन जिस काल में होता है उसी काल में मेरी आत्मा मेरी है। शेष समय मेरी आत्मा मेरी नहीं है। ओहो! यह है परम सत्य का दर्शन। आत्मा मेरी है, मैं आत्मा हूँ फिर भी आत्मा मेरा है कि नहीं ? घोड़ा मेरा है। लगाम जिसके हाथ में होगी घोड़ा उसका कहलायेगा। तुम कितना भी कहो कि घोड़ा मेरा है। आत्मा मेरी है, कहने से काम नहीं चलेगा। ज्ञानी! तूने आत्मा की लगाम किसको सौंप दी है? इन्द्रियों को सौंप दी, कि विषयों को सौंप दी, कि कषायों को सौंप दी, कि कर्मों को सौंप दी, कि सम्यक् दर्शन को सौंप दी, लगाम किसको सौंपी है? यदि लगाम ही किसी और को सौंप दी है तो कैसे माने, कि घोड़ा तेरा है? बाबा भारती तूने अपने घोड़े की लगाम डाकू खड्ग सींग को सौंप दी है अब कौन कहे कि घोड़ा तेरा है।

**प्रिय आत्मन् !**

आत्मा मेरा है। किन्तु जब कर्मों के फलों में लीन है तब मेरा नहीं है। पंचेन्द्रियों के विषयों में लीन है, मेरा नहीं है। मेरा आत्मा तब है जब सम्यक् दर्शन में लीन हो, जिनेन्द्र भक्ति में लीन हो, जिनपूजा में लीन हो, गुरु उपदेश में लीन हो, चारित्र के पालन में लीन हो, तब तो मेरा आत्मा मेरा अन्यथा पराया है।

**प्रिय आत्मन् !**

मैं स्वसमय हूँ, कि मैं पर समय हूँ। मैं निज आत्मा हूँ, कि पर आत्मा हूँ। मैं आत्मा हूँ, ज्ञान मेरा गुण है। मेरा आत्मा, मेरा ज्ञान मेरे लिये काम न आये तो किस काम का? विद्यार्थी के हाथ में एक कलम है। परीक्षा में विद्यार्थी के काम न आये तो कलम किस काम की? मेरा ज्ञान मेरे कल्याण के काम न आये तो ज्ञान किस काम का? अरे! जो बेटा पिता के काम नहीं आता तो पिता जी कहते हैं कि– मेरा बेटा किस काम का?

**प्रिय आत्मन् !**

मेरा ज्ञान मेरे कल्याण के लिये है, न कि व्यापार या रोटी पकाने के लिये। सामायिक पाठ अंतर आत्मा में आने की कला है। बाह्य यात्रा बहुत कर चुके एक बार अंतर की यात्रा करो, जो यहाँ से प्रारम्भ होती है। मैं आज तक कर्मों के फलों में लीन रहा, निगोद पर्याय में मात्र कर्मों के फलों को भोगा है। एक इन्द्रिय जीवों की कर्म चेतना नहीं होती, कर्म फल चेतना होती है। जैसे कर्मों का उदय है वैसा भोगना ही पड़ेगा यह कर्म फल चेतना है। उदाहरण के लिए पेड़ खड़ा है। गर्मी हो, कहीं नही जा सकता, ठंडी हो भोगना पड़ेगी, वर्षा में भीगना पड़ेगा यह कर्म फल चेतना है। कर्म चेतना अर्थात् कार्य चेतना कुछ कर सकते हो। ज्ञान चेतना–कर्म का उदय कैसा भी रहे पर ज्ञानी पुरुष कर्म के उदय में कर्म के अनुरूप परिणमन नहीं करता है। अपने ज्ञान स्वरूप आत्मा को देखता है। यह कर्म का उदय चल रहा है मैं कर्म रूप नहीं हूँ। मैं तो ज्ञान स्वरूप हूँ। यह कर्म आज उदय में आया है, किन्तु सदा नहीं रहेगा। कर्म सदा एक सा नहीं रहता, सबके कर्म एक से नहीं रहते, कर्म बदलता है।

**प्रिय आत्मन् !**

मुझे कर्म का भोग नहीं करना है। मुझे अपने ज्ञान का भोग करना है। मुझे अपने दर्शन गुण का भोग करना है। जब मैं अपने ज्ञान, दशर्न, चारित्र का भोग नहीं करता हूँ। तब मैं कर्मों के भोग में

चला जाता हूँ। एक समय में एक का भोग कर पाओगे, दो का भोग नहीं होगा। या तो ज्ञान का भोग कर लो, या कर्म का भोग कर लो। जिस समय योगी सामायिक में विराजा है, उस समय आत्मा का भोग कर रहा है। तो उस समय क्या जलती हुयी सिगड़ी का भोग हो रहा है, नहीं, सिर पर रखी सिगड़ी जला रही है लेकिन भोग आग का नहीं हो रहा है, भोग अपनी आत्मा का हो रहा है। आत्मा का भोग करने वाले योगी के तन को एक श्यालिनी, भोग रही है, खा रही है, पर योगी अपने आत्मा को भोग रहा है। उसे पता ही नहीं है। यह है- भेद विज्ञान। मुझे ज्ञान का वेदन करना है, कर्म का वेदन नहीं करना है। हंस दूध-दूध को पीता है। पानी-पानी को छोड़ देता है। एक ही कार्य में ज्ञानी पुरुष ज्ञान-ज्ञान का वेदन कर लेता है और अज्ञानी-कर्म का वेदन कर लेता है। रास्ता एक ही है। एक ही रास्ते में ज्ञानी! जीव तीर्थ वंदना करता जाता है। कर्म निर्जरा कर लेता है और अज्ञानी जीव पिकनिक मनाता हुआ कर्म का बंध कर लेता है। अहो ज्ञानियो। एक ही कक्ष है उस एकांत कक्ष में ज्ञानी पुरुष स्वाध्याय, पूजा, अर्चा करता है कर्म निर्जरा कर लेता है और अज्ञानी एकांत में पाप करके कर्म बंध कर लेता है।

**प्रिय आत्मन् !**

तीन धारायें चल रही हैं- ज्ञानधारा, अज्ञानधारा, और ज्ञान-अज्ञान मिश्र धारा है। ज्ञान-अज्ञान के बीच में तुम्हें क्या वेदना है? तुम निर्णय करो कि मुझे कर्म वेदना है या ज्ञान वेदना है? कर्म-कर्म फल वेदते जाओगे तो कभी सुखी नहीं हो पाओगे? और ज्ञान का वेदन करो तो तत्क्षण सुख पाओगे। इस समय मुझे सुखदायक क्या है? मुझे अपनी आत्मा का वेदन करना है, कर्म के फलों का वेदन नहीं करना है।

**प्रिय आत्मन् !**

तू भोजन की थाली में से जिस समय चाहता है कि मैं रसगुल्ला का वेदन करूँ उस समय रसगुल्ला उठाता है, शेष चीजों को नहीं उठाता है। उसी तरह मैं कहता हूँ संसार की सभी बातों में से मात्र एक ज्ञान की बात उठा लो, उसका वेदन कर लो चैतन्य स्वादिष्ट पदार्थ को भोगो और सब बातों को छोड़ दो। वेदन किसका करना है? अहो ज्ञानियो! थाली में से यदि हम स्वादिष्ट पदार्थ को चुन सकते हैं तो इसमें से भी चुने रत्नत्रय के वेदन को छोड़कर के तू किसके वेदन की ओर जा रहा है? तूने निज भगवती आत्मा का वेदन छोड़ दिया। अहो ज्ञानी! तू निज भगवान आत्मा का वेदन नहीं कर रहा है। तू पर के संक्लेश में डूबा है, पर के क्लेश में डूबा है, पर की चिंता में लीन होकर के स्वयं वेदना का वेदन कर रहा है।

**प्रिय आत्मन् !**

एक समय में एक ही उपयोग होता है। जिस समय तू पूरब को देखेगा उस समय पश्चिम को नहीं देखगा। जिस समय पश्चिम को देखेगा उस समय पूरब को नहीं देखेगा। जिस समय पुत्र को निहारेगा, उस समय प्रभु को नहीं निहारेगा। जिस समय प्रभु को निहारेगा, उस समय पुत्र को नहीं निहार पायेगा। एक काल में एक काम होगा, एक कार्य होगा। जितने समय मैंने पर को निहारा है, उतने समय मैंने अपने स्वरूप को भुलाया है, मैं अपने से दूर हो गया। अरे! अपने पास में आओ, अपने भीतर आना है और तुम दूर खड़े हो, बाहर खड़े हो अहो ज्ञानी! जब मेरे द्वार पर कोई अतिथि आया तो मैंने दरवाजा खोला अंदर बुलाया लेकिन मैं अपने भीतर कब से नहीं गया? मेरे भीतर क्या-क्या है? अनंत गुणों का भण्डार होने के बाद भी मैंने खजाने को देखा नहीं है। बाहर की नौकरी कर रहा है किन्तु भीतर का खजाना देखा नहीं है।

**प्रिय आत्मन् !**

मुझमें अनंत शक्ति है। जितनी शक्ति सिद्धों में हैं, उतनी शक्ति मुझमें हैं। जो-जो गुण सिद्धों में हैं वह-वह गुण शक्तिरूप से मुझमें हैं।

**जारिसिया सिद्धप्पा, भवमल्लिय जीव तारिसा होंति।**

**जरमरण जम्म मुक्का, अट्ठगुणालंकिया जेण॥ 47॥ नि.सा**

जिस तरह सिद्ध भगवान सिद्धालय में हैं। उसी तरह मैं संसार में हूँ। हे प्रभु! जैसे म्यान से तलवार अलग कर दी जाती है वैसे ही इस शरीर से आत्मा को भिन्न कब करूँगा? ऐसी शक्ति दो प्रभु। ओहो! म्यान अलग है, तलवार अलग है। कहो ज्ञानियो! हमने तो तोता और पिंजरा को देखा है। और समझ चुके थे कि तोता अलग है और पिंजरा अलग है। यहाँ समझा रहे हैं तलवार अलग है, म्यान अलग है। म्यान, म्यान है, तलवार, तलवार है। तलवार, म्यान नहीं है। म्यान, तलवार नहीं है। म्यान में तलवार है। तलवार में म्यान नहीं है। शरीर में आत्मा है। आत्मा में शरीर नहीं है।

**प्रिय आत्मन् !**

जैसे योद्धा म्यान से तलवार को अलग कर देता है। वैसे ही योगी शरीर से आत्मा को भिन्न कर लेता है। जैसे म्यान में तलवार है वैसे ही शरीर में ही मेरा आत्मा है। मुझे आत्मा को खोजने के लिये अन्यत्र नहीं जाना है। एक बार यदि कार्माण शरीर से आत्मा भिन्न हो गयी तो सिद्ध बन

जायेगी। इस शरीर से तूने अनंतो, बार छुट्टी पायी है। लेकन नया जन्म फिर मिल गया। अरे! ओहो! देखो तो ऐसा क्या जाना कि एक बार जाके फिर वापिस आना पड़े। जैसे वृक्ष से पत्ता एक बार गिर जाता है, तो वह पत्ता वृक्ष में द्वारा नहीं लगता है। वैसे ही संसार से ऐसे जाओ कि पुनः संसार में न आना पड़े।

**''गृहतो मुनिवनमित्वा''**

वैरागी श्रावक घर से निकलकर मुनि के पास जाकर के फिर दुबारा घर की ओर नहीं लौटता। यह ग्यारह प्रतिमाधारी की परिभाषा है। एक बार घर से जाता है तो द्वारा घर को लौटता नहीं है। शरीर से आत्मा को यदि जुदा करना है तो ऐसे जुदा करो कि द्वारा शरीर ही धारण न करना पड़े। अभी तक तुमने कैसा जुदा किया कि शरीर पर शरीर धारण किये जा रहे हो? ऐसा क्या जुदा? अरे! ससुराल क्या जाना, जाना तो एक बार सिद्धालय जाना कि दुबारा संसार में न आना पड़े, न जाना पड़े। जैसे म्यान से तलवार को अलग कर देते हैं उसी तरह मैं अपनी आत्मा को इस शरीर से भिन्न कर सकूँ।

**प्रिय आत्मन् !**

**शरीर और आत्मा को भिन्न करने के लिये शस्त्र नहीं, शास्त्र चाहिये। अस्त्र नहीं, आत्मानुभूति चाहिये। साधन नहीं, स्वानुभूति चाहिये।** अपना उपयोग बाहर से हटाकर के भीतर आत्मा में लगा दो। समूह को नहीं भगाया जाता है। अपना उपयोग भीतर में ले जाओ, समूह तुमसे दूर हो जायेगा। समूह को हटाओ मत, समूह को भगाओ मत, अपने उपयोग को अपने भीतर में ले जाओ, समूह तुमसे दूर हो जायेगा। शरीर को तोड़ना-फोड़ना नहीं है। मात्र शरीर से उपयोग को हटाना और अपनी आत्मा पर उपयोग केन्द्रित कर देना ही शरीर को छोड़ देना है। शरीर से ममत्व का त्याग करके जिनेन्द्र भगवान के गुणों का चिंतन करना कायोत्सर्ग है। उतने काल तक के लिये शरीर से मोह का त्याग, ममता का त्याग। शरीर के विषय में विचार नहीं करना जिस समय तू शरीर के विषय का विचार नहीं करता है उसी समय आत्मा का विचार चालू हो जाता है और आत्मा का वेदन करते ही तू आत्मा का धनी हो जाता है।

**प्रिय आत्मन् !**

जैसे म्यान से तलवार भिन्न है, वैसे ही शरीर से आत्मा भिन्न है। जो मैं देख रहा हूँ, वह मैं नहीं हूँ। देखने वाला मैं हूँ, दिखने वाला मैं नहीं हूँ।

## देखे चेतन, दिखे अचेतन।

## तो फिर क्यों देखे?

ओहो! देखने वाला चेतन आत्मा है। जितना भी दिख रहा सब अचेतन दिख रहा। पुद्‌गल दिख रहा, ज्ञान का वेदन ही आत्मा का वेदन है। आत्मा का वेदन ही ज्ञान का वेदन है। जिस समय मैं अपने सम्यक् ज्ञान का वेदन करता हूँ, वही तो आत्मा का वेदन है।

**स्व संवेदन सुव्यक्तः, तनु मात्रो निरत्ययः।**

**अत्यन्त सौख्यवान आत्मा, लोकालोक विलोकनः॥ २१॥ इष्टोपदेश**

स्व संवेदन के द्वारा आत्मा का वेदन करो। हमारे योगी पुरुषों ने कैसे भीषण उपसर्गों के काल में आत्मा का वेदन किया है। तू जरा सी विपत्ति में बुखार का वेदन करता है। ओहो! यह कर्म उदय का काल है, इसे अपने ध्यान का काल बना लो। जिसके वेदन से मुझे लाभ नहीं होना है, उसका क्या वेदन करना? एक ही क्षण में दो चीज आपके सामने हैं। चयन करना है कि मुझे किसका वेदन करना है? अब मुझे अपनी आत्मा का वेदन करना है। चाहे दुख का समय हो चाहे सुख का समय हो क्योंकि सब दिन एक से नहीं होते, सबके दिन एक से नहीं होते।

**प्रिय आत्मन् !**

**होकर सुख में मग्न न फूले,**
**दुख में कभी न घबरावे।**
**बैर पाप अभिमान छोड़कर,**
**नित्य नये मंगल गावे॥**

कभी किसी भवन में रहने मिल गया। तो कभी किसी वनखण्ड में रहने मिलता है। हम साधुगण विहार करते हैं प्रातः बेला किसी भवन में होती है, तो संध्या किसी वनखण्ड में होती है। कभी लगता है कि यहाँ तो कोई पानी पीने का स्थान भी नहीं है। कभी किसी गरीब की झौपड़ी में निवास होता है, कभी किसी राजा के महल में निवास होता है, हमें तो दोनों में सम्भाव रखना होता है। मुझे इस भवन से प्रयोजन नहीं है, झौपड़ी से प्रयोजन नहीं है। मुझे न महल में रहना है, न झौपड़ी में, मुझे तो मेरी आत्मा में रहना है। आत्मा में रहने वाले को न झौपड़ी से प्रयोजन है, न महल से प्रयोजन है। यदि तू महल में रहने की इच्छा करेगा तो रे जीव! देख वह छिपकली भी तो महल में

रहती है। हाँ उसने भावना भाई थी कि महल में रहने मिले, महल में रह रही है। लेकिन यह नहीं समझ पायी कि महल में क्यों और क्या बनकर रहने मिले।

**प्रिय आत्मन् !**

इसलिये इन्द्रलोक और शीश महल में नहीं रहना है मुझे तो अपने आत्ममहल में रहना है। सम्पूर्ण ममत्व बुद्धि को जिसने निकाल दिया है, हटा दिया है तिरस्कृत कर दिया है। उसे न दुख में विषाद, न सुख में हर्ष है, न शत्रु है, न मित्र है। योग वियोग में, वन और भवन में, कांच और कंचन में, चित्त नहीं लुभाना। **अपने अंदर के परिणाम को सम्हालना ही साधना है,** बाहर को सम्हालना नहीं।

अरे! माताओ जितने बार तुम साड़ी का पल्ला सम्हालते हो, उतने बार आत्मा के परिणाम सम्हाल लो तो तुम सिद्ध बन जाओगे। अपने भावों को सम्हालो। मेरे परिणाम नीचे न गिर जायें, भगवान की पूजा में बैठे हैं, प्रभु के पास बैठे हैं, गुरु के पास बैठे हैं अच्छे परिणाम रखना।

**प्रिय आत्मन् !**

ममत्व बुद्धि होगी तो दुख में दुख का वेदन होगा, सुख में सुख का वेदन होगा। लेकिन जहाँ ममत्व नहीं है तो दुख और सुख दोनों समान हैं।

## ''शोक-प्रमोद माध्यस्थं''

एक राजा के पुत्र और पुत्री थे। पुत्र राजा से कहता है पिताजी! मुझे मुकुट चाहिये। पुत्री कहती– मुझे हार चाहिये। राजा के पास स्वर्ण कलश है पुत्र कहता मुझे मुकुट चाहिये, पुत्री कहती मुझे हार चाहिये। राजा दे देता हे आप को जो बनाना है, सो बना लो। मुकुट बन गया पुत्र प्रसन्न हो गया, पुत्री नाराज हो गयी लेकिन राजा को न प्रसन्नता है न खिन्नता है। चाहे स्वर्ण कलश मुकुट बनता तो स्वर्ण रहता, हार बनता तो भी स्वर्ण है, मेरा क्या गया?

**प्रिय आत्मन् !**

पुत्र को ममत्व है इसलिये वह हर्ष मना रहा है। पुत्री को शोक है उसके अनुकूल कार्य नहीं हुआ, वह दुख मना रही है। लेकिन पिता ज्यों का त्यों है।

आचार्य देव कुंद–कुंद स्वामी समयसार जी में लिखते हैं– यह मेरा है, मैं इसका हूँ, यह मेरा था, मैं इसका था, यह मेरा होगा, मैं इसका होऊँगा। ओहो! भूतकाल में यह मेरा था, वर्तमान में यह

मेरा है, भविष्य में यह मेरा होगा। ओहो! ज्ञानी! तू जो मान रहा कि यह मेरा। सत्यार्थ दृष्टि से आत्मा को छोड़कर के परद्रव्य तेरा हो ही नहीं सकता। जब परद्रव्य अपना नहीं हो सकता तो कैसे मान लिया कि यह मेरा है।

आप कहते हो मकान मेरा है। मैं अभी जाकर के मकान से पूछता हूँ, मकान चुप-चाप है लेकिन आप कह रहे हो मकान मेरा है। ज्ञानी! यही मूर्खता का लक्षण है कि तू पुद्गल के मिट्टी के कणों को एकत्रित करके कहने लगता कि यह मेरा है। अरे ज्ञानी! तेरा होता तो अनादि से तेरे साथ होता। और अनंत काल तक तेरे साथ जाता। न तू लाया है, न ले जायेगा। फिर तेरा क्या है? तेरा ज्ञान ही, तेरा है। तेरा दर्शन ही, तेरा है। दर्शन-ज्ञान के सिवा तेरा कुछ भी नहीं है।

ओहो! यह मेरे चाचा यह मेरे मामा यह मेरी बुआ, यह मेरे भतीजे, यह मेरे नाना, यह मेरी नानी भो ज्ञानी! यह न नाना हैं, न नानी है, केवल तेरी नादानी है। न कोई नाना है, न कोई नानी है, यह सब मोह की कहानी है। अज्ञान की निशानी है।

**प्रिय आत्मन् !**

जो सम्यक् प्रकार से मूर्ख है, परिपक्व मूर्ख है, बहुत समय से मूर्ख बना पड़ा है वही कहता है यह मेरे हैं। यह संसार एक वृक्ष है। पंछी की तरह हम सभी दिशा-दिशा से आये हैं ठहरे हैं, सुबह होगी अपनी-अपनी दिशा में उड़ जायेंगे। घर धर्मशाला है। न जाने कौन कहाँ से आया है? सब अपनी-अपनी दिशा में उड़ जायेंगे।

**प्रिय आत्मन् !**

ज्ञानी पुरुष का लक्षण है कि फिर ज्ञानी विकल्प नहीं करता है। टेंशन नहीं पालता है **"समझ गया, सम्हल गया"** सम्हलने के लिये और कुछ नहीं चाहिये समझ चाहिये। परिस्थितियाँ कैसी भी हो मनः स्थिति नहीं बिगड़ना चाहिये।

**प्रिय आत्मन् !**

**अपने परिणामों को सम्हालना संसार की सबसे बड़ी साधना है।**

भो ज्ञानी! जितनी बार तू अपने बाल सम्हालता है उतने बार यदि तू अपने परिणाम सम्हाल ले तो कल्याण हो जायेगा। ओहो! जरा सा यहाँ का बाल वहाँ हो जाता है, तो सम्हाल लेता है। लेकिन यहाँ के परिणाम वहाँ हो जायें तो कब सम्हालता है?

**प्रिय आत्मन् !**

प्रत्येक द्रव्य का परिणमन स्वतंत्र–स्वतंत्र है। मैं उसके परिणमन में कुछ नहीं कर सकता। भो आदिनाथ! आप अपने पोते मारीच को नहीं सम्हाल पाये। षट्खण्ड विजेता भरत अपने पुत्र मारीच को नहीं सम्हाल पाया। तू किसको सम्हालने बैठा है? अहो! ज्ञानियो दूसरे के सम्हालने में अपने परिणाम मत बिगाड़ना। आदिनाथ तीर्थंकर समोशरण में बैठकर भी मारीच को नहीं सम्हाल पाये। भरत चक्रवर्ती जिसने छ:खण्ड पर विजय पायी वह अपने पुत्र मारीच को नहीं सम्हाल पाया। इसलिए अपने आप को समझो, समझाओ, अपनी आत्मा को सम्हालो यही सबसे बड़ी समझ है।

**तेरे चरण कमल द्वय जिनवर, रहें हृदय मेरे।**
**मेरा हृदय रहे सदा ही, चरणों में तेरे॥**

हे प्रभु! मेरे हृदय में आपके दोनों चरण विराजमान हो जायें, कीलित की तरह, कभी मुझसे दूर न हों। हे जिनेन्द्र देव! आपके चरण ज्ञान और वैराग्य के दीपक की तरह हैं जो पाप और मोह रूपी अंधकार को नष्ट करते हैं। इसलिये दोनों चरण मेरे हृदय में सदा–सदा विराजमान रहें।

**प्रिय आत्मन् !**

द्रव्यश्रुत और भाव श्रुत यह दोनों चरण हैं। प्रभु के वे दो चरण रहेंगे ही। साथ में द्रव्य आचरण भाव आचरण भी हो दोनों चरण यदि हमारे हृदय में रहे तो नियम से हमारा विकास होगा। संयम के दो भेद हैं द्रव्य, भाव दोनों हमारे हृदय में स्थापित रहें। हे प्रभु! व्यवहार चारित्र और निश्चय चारित्र यह दो चरण हैं दोनों चरण मेरे हृदय में रहें। और मुझे प्रकाशित करें। जैसे–जैसे यह उपलब्धि होगी हमने अब तक दीप जलाया लेकिन अब मैं ऐसा दीप जलाना चाहता हूँ कि आपके चरण सदा–सदा स्मरण में रहें। मेरे हृदय में भगवान के चरण हैं कि नहीं? अंधकार को नष्ट करने वाले दो दीपक के समान, प्रभु के चरण लीन हुये की तरह, कीलित की तरह, स्थिर की तरह, उत्कीर्ण के समान, प्रतिबिम्ब के समान पांच प्रकार से बताया है। किसी प्रकार से स्थापित करो ऐसा नहीं अभी तो चरण विराजमान थे अभी चले गये। जब भी देखूँ चरण दिखें। आंखे बंद करूँ या खोलूँ बाबा दर्शन हो जाये।

हे जिनेन्द्र देव! आपके चरण अज्ञान और पाप रूपी अंधकार को हरने के लिये दो दीपक के समान हैं। इसलिये मेरे हृदय में यह दोनों चरण दीपक सदा जलते रहें। दोनों चरण दीपक लीन हुये की तरह, कीलित हुये की तरह, स्थिर की तरह, उत्कीर्ण किये के समान और प्रतिबिम्ब के समान दोनों चरण मेरे हृदय में हमेशा लवलीन रहें।

****

# स्वात्मानुसंधान

**एकेन्द्रियाद्या यदि देव! देहिनः, प्रमादतः संचरता यतस्ततः।**
**क्षता विभिन्ना मिलिता निपीडिताः, तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा॥ 5॥**

**भावार्थ** - हे देव! यदि प्रमाद से इधर-उधर चलते हुए मेरे द्वारा एकेन्द्रिय आदि जीवों को क्षत-विक्षत किया गया हो, या अपने समूह से अलग कर दिया हो, या दूसरे समूह में मिला दिया गया हो, तो मेरा यह दुष्कृत मिथ्या हो/निष्फल हो।

**विमुक्तिमार्ग प्रतिकूल वर्तिना, मया कषायाक्षवशेन दुर्धिया।**
**चारित्रशुद्धेर्यदकारि लोपनं, तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो!॥ 6॥**

**भावार्थ** - विषय और कषायों के वश होकर हे स्वामिन्! मोक्षमार्ग के प्रतिकूल आचरण करके मैंने यदि चारित्र की शुद्धि का लोप किया हो तो वह दुष्कृत मेरा मिथ्या हो।

**प्रिय आत्मन् !**

आत्म लोक की मंगल यात्रा पर गमन करने वाले आत्मीय यात्रियों के लिये अपने दोषों की आलोचना कर लेना नितांत अनिवार्य है। चन्द्रलोक की यात्रा पर भार लेकर नहीं जाया जा सकता है। फिर चैतन्य लोक की यात्रा में गमन करने वाले हे यात्रियो! कितना भार लेके जाओगे? कहीं पापों का भार यात्रा में बाधक न बन जाये। कहीं दोषों का भार, यात्रा में बाधक न बन जाये। इसलिये यात्रा की दूरी के साथ अपने साथ का सामान भी देख लेना चाहिये। यदि भार अधिक होगा -यात्रा में कठनाई और विलम्ब हो सकता है। मंजिल तक न पहुँच पाये तो यात्रा की सफलता क्या? इसलिये हम मुक्ति पथ के पथिक अंतरलोक के यात्री निज प्रकृति का आनंद लेने के लिये चिदानंद चिन्मय स्वरूप की स्वानुभूति लेने के लिये वीतराग-विज्ञान के प्रवर्तक, स्वात्म अनुसंधान

में स्वयं को जोड़ने के लिये चल रहे हैं। जीवन में जरा सा विकार हानि पहुँचा सकता है। मैंने प्रमाद के द्वारा, अज्ञान के द्वारा, जीवों की विराधना करके, कष्ट पहुँचाकर के, पीड़ा पहुँचाकर के छिन्न-भिन्न करके, किसी भी प्रकार से कष्ट पहुँचाया है। तो पाप का भार ही बढ़ा है और यह पाप का भार मैंने लाद लिया है।

अहो ज्ञानी! एक पर्वतारोही अपने सिर पर चार पत्थर लेके गया लेकिन ज्यों ही कुछ ऊँचाई पर चढ़ा कि एक पत्थर सिर से उतारना पड़ा। तीन पत्थर लेकर कुछ दूर चला, वजन भारी लगने लगा। दूसरा पत्थर उतार दिया। चलने में मदद हुई, फिर भी थक गया। उसने तीसरा पत्थर भी उतार दिया। और ऊपर चला, किन्तु जब चौथा पत्थर उतारा तब वह अपनी मंजिल पर पहुँच पाया तात्पर्य यह है। ये चार कषायों के पत्थर हमारे सिर पर रखे रहेंगे तो फिर हम शिवपथ की यात्रा, अंतरलोक की यात्रा कैसे कर पायेंगे? अभी-अभी भारत से सुनीता विलियम चन्द्रलोक की यात्रा पर गयी तो अति आवश्यक अल्प सामग्री साथ में ले गयी। क्योंकि भार होगा तो यात्रा भारी कठिन होगी। आचार्य कहते हैं- कि शिवलोक की यात्रा पर जाना है तो पापों का भार, कषायों का भार, दोषों का भार, कम कर देना भाई! ओहो! जब तू विदेश यात्रा पर जाता है। तब थोड़ा सा सामान रखता है। इसी में अपरिग्रह का सिद्धान्त समाहित है।

**प्रिय आत्मन् !**

''**भार लादना कुली का काम है, कुल दीपक का नहीं।**'' ओहो! अधिकतम भार गधा पर लादा जाता है। अहो ज्ञानियो! गधा का अर्थ है- गलत धारणा में जीने वाले को गधा कहते हैं। जो गलत धारणाओं में जीता है। ''गा याने गलत धा माने धारणा'' जिसकी धारणा है गलत वह कहलाता है- गधा। हमेशा गधा गलत धारणा में जीता है। वह गधा ही भार अधिक लादता है। कैसी गलत धारणा होती है? सुनो गधा का दूसरा नाम बहुत अच्छा है- बैशाखी नंदन। इतना प्यारा नाम है। बैशाखी नंदन नाम क्यों है? क्योंकि बैशाख के महिने में वह आनंद मनाता है। जब सभी जगह की घास खाली हो जाती है। घास सूख जाती है। तब गधा आनंद मनाता है। ध्यान देना बरसात में गधा रोता है। क्या करूँ? ओहो इतनी घास मुझे खाना पड़ेगी? और बैशाख में घास सूख जाती है। तब गधा आनंद मनाता है। इतनी घास मैंने खा ली। जितनी घास थी। घास का पूरा मैदान मैंने साफ कर दिया। भो ज्ञानी! ध्यान से सुनना गधा बरसात के दिनों में दुबला-पतला होता है। वैशाख के महिने में स्थूल हो जाता है। क्योंकि कि आनंद से स्थूल होता है। टेंसन से व्यक्ति दुबला-पतला होता

है। सारा संसार वर्षा ऋतु को पाकर के हर्षित हो रहा है। लेकिन गधा रो रहा है। प्रकृति में हरियाली छायी है, चारों ओर घास आ गयी है, छोटे-छोटे गाय के बछड़े हरे तृण के अंकुर बड़े प्रेम से खा रहे हैं। लेकिन गधा बेचारा तनाव में है। विकल्प में जी रहा है। ओहो! जहाँ गाय के बछड़े आनंद मना रहे हैं कि क्या आनंद है, क्या ईश्वर की देन है। प्रकृति ने जन्म दिया है तो उसने भोजन भी दिया है लेकिन गधा सोच रहा है इतनी घास कौन खायेगा? इतनी कौन खायेगा? ओहो! जब बैशाख का महीना आता है अन्य जानवर को भोजन नहीं मिलता है लेकिन वह गधा संतुष्ट है। यह भ्रम दशा है।

**प्रिय आत्मन् !**

भार-भारी बनाता है। और भारी वस्तु डूबती है। तराजू के दो पलड़ें होते हैं जो भारशील होता है वह नीचे जाता है जो भार रहित होता है वह ऊपर जाता है। हम निर्भार बने, जितना कम भार होगा, पतंग आकाश में उड़ती है कारण भार नहीं है। जिसका भार नहीं है उसके लिये आकाश ऊपर की ओर खींचता है। जितने जीव भार रहित होते हैं वे ऊपर जाते हैं। हम पाप का भार दोषों का भार, कषायों का भार, आत्मा पर लाद रहे हैं, तो ऊर्ध्वलोक कैसे जायेंगे?

**प्रिय आत्मन् !**

यह भार हमें भारी बनायेगा। और भारी वस्तु सदैव नीचे जाती है। इसलिये सबसे पहले हम सामायिक में प्रवेश पाने के लिये भार रहित होंगे। अंतरलोक की यात्रा करना है, अध्यात्म की यात्रा पर जा रहे हैं, पहले भार उतारो। अहो! ज्ञानी! वसन उतारने के बाद भी विषय नहीं उतरे तो भार कहाँ उतरा। अत: विभाव भावों का भार उतारो, तब स्वभाव में जा पाओगे।

**प्रिय आत्मन् !**

सामायिक में बैठने के पहले ही हमने क्षमा माँगी और क्षमा किया। आज हम और सूक्ष्मता को देखें - हमने एक इन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय सभी प्रकार के जीवों से कहा हे जीवो! तुम मुझे क्षमा कर देना अब मैं अपनी आत्म यात्रा पर जा रहा हूँ।

**प्रिय आत्मन् !**

जब तुम नौकरी से सेवा निवृत्त हुए पहले तुमने सबसे क्षमा मांग ली। अब तुम बाह्य जगत को छोड़कर के अंतर जगत में प्रवेश कर रहे हो, भौतिक जगत को छोड़कर के अध्यात्मिक जगत में प्रवेश कर रहे हो। शरीर को छोड़कर के आत्मा में प्रवेश कर रहे हो। इस संसार में रहते हुये भी मोक्ष

मार्ग में प्रवेश पा रहे हो, जब भीतर में प्रवेश पा रहे हो तो बाहर वालों से क्षमा मांग लो ताकि वे बाद में विकल्प देने न आ सकें। विघ्न करने न आ सकें। किसी भी तरह का कर्ज बाकी न रहे ताकि आप शांति से, निराकुलता के साथ अपने स्वरूप में रह सकें। जिस आनंद को पाने के लिये तुमने बाह्य जग का त्याग किया है। कहीं अंतर जगत में जाकर के आनंद भंग न हो जाये इसलिये उन हानि कर्ताओं से पहले सावधान रहो। कष्ट पहुँचाना धर्म नहीं है। पीड़ा देना धर्म नहीं है, फिर भी जाने-अनजाने में प्रमाद वश, अज्ञानतावश किसी न किसी प्रकार से चलते-फिरते उठते-बैठते बोलते हुए विराधना हो गयी हो, गृहस्थ निरंतर पाप की खान में रहता है। कोयले कि खान में रहने वाला कैसा भी व्यक्ति हो काला पड़ ही जाता है। और गृहस्थ तो पाप की खान में रहता है जब पाप की खान में रहेगा, दोषों की खान में रहेगा। तो कोई न कोई दोष,या पाप जीवन में होगा ही। हे प्रभु! मेरे जीवन में जो पाप हुये हैं। उन पापों से, उन दोषों से मुक्ति पाने के लिये मैं क्षमा माँगता हूँ। मैं दोष लेकर नहीं जाना चाहता, मैं पाप लेकर के नहीं जाना चाहता। अहो ज्ञानी! कितनी भी बड़ी गाड़ी में बैठ लेना लेकिन जब तू भोजन कक्ष में जायेगा तो गाड़ी को बाहर ही रखना पड़ेगा। उसी तरह से जब तू अपने भीतर में जायेगा तो परिग्रह के भार को बाहर रखना पड़ेगा। जरूरी नहीं है कि, वह मुझे क्षमा करे। किन्तु जब मैं क्षमा माँगता हूँ तो मेरा हृदय निर्मल हो ही जाता है, मेरा हृदय पवित्र हो जाता है, मेरा हृदय पावन हो जाता है।

ओहो! मैंने अपने सिर से भार उतारा, चाहे दूसरा अपने पर रखे न रखे, किन्तु मैं तो निर्भार हो गया, मैं तो निर्दोष हो गया, मैं तो निष्पाप हो गया। इसलिये हे ज्ञानियो! भार को घटाओ, बढ़ाओ नहीं। वर्तमान में पाप बढ़ रहा है, घट नहीं रहा है। पहले की पाप मात्रा और वर्तमान में पाप की मात्रा में बहुत अंतर है। ओहो! पहले आपसे दो पांव से विराधना होती थी, अब चार चक्र से विराधना होती है पहले पांव से देखकर चलते थे काँटें पर पैर न पड़ जाये, तो जीव की रक्षा हो जाती थी लेकिन अब नहीं हाती है।

**प्रिय आत्मन् !**

कभी एक इन्द्रिय जल की विराधना, अग्नि की विराधना, वायु की विराधना, वनस्पति काय की विराधना, पृथ्वी की विराधना हो जाती है। दो इन्द्रिय जीव हमसे मर जाते हैं। गृहस्थ क्या है? पीसना, कूटना, धोना, झाड़ू लगाना, बर्तनों को माँजते हैं, तनों को माँजते हैं, नरतनों को माँजते हैं, सब मैं पाप लगता है। एक बार चेतन को माँज लें, तो फिर सब पाप मिट जायेंगे। चेतन को माँजने का नाम है- सामायिक।

**प्रिय आत्मन् !**

तन को माजते-माजते बहुत समय निकल गया, एक बार अपने अंतर मन को माज ले मन में कोई कालिमा न रह जाये, मन में कोई खटास न रह जाये, मन में कोई पाप न रह जाये, किसी पाप की कणिका भी न रह जाये, दोष न रह जाये, क्योंकि छोटी सी भी बीमारी समय आने पर बड़ी हो जाती है, छोटी सी चिंगारी समय आने पर ज्वाला बन जाती है, छोटा सा भी शत्रु समय आने पर बलवान हो जाता है।

**प्रिय आत्मन् !**

छोटा सा भी दोष समय आने पर नरक में डुबा देता है। इसलिये दोषों को नहीं पालना है, गुणों को पालो। विराधना करना दुराचरण है, अशुभ आचरण है, अशुभ क्रिया है, किसी जीव की विराधना कर देना, विराधना हो जाना, यह शुभाचरण नहीं है, यह दुराचरण है, धार्मिक अनुष्ठान नहीं है, यह पापमयी अनुष्ठान है। इसलिये विराधना से बचो, आराधना में रचो। कोशिश करें हमारे द्वारा विराधना कम से कम हो।

आचार्य भगवान कहते हैं-

हे प्रभु! महावीर गौतम गणधर का नमस्कार स्वीकार करो। हे प्रभु! मैं कैसे चलूँ? मैं कैसे खाऊँ? मैं कैसे बोलूँ? मैं कैसे सोऊँ? मैं कैसे जागूँ? मैं कैसे रहूँ? मैं कैसे भाषण करूँ? मैं कैसे भोजन करूँ? जिससे पापों का बंध न हो, हे प्रभु? बताओं मैं कैसे करूँ? भगवान महावीर कहते हैं यत्न पूर्वक चलो, यत्न पूर्वक बैठो, यत्न पूर्वक सोओ, यत्न पूर्वक चेष्टा करो, यत्न पूर्वक भोजन करो, यत्न पूर्वक भाषण करो, इससे पाप बंध नहीं होगा। क्रिया नहीं रुक सकती पर क्रिया में सावधानी तो हो सकती है। चर्या नहीं रुक सकती पर चर्या में सावधानी तो हो सकती है। भोजन के बिना नहीं जी सकते पर भोजन में सावधानी तो कर सकते हो। पानी के बिना नहीं चलेगा पर पानी में सावधानी तो हो सकती है।

**प्रिय आत्मन् !**

आप अपने जीवन की कोई क्रिया बंद नहीं कर सकते हैं पर प्रत्येक क्रिया में सावधानी तो ला सकते हैं। कि हम उस क्रिया को यत्नाचारपूर्वक करें। यदि यत्नाचार पूर्वक क्रिया करते हैं तो जीवन में हिंसा कम हो जायेगी, चोरी कम हो जायेगी, पांचों पाप कम हो जायेंगे।

**प्रिय आत्मन् !**

यदि तुम दूसरे जीवों से भी क्षमा माँग चुके हो और दूसरे जीवों ने आपको क्षमा भी कर दिया है। तब भी यात्रा में दो बाधक तत्त्व हो सकते हैं। एक तो कषाय दूसरी इन्द्रियाँ। यदि यात्रा लोक में तुम्हें कषाय आ गयी, क्रोध आ गया, तुम बस से नीचे उतर आओगे। मायाचारी आ गयी, यात्रा नहीं कर पाओगे। लोभ आ गया, आगे नहीं बढ़ पाओगे। चार कषाय जो हैं यह मेरी यात्रा में बाधक हैं, जब-जब जीव मोक्ष-मार्ग के प्रतिकूल प्रवृत्ति करता है, तो मुख्य कारण होता है कषाय यह हमारा अंतरंग दोष है। अंतरंग भूल है। बिना कषाय उदय के हम कभी त्रुटि कर ही नहीं सकते हैं। एक कषाय होती है राग के वश में वह माया और लोभ को जन्म देती है, दूसरी कषाय द्वेष के वश में होती है वह क्रोध और मान को जन्म देती है। यह राग और द्वेष हमें मंदिर से दूर करते हैं। प्रभु से दूर करते हैं, गुरु से दूर करते हैं, शास्त्र से दूर करते हैं। भगवान से दूर करते हैं, मोक्ष से दूर करते हैं, मोक्ष-मार्ग के प्रतिकूल प्रवृत्ति तभी होती है जब कषायें उदय में आती हैं, या इन्द्रियाँ चंचल हो जाती हैं। दो ही कारण हैं। कषाय उदय के कारण जीव नीचे बैठने को स्वीकार नहीं करता। यहाँ एक संस्मरण सुनाना सन्दर्भानुसार उचित मानता हूँ-

अहो ! आचार्य भगवान् पांच की दीक्षायें हो रही हैं मुझे और दीक्षा दे दी जाये ? ठीक है भैया जी अभी भोजन का समय है आपकी भावना है, आपकी दीक्षा हो जायेगी लेकिन कल ही तो दीक्षा होना है। जाओ, अभी सब भोजन को गये हैं। तुम भी भोजन कर आओ। भोजन को गये, सबको यह मालूम था कि पाँच दीक्षायें हो रही हैं अत: पाँच चौकी लगी, पांच पाटे लगे, पांच थालियाँ लगी अब यह छठ्वें व्यक्ति पहुँच गये चूंकि वह उसी शहर के थे तो लोगों ने समझा यह लेने आये होंगे। तो किसी ने कहा ही नहीं कि आप भोजन कर लो, फिर हम लोगों को थोड़ी जानकारी लगी, भोजन के समय तब कहा भैया को और थाली लगवा दो। थाली लग गयी, लेकिन किसी ने चौक नहीं पूरा, पाटा नहीं लगाया, थाली लग गयी, भोजन हो गया, भोजन के बाद आये बोले आचार्य देव ! भोजन तो हो गया। आचार्य श्री ! अब आप दीक्षा तो दे ही रहे हो, पर एक विनती है यदि हमारी दीक्षा पहले क्रम पर हो जाये तो ज्यादा अच्छा रहेगा। क्यों ? हम वैसे ही तो बूढ़े आदमी और सबको कहाँ तक कितनी बार झुकते रहें ?

आचार्य श्री ! ने कहा अभी थोड़ा विश्राम करो जब अगली बार दीक्षायें होंगी उसमें तुम्हारी दीक्षा पहले नंबर हो जायेगीं। तत्काल उनकी दीक्षा आचार्य श्री ने निरस्त कर दी। यह मान कषाय का परिणाम। उनकी दीक्षा भी नहीं हो पायी और आयु समाप्त हो गयी। कहाँ ? मालूम चला कि वह

कटनी गये थे। स्टेशन पर आराम कर रहे थे। आराम करते ही रह गये। कषाय चारित्र से गिरा देती है। इसलिये कषायों को शांत करके रखो। तुम कितने भी प्रज्ञावन क्यों न रहो, तुम कितने भी साधनावान क्यों न रहो, तुम कितने भी ज्ञानवान क्यों न रहो लेकिन कषायों को शांत करके रखोगे तो तुम्हारी उन्नति होगी। यह साधना का मार्ग है इसमें कषायें शांत होगी, तो तुम्हारी उन्नति होगी। जल में तभी चेहरा दिखता है, जब जल शांत होता है। उबलते हुये जल में चेहरा नहीं दिखता। तुम साधु बन गये। कब बने हो? कषायों के शांत होने पर। तुम्हें साधु गुरु ने नहीं बनाया है, तुम्हारी कषायों कि शांति ने तुम्हें साधु बनाया है। और फिर कषाय उदय में आयेगी तो साधुता समाप्त हो जायेगी।

**प्रिय आत्मन् !**

श्रावक की हजार गलती होने पर भी वह उतना गलत नहीं माना जायेगा और साधु की एक गलती हो जाये तो वह गलत माना जाता है। इसलिये ध्यान रखो कि कषायें उदय में न आ जायें। द्वीपायन मुनिराज ओहो! जिनने तेरे पर उपसर्ग किया वह तो मोक्ष चले गये लेकिन तू उपसर्ग को नहीं सह पाया, तूने कषाय कर ली तो तू नरक चला गया। कषाय करने वाले ने बाद में क्षमा मांग ली। उपसर्ग करने वाला तो मोक्ष चला गया। लेकिन कषाय करने वाला नरक गया। ज्ञानियो यह शरीर है शरीर में मल है, कफ है, संसार की सर्वाधिक गंदगी इस शरीर में है। किन्तु फिर भी केवलज्ञान हो जायेगा, इतना मल होने के बाद भी केवलज्ञान में कोई बाधा नहीं। इतना शरीर अपवित्र है फिर भी केवलज्ञान हो जायेगा। किन्तु कषाय का एक कण भी रहा तो केवलज्ञान होने वाला नहीं है। जब सम्पूर्ण कषाय का मल निकलता है तब इसी आत्मा को केवलज्ञान होता है। यह मल-मूत्र जितना बाधक नहीं हैं। उससे ज्यादा बाधक है कषाय मल, राग मल, द्वेष मल, ज्ञानियो! मल को चिपका के नहीं चलते हैं मल को तत्काल धो लेते हैं। मल को साफ कर लेते हैं और कषाय का मल लगाये हो अरे! ज्ञानियो! कहाँ रही शुद्धि? अरे! सत्य बात समझना। यदि आप शुद्धि को जाते हो मल को साफ करने के बाद तीन बार हाथ साफ कर लेते हो। ज्ञानियो! लेकिन तुमने कषाय का मल मस्तिक में रख लिया ओहो! यदि मल-मूत्र के छीटे भी पांव हाथ पर पड़ जायें तो आप धो लेते हो और राग-द्वेष यह मस्तिक में रख लिया ओहो! भैया!भैया! सफाई करने वाले भी आज-कल टोकनी सिर पर नहीं रखते हैं। फिर हम कषाय का मल मस्तिष्क में रखकर कहाँ घूमेंगे। यह मस्तिष्क नगरपालिका का डिब्बा नहीं है, कचरे की टोकनी नहीं है, गंदगी की टोकनी नहीं है। जो इस मस्तिष्क में राग-द्वेष भर दिया जाये। कषाय का मल भर दिया जाये।

**प्रिय आत्मन् !**

यह कषाय का मल तुम्हें मैला कर देगा, मन मैला कर देता है, तन तो उजला, उजला होता जा रहा है लेकिन मन कितना मैला-मैला होता जाता है। इसलिये ध्यान देना कषाय मुझे मोक्ष-मार्ग से पतित कर देगी। चाहे राग रूप हो, चाहे द्वेष रूप हो। जब मंदिर की याद आये तो समझ लेना मोक्ष बुला रहा है, जब घर की याद आये तो समझ लेना मोह बुला रहा है। जब मोह बुलाता है तो घर की याद आती है, जब मोक्ष बुलाता है तो मंदिर की याद आती है। घर से मंदिर पास लगे तो समझ लेना कि मोक्ष की दूरी कम है। मंदिर से घर पास लगे तो समझ लेना कि मोक्ष की दूरी ज्यादा है।

**घर से मंदिर पास है, मंदिर से घर दूर।**
**ऐसे भव्यों को मिले, मुक्ति मार्ग जरूर॥**

जिनको घर से मंदिर तो पास लगता है। लेकिन मंदिर में आने के बाद लगे कि घर बहुत दूर है, अभी हम नहीं जाते। बाद में जायेंगे घर, तो समझ लेना मोक्ष पास है।

**प्रिय आत्मन् !**

मोह का उदय आता है वर्गणायें कार्य कराती है, आचार्य कहते हैं।

**विमुक्ति मार्ग प्रतिकूल वर्तिना........**

जो इन्द्रियों के वश्य होगा वह अवश्य क्या करेगा? आवश्यक क्या करेगा? अवश्य के कार्य को आवश्यक कहते हैं। जो वश्य नहीं होता उसे अवश्य कहते हैं। जो इन्द्रियों के वश में है, जो कषायों के वश में है उसे वश्य कहते हैं। वश के योग्य है इन्द्रियों के वश में है, मोह के वश में है, कषायों के वश में है। ओहो! इसके बिना तो चलता नहीं, सुबह से तो हमको भोजन लेना ही पड़ता है, रात में तो दूध लेना ही पड़ता है ज्ञानियो! इन्द्रियों के वश में हो गये अब अवश्य नहीं रहे। अवश्य नहीं हो, इन्द्रियों के वश में हो। गुलाम मत बनो, इन्द्रिय दास मत बनो; कषाय दास मत बनो, कषाय विजयी बनो। इन्द्रियजयी बनो। इन्द्रिय और कषाय के जेता बनना है, न कि उन के दास बनना है। जीव कषाय और इन्द्रिय के वश जब होता है। तो खोटी बुद्धि हो जाती है। जब भरत जैसा चक्रवर्ती कषाय के वश होकर के बाहुवली जैसे भाई पर चक्र चला दे तो कहो ज्ञानियो! कैसी कषाय होगी? कल्पना करो कहाँ परम विवेकी भरत किन्तु कषाय कुछ भी करा दे। इसलिये कषायों का त्याग आवश्यक है। इन्द्रियाँ खोटी बुद्धि देती हैं। स्पर्शन इन्द्रिय के कारण हाथी बंधन में पड़ जाता है।

ओहो ! मछली जल में तैर रही है कौन है निकालने वाला हे मछली ! तू दोष दे रही है कि इसने धागा डाला था, इसने आटा डाला था इसलिये में फस गयी, दोष दूसरे को दे रही है। हे मछली। तेरी स्वयं की गलती है यदि तू आटा को चखने न जाती तो कांटा न लगता है आटा को चखने के चक्कर में तुझे कांटा लगा है। और दोष दे रही है आटा को। रसना इन्द्रिय की लोलुपता मछली के लिये खोटी बुद्धि पैदा कर देती है। घ्राण इन्द्रिय की लोलुपता भौंरा के लिये। थोड़ा और, थोड़ा और। ओहो ! भौंरा फूल पर बैठा है, रस ले रहा है संध्या काल होने लगी लेकिन अभी सुगंध और ले लो थोड़ी सी। फूल मुरझाने लगा बंद हो गया। कोई बात नहीं सुबह होगी उड़ जाऊँगा आज नहीं तो कल उड़ जाऊँगा। रात्रि बीतेगी, सुबह होगी उड़ जाऊँगा। उसके बीच में हाथी आता है उस कमल के फूल को तोड़ लेता है।

**प्रिय आत्मन् !**

हम सोचते हैं कि आज नहीं तो कल वैराग्य के पथ पर बढ़ जायेंगे लेकिन पता नहीं मृत्यु रूपी हाथी बीच में आकर ही जीवन के फूल को न तोड़ ले जाये। कोई भरौसा नहीं होता है जीवन का। इसलिये वह भौंरा घ्राण इन्द्रिय में प्राण गवां देता है। चक्रवर्ती वज्रनाभि राज सभा में बैठे थे माली ने फूल ले जाकर दिया। चक्रवर्ती ने फूल को सूंघा, सूंघते ही देखा कि इसमें तो भौंरा मरा पड़ा है। चक्रवर्ती को वैराग्य आ गया। ओहो ! घ्राण इन्द्रिय में आसक्त होकर के भौंरे ने अपने प्राण दे दिये। अरे ! ये तो मात्र घ्राण इन्द्रिय में आसक्त, इसके प्राण जा रहे हैं। मैं तो पंचेन्द्रिय में लीन हूँ मेरा क्या होगा ? जब एक-एक इन्द्रियाँ खोटी बुद्धि पैदा करती हैं तो पांचों इन्द्रियाँ कितनी खोटी बुद्धि पैदा करेंगी ? चक्षु इन्द्रिय में पतंगा स्वयं अग्नि के पास जाते हैं। यह मत समझना कि अग्नि न होती तो पतंगा नहीं जलता, नहीं पतंगा ! अग्नि अपने में थी, तू अग्नि से दूर था। क्यों तेरे अंदर बुद्धि हुई कि तू अग्नि के पास गया, अग्नि ने कब तुझे पकड़ के बुलाया लेकिन यह खोटी बुद्धि हो जाती है। पतंगा स्वयं बार-बार अग्नि के पास जाता है। और जलकर प्राण दे देता है। कर्ण इन्द्रिय में आसक्त हो सर्प बंधन पाता है। देखो तो सर्प बिल के अंदर रहता है लेकिन बीन की ध्वनि सुनकर के बिल से निकल आता है मात्र कर्ण इन्द्रिय में आसक्ति से खोटि बुद्धि होती है। एक इन्द्रिय की दासता सर्प को और हिरण को बंधन में डाल देती है। तात्पर्य यह है कषाय और इन्द्रिय विषय प्राणी को संसार में डाल देते हैं। बंधनों में डाल देते हैं। हे जीव ! कषायों के वश मत हो, इन्द्रियों के वश मत हो, अवश्य बनो, वश्य नहीं। जितने समय भगवान की पूजा करेगा उतने समय इन्द्रिय के वश नहीं होगा क्योंकि मन में प्रभु का वास हो गया है। मेरा मन आत्मा के वश में हो गया है, मेरा मन भक्ति

के वश में हो गया, अब किसी के वश में नहीं होगा। मेरे मन को तो आदिनाथ ने वश में कर लिया। मेरे मन को वीतराग देव ने वश में कर लिया है। अब मेरा मन किसी के वश में नहीं होगा।

**प्रिय आत्मन् !**

जैसे लगाम रहित घोड़ा अश्वारोही को कहीं भी पटक देता है। वैसे चंचल इन्द्रियाँ व्यक्ति को कभी भी, कहीं भी पटक सकती हैं। इसलिये इन्द्रियों को चंचल मत होने दो, कषायों के वश मत होओ। दो के वश में मत होना, इन्द्रियों के और कषायों के। यदि इनके वश में हो जायेगा तो चरित्र मार्ग से भ्रष्ट हो जायेगा, मोक्ष मार्ग से पतित हो जायेगा। ज्ञानी ! तू तभी घर से निकला है जिस दिन तेरी कषायें शांत थीं, इन्द्रियाँ शांत थीं, उस दिन तूने घर का त्याग किया है। मेरे कहने से घर का त्याग नहीं किया। यदि तेरी कषायें शांत न होती। तेरी इन्द्रियाँ शांत न होती, तो तुझे तीर्थंकर भी घर से नहीं निकाल सकते। वैराग्य के मार्ग पर तू तभी आया है, जब कषायें और इन्द्रियाँ शांत थीं। तभी जीव संसार की ओर लौटता है जब कषाय और इन्द्रियाँ चंचल होती हैं। कषाय वशीकरण और इन्द्रिय वशीकरण के लिए ज्ञान और ध्यान में लीन रहो।

****

# दोष मुक्ति - प्रतिक्रमण

**विनिन्दनालोचनगर्हणैरहं, मनोवचः कायकषाय निर्मितम्।**

**निहन्मि पापं भवदुःखकारणं, भिषग्विषं मन्त्र गुणैरिवाखिलम्॥ 7॥**

**भावार्थ** - हे भगवन्! मैंने मन, वचन, काय और कषायों द्वारा संसार दुःख के कारण भूत जो पाप किये हैं उसे मैं आत्म निंदा-गर्हा और आलोचना द्वारा उसी प्रकार से नष्ट करता हूँ जिस प्रकार वैद्य मंत्रों के द्वारा समस्त विष को नष्ट कर देता है।

**अतिक्रमं यद्विमतेर्व्यतिक्रमं, जिनातिचारं सुचरित्र कर्मणः।**

**व्यधामनाचार मपि प्रमादतः, प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये॥ 8॥**

**भावार्थ** - हे जिनेन्द्र देव! ग्रहण किये गये चारित्र के पालने में जो प्रमाद से अतिक्रम, व्यतिक्रम अतिचार और अनाचार किया है उसे दूर कर चारित्र की शुद्धि के लिए मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

**प्रिय आत्मन् !**

जीव अनादि से है, कर्म अनादि से है। खान में पड़ा हुआ सोना जैसे कालिमा से युक्त होता है, वैसे ही जीव कर्म कालिमा से संयुक्त है। द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नो कर्म के भेद से कर्म तीन रूप है। मैं बुद्धिमान हूँ। मैं श्रीमान हूँ। मैं गुणवान हूँ। मैं रूपवान हूँ। भो ज्ञानी! इन वाक्यों में देखो कौन सा शब्द नहीं बदला है। और कौन सा शब्द बदल गया। बुद्धिमान के स्थान पर श्रीमान् आ गया, श्रीमान् के स्थान पर रूपवान आ गया, रूपवान के स्थान पर गुणवान आ गया। किन्तु ''**मैं**'' शब्द जो है यह आत्मा का सूचक है। श्रीमान्, रूपवान, धनवान यह कर्म के सूचक हैं। जीव और कर्म मिले हुये हैं। तो जीव अपना परिचय भी मिश्र धारा में देता है। मैं शब्द आत्मा का बोध कराता है, जो परिवर्तित नहीं होता है। सदा रहता है। बालक भी अपने को ''**मैं**'' कहता है, युवा भी ''**मैं**''

कहता है, वृद्ध भी **"मैं"** कहता है, इनमें बाल, युवा, वृद्ध शब्द परिवर्तित हो गया, लेकिन **"मैं"** शाश्वत है। अर्थात् आत्मा शाश्वत है।

**प्रिय आत्मन् !**

आत्मा राग द्वेष रूप परिणमन करता है। कर्म सामग्री लाकर देता है, कर्म सामग्री उपस्थित करवाता है। आत्मा उस रूप परिणमन कर देता है। कर्म और आत्मा यद्यपि भिन्न-भिन्न है किन्तु संसार दशा में कर्मों के उदय में यह जीव अपनी ज्ञान स्वरूप अवस्था को, आत्मा के स्वभाव को, जब भूल जाता है। तो उस समय में कर्म के अनुरूप चलने लगता है। लेकिन जब ज्ञान दशा में आता है तो कर्मों को अपने अनुकूल चला लेता है। कभी खेवटिया जब तीव्र लहरों के बीच में फस जाता है तो नाव के अनुरूप चलने लगता है, लेकिन नाविक जब अपनी कुशलता का प्रयोग करता है तो नाव को अपने अनुसार चला लेता है, उसी तरह यह जीव कभी कर्मों के अनुरूप चल देता है। कभी कर्मों को अपने अनुरूप चला लेता है। यदि नाव के अनुसार खेवटिया चले तो नाव कभी पार नहीं होगी। यदि कर्म के अनुसार ही हम चलने लगे तो फिर हम कभी भवसागर से पार नहीं हो पायेंगे।

**वह पथ क्या? पथिक कुशलता क्या?**
**जिस पथ में बिखरे शूल न हों।**
**नाविक की धैर्य परीक्षा क्या,**
**गर धारायें प्रतिकूल न हों॥**

ज्ञानी पुरुष! प्रतिकूल कर्म उदय मैं भी अपने स्वरूप को स्थिर रखता है। कुशल नाविक देख रहा है, लहरों के उत्ताल को, देखने के बाद भी जानता है मुझे अपने तट पर पहुँचना है। लक्ष्य में तट दिखाई देता है। और जो नाविक नहीं है वह लहरों के साथ बह जाता है। इसलिये नाव है तो नाविक भी चाहिये। यदि कार्य करना हो तो बुद्धि से करो, यदि ज्ञान का उपयोग नहीं किया तो यह कर्म तेरे लिये संसार समुद्र में डुबा देंगे। बिना नाविक के, बिना खेवटिया के नाव जैसे डुबाने के ही काम आती है। जिस नाव में खेवटिया न हो उस नाव का भविष्य क्या होगा? उसी तरह जिस कर्मशील आत्मा में सम्यक् ज्ञान न हो वह न जाने कैसे कर्म करेगा? आत्मा को संसार समुद्र में डुबा देगा। इसलिये हम कर्म के उदय के अनुसार नहीं चलते हैं। हम कर्मों को अपने अनुसार चलाते हैं। यदि ड्राइवर बस के अनुसार चलने लग जाये तो बस तो कभी भी नीचे उतर जायेगी, गड्डे में पहुँचा

देगी। ड्राइवर कहता है मुझे जहाँ बस ले जाना है मैं वहाँ पर बस लेकर जाऊँगा। तब ड्राइवर की कुशलता है। ड्राइवर अपनी प्रज्ञा से वाहन चलाता है उसी तरह मुझे अपनी प्रज्ञा से कर्म करना चाहिये। कर्म के अनुसार अपनी प्रज्ञा नहीं, प्रज्ञा के अनुसार कर्म करो। आप सभी कर्म के संचालक हैं, आप आत्मा हैं, जीव हैं, आप स्वामी हैं, कर्म सेवक है।, सेवक स्वामी के अनुसार चलता है, कि स्वामी सेवक के अनुसार चलता है? स्वामी सेवक को अपने अनुरूप चलाता है यदि सेवक के अनुरूप चलेगा तो स्वामित्व क्या रहा?

**प्रिय आत्मन् !**

स्वामी की प्रज्ञा सेवक को नियंत्रित रखती है। उसी तरह आत्मा कर्मों पर नियंत्रण रखती है।

**प्रिय आत्मन् !**

किस स्थिति में कर्म आते हैं? और कैसे बंधते हैं। अशुभ कर्मों का आना ही पाप का आना है। एवं शुभ कर्मों का आना पुण्य का आना है। शुभ कर्म आते हैं तो पुण्य कहलाता है। अशुभ कर्म आते हैं, तो पाप कहलाता है। संसार में सर्वत्र जहाँ-जहाँ आत्मा है वहाँ-वहाँ कर्म वर्गणायें हैं। ऐसा एक भी स्थान नहीं है जिस स्थान पर कर्म रूप परिणमन करने वाली पौद्गलिक वर्गणायें न हों। आप कहीं पर भी पहुंच जायें।

**जहाँ न पहुँचे सूरज किरणें, वायु के झोके।**
**वहाँ कर्म आकरके पकड़े, रुके नहीं रोके॥**
**मानव चलते है धरती पर, मीन मगर जल में।**
**पंछी उड़ते नभ मंडल में, कर्म ये जलथल में ॥**

**प्रिय आत्मन् !**

आप चाहे समुद्र के तल में पहुँच जाओ, चाहे आकाश में पहुँच जाओ, किसी वन खण्ड में पहुँच जाओ कर्म राशियाँ सर्वत्र भरी पड़ी हैं। पुद्गल के वे परमाणु सर्वत्र हैं। कहीं ऑक्सीजन लेने मिले न मिले लेकिन कर्म के परमाणु लेने मिल जायेंगे। इसलिये यह मत सोचो हम यहाँ से भाग जायेंगे तो मुझे कर्म नहीं पकड़ेगा। कर्म स्थान से नहीं बंधता, कर्म परिणाम से बंधते हैं। कर्म बंधने के दो ही कारण हैं योग और कषाय।

## कायवाङ्मनः कर्मयोगः।

उमास्वामी आचार्य लिखते हैं- मन, वचन, काय के द्वारा आत्म प्रदेशों में जो हलन-चलन होता है, परिस्पन्दन होता है वह योग कहलाता है। मानसिक क्रिया, वाचनिक क्रिया, शारीरिक क्रिया का परिस्पंदन योग कहलाता है। जब योग शुभ रूप होता है तब शुभास्रव कहलाता है। अशुभ रूप होता है तब अशुभास्रव कहलाता है। योग के द्वारा दो प्रकार के कर्म आते हैं। प्रकृति बंध रूप और प्रदेश बंध रूप। कषाय क्या है? जैसे किसान हल लेकर के जमीन को जोतता है और उसमें बीज वो देता है वे बीज कालान्तर में फलीभूत होते हैं ऐसे ही कषाय हृदय रूपी जमीन को जोतती है। जोतकर के पाप रूप बीज वो देती है और दु:ख रूपी फल पैदा करती है इसलिये कषाय कहलाती है। कषाय से स्थिति और अनुभाग यह दो प्रकार के बंध होते हैं।

बाह्य कारण के बिना जो अवस्था होती है वह प्रकृति कहलाती है। जैसे अग्नि की प्रकृति ऊर्ध्वगमन करना है, उष्णता स्वभाव है। प्रकृति निष्कारक होती है। गरम तो है ही अग्नि की ज्वाला कितनी भी नीचे जलाओ ऊपर की ओर जायेगी। जल कितनी ही ऊपर हो वह नीचे आयेगा। वायु की प्रकृति है चारों तरफ बहना, जल की प्रकृति है नीचे जाना, अग्नि की प्रकृति ऊपर जाना, नीम की प्रकृति कड़वी, गन्ने की प्रकृति मधुर यह निष्कारक है। गन्ने में मिठास किसने डाली? नीम में कड़वाहट किसने डाली, यह निष्कारक है।

प्रकृतियों के बंध को प्रकृति बंध कहते हैं। मूल में आठ प्रकृति हैं ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय यह द्रव्य कर्म जो है इसे प्रकृति कहते हैं, प्रकृति बंध के आठ भेद हैं। इनमें फिर प्रभेद होते हैं। ज्ञानावरणीय के पांच, दर्शनावरणीय के नौ, वेदनीय के दो, मोहनीय के अट्ठाईस, आयु के चार, नाम के तेरानवें, गोत्र के दो और अंतराय के पांच इस प्रकार से एक सौ अड़तालीस भेद प्रकृति बंध के हो जाते हैं। ज्ञानावरणीय की प्रकृति बंधेगी तो ज्ञान को ढकेगी। दर्शनावरण की प्रकृति दर्शनगुण को ढकेगी, वह दर्शन नहीं होने देगी। इसी तरह आगे समझना। प्रकृति बंध के बाद दूसरा बंध आता है प्रदेश बंध यदि प्रकृति बंध एक सा भी चलेगा तो प्रदेश बंध भिन्न-भिन्न होगा। क्योंकि प्रकृति बंध का यह नियम है कि सात कर्म का बंध प्रति समय होता है, जबकि आयु कर्म का बंध भुज्यमान आयु के त्रिभाग में होता है। सिद्धों के अनंतवें भाग और अभव्यों के अनंत गुणे अर्थात् अनंत इतने कर्म परमाणु बंधते हैं इसे समय प्रबद्ध कहते हैं। और समय प्रबद्ध परमाणु भी निर्जरा को प्राप्त होते हैं। फिर भी डेढ़ गुण हानि प्रमाण सत्ता में रहता है यही सिद्धान्त है। जैसे आप भोजन करते हैं भोजन करने के बाद वह भोजन मल-मूत्र रूप से विसर्जित हो

जाता है लेकिन फिर भी कुछ भोजन शरीर में शेष रहता है ऐसे कर्म परमाणु भी आपके पास शेष रहते हैं।

प्रकृति और प्रदेश बंध यह दोनों योगों की चंचलता से होते हैं। जिसके योग जितने अत्यधिक चंचल होते हैं, उतने ज्यादा कर्मों का बंध उसे होता है, स्थिति बंध कषाय से होता है। कषाय वह अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन रूप से चार प्रकार की है। प्रत्येक कषाय के क्रोध, मान, माया, लोभ चार भेद हैं। अनंतानुबंधी कषाय वाला जीव सर्वाधिक कर्मों को बांधता है। लेकिन अशुभ कर्मों को बांधता है। अनंतानुबंधी वाला सर्वाधिक पाप कर्मों को बांधेगा और संज्वलन वाला तीव्र पुण्य कर्म प्रकृति को बांधेगा। योग आमंत्रण देता है, निमंत्रण देता है, न्यौता देता है, योग तो कर्मों को न्यौता देता है, बुला लेता है लेकिन कषाय यदि न हो तो कर्मों को ठहरने की व्यवस्था नहीं मिलेगी, आवास व्यवस्था कषाय के हाथ में है। निमंत्रण व्यवस्था योग करता है। और आवास व्यवस्था कषाय करती है। जहाँ पर प्रचार-प्रसार तो हो और आवास व्यवस्था न हो तो वहाँ पर व्यक्ति नहीं ठहरेगा योग चंचल भी हो लेकिन कषाय न हो तो स्थिति बंध नहीं होगा। बच्चे यहाँ से वहाँ घूमते-घूमते बहुत चंचलता दिखाते हैं लेकिन कभी-कभी लगता है पलभर के लिये रूठेंगे फिर शांत हो जायेंगे। कषायों की मंदता रहेगी। और आदमी बैठा रहेगा लेकिन भीतर-भीतर में घुनता रहेगा क्योंकि कषायों में उनकी तीव्रता है।

एक व्यक्ति बैठा है चंचल नहीं है लेकिन कषाय तीव्र चल रही है तो कर्मों के बंध की प्रक्रिया अलग-अलग है। प्रकृति बंध और प्रदेश बंध तो योग से होगा लेकिन कषाय कम होने से कर्म ज्यादा देर के लिये नहीं बंधेगा। कर्म कितने समय के लिये बंधना चाहिये इसका नाम है स्थिति बंध। जो कर्म हम बांध रहे हैं उन कर्मों का टाइम पीरियड क्या होगा? टाइम वाउंड क्या होगा? कितने समय के लिये हमने उन्हें बांध के रखा है। प्रत्येक जीव भिन्न-भिन्न समय के लिये कर्मों को बांधता है। जैसे आप सौदा करते हैं यह पांच साल के लिये, यह दस साल के लिये, यह बीस साल के लिये, इसी तरह कर्मों का एक टाइम प्रीयेड है। कम से कम अंतर्मुहूर्त के लिये और अधिक से अधिक सत्तर कोड़ा-कोड़ी सागर तक के लिये, आप कर्म ले सकते हैं। इतने कर्म का बंध एक समय में बैठे-बैठे किया जा सकता है। कुछ नहीं करना पड़ता है मात्र तीव्र मिथ्यात्व उदय में आया और जीव इतना कर्म कर लेता है। यह कर्म अनंतानुबंधी मिथ्यादृष्टि संज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्य ही करेगा और कोई नहीं करेगा।

**प्रिय आत्मन् !**

कषाय स्थिति बंध कराती है। हम कितने चंचल हैं? यह कम महत्वपूर्ण है। हमारी कषायें कितनी प्रबल हैं यह ज्यादा महत्वपूर्ण है। यदि कषायें बलशाली नहीं हैं तो फिर स्थिति बंध अधिक नहीं पड़ेगा। जैसे बकरी का दूध जितना शक्तिशाली है, गाय के दूध में उससे ज्यादा शक्ति है, भैंस के दूध में उससे ज्यादा शक्ति है, शेरनी के दूध में उससे ज्यादा शक्ति है।

**प्रिय आत्मन् !**

गुड़ मीठा है, शक्कर उससे मीठी है, मिश्री उससे मीठी है, मिश्री से मीठा अमृत है। मात्रा सौ-सौ ग्राम सबकी समान है लेकिन अनुभाग सबका अलग-अलग है। आप ढाई सौ ग्राम खिचड़ी खाते हैं सहजता से पच जायेगी लेकिन ढाई सौ ग्राम मगद के लड्डू खा लेंगे तो पचाना आसान नहीं।

**प्रिय आत्मन् !**

दलिया, खिचड़ी, रोटी, लड्डू यह प्रकृति हो गई। प्रदेश ढ़ाई-ढ़ाई सौ ग्राम मात्रा है। स्थिति, इतने बजे से इतने बजे तक भोजन करना। उसके पश्चात् अनुभाग उसकी रस शक्ति क्या है? शक्ति भिन्न-भिन्न है। इसी तरह कर्मों के विषय में है। कषाय स्थिति बंध प्रदान करती है, कर्मों को ठहराती है। कषाय का कम करना ही कर्मों को कम बांधना है। और कषायों को ज्यादा करना कर्मों को ज्यादा करना है। इसलिये परिस्थिति कैसी भी हो किन्तु मनः स्थिति नहीं बिगाड़ना चाहिये। कषायें किंचित मात्र नहीं करना। किन्तु अनादि से मैंने कषायें की हैं और उसका परिणाम आज है कि मैं संसार में हूँ। संसार में मैंने राग-द्वेष किया, राग-द्वेष से कर्म बंधा, कर्म से भव मिला, भव से आयु हुयी, आयु से शरीर मिला, शरीर से इंद्रियाँ मिली, इन्द्रियों से प्रवृति हुयी, प्रवृतियों से फिर राग-द्वेष हुआ, फिर राग-द्वेष से पुनः कर्म बंध हुआ, इस प्रकार संसार चक्र चलता है। कषाय यानि राग-द्वेष क्योंकि राग में तेरह प्रकृतियाँ आ जाती हैं। माया, लोभ राग में। और द्वेष में क्रोध, मान इस तरह से राग-द्वेष करने से कर्म बंध होता है। जितनी कषायें कम होगीं उस व्यक्ति को कर्म उतना कम समय के लिये बंधेगा और हमने यदि कषायें ज्यादा कर लीं। देखो गुरु ने सजा दी कि आपको खड़े होना है, एक घंटे तक खड़े रहना, एक व्यक्ति छाया में खड़ा है, एक व्यक्ति गर्मी के स्थान पर खड़ा है स्थिति एक ही घंटा है टाइम सबका एक है लेकिन अनुभाग शक्ति भिन्न-भिन्न होगी। मैं कौन सा कर्म बांध रहा हूँ? प्रकृति बंध। कितनी मात्रा में बांध रहा हूँ? प्रदेश बंध। कितने टाइम के लिये बांध रहा हूँ? स्थिति बंध। कितनी शक्ति के साथ बांध रहा हूँ? उसकी फलदायी शक्ति क्या होगी? इसका नाम अनुभाग बंध है।

## मनोवचः काय कषाय निर्मितं।

हे प्रभु! जो पाप है वह भव दु:ख का कारण है। संसार के दु:खों का कारण पाप है। और पाप का कारण योग और कषाय है। मैंने स्वयं जो पाप किये हैं वे मेरे ही पाप मेरे लिये दु:ख के कारण हैं। कर्मों के निर्माण की प्रक्रिया का नाम है मन, वचन, काय और कषाय। कर्मों का नष्ट करने का क्या उपाय है? आचार्य कहते हैं- आत्म निन्दा करना। जो कर्म मैंने किया है वह मैंने अच्छा किया है या बुरा किया है इसका विचार करो मुझसे आज जो कर्म हुये हैं वे शुभ हुए या अशुभ हुए? यदि शुभ हुए हैं तो बड़ी खुशी की बात आप आनंद मनायें आपका अधिकार है, यदि बुरा कर्म हुआ है तो एक बार आत्म निन्दा जरूर कीजिये। कि हे प्रभु! ऐसा बुरा पाप मेरे जीवन में नहीं होना चाहिये था। मैं सम्यक् ज्ञानी जीव, मैं सम्यक् दृष्टि जीव, मैं विवेकवान जीव, मैं प्रज्ञावान जीव, मैं शास्त्रों को जानने वाला, गुरुओं के पास रहने वाला, जिन मंदिर को पहचानने वाला, कर्मों के बंध को जानने वाला, कर्मों के फलों को जानने वाला होकर भी मैंने ऐसा कर्म कैसे कर लिया हे प्रभु! यह मेरा कर्म यह मेरा पाप मिथ्या हो, नाश हो, समाप्त हो, ऐसा कर्म मैं दुबारा नहीं करूँगा, आत्मसाक्षी पूर्वक ऐसे भाव करना निंदा है। श्रावक और साधु दोनों सामायिक करते हैं। सामायिक के काल में अपने दिन भर के परिणामों का लेखा-जोखा करते हैं।

जैसे व्यापारी दिनभर की बिक्री के बाद सायंकाल घर आता है तो पूरा लेखा-जोखा करता हैं। कितनी आय हुई? कितना व्यय हुआ? उसी तरह से सामायिक के काल में श्रावक दिनभर के परिणामों का लेखा-जोखा स्वयं करता है। मैंने किसके प्रति कैसा व्यवहार किया? मैंने दूसरों के प्रति कैसे परिणाम किये? मेरे अपने परिणामों में कितना उतार आया है? कितना चढ़ाव आया है? क्योंकि दूसरा कोई सुने, न सुने अपने प्रति ईमानदार होना ही सच्ची साधना है। अपने प्रति ईमानदार होकर सामायिक करो। अपने परिणामों का चिंतन करो। मेरे परिणामों में कितने उतार-चढ़ाव आये हैं। निंदा क्या है? मैंने यह कार्य बुरा किया, मुझे ऐसा करना बुरा है, महापुरुष तो हितकारी कार्य करते हैं, कल्याणकारी क्रिया करते हैं। मैंने अशुभ क्रिया की, अशुभ विचार किया, अशुभ सोचा, अशुभ चर्या की, यह मेरे पद और पथ के अनुरूप नहीं है। उस क्रिया के प्रति ग्लानि पैदा करना, घृणा पैदा करना, ताकि वह पाप तुम्हारा दुबारा न हो सके। यदि हम बुरे कर्मों के प्रति ग्लानि पैदा नहीं करते हैं। घृणा पैदा नहीं करते हैं तो पुन: वही पाप होने की सम्भावना बनी रहती है। इसलिये उस पाप के प्रति ग्लानि और घृणा अवश्य होना चाहिये। यह निंदा कहलाती है। गुरु के समीप में जाकर के अपने दोषों का निवेदन करना गर्हा है गुरुदेव मेरे जीवन में ऐसे-ऐसे दोष हुये, उन दोषों

को मैं आप से निवेदन करता हूँ। यह परम सत्य है जब व्यक्ति आलोचना के काल में बैठता है। सभी प्रकार से अवलोकन करना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव सभी प्रकार से अपनी आत्मा को निहारना कि मेरी आत्मा ने किस द्रव्य के साथ कैसे परिणाम किये? किस क्षेत्र में कैसे परिणाम किये? किन भावों में कैसे परिणाम किये? किस समय मे कैसे परिणाम किये? ऐसा जानकर के आलोचना करना, अवलोकन करना, अपने ही आत्मा का अवलोकन करना, अपनी क्रिया का भीतर-भीतर अवलोकन करना आलोचना कहलाती है।

**आसमन्तात् लोचना इति आलोचना।**

सभी ओर से अपने आपको निहारना, अपने गुण-दोषों का विचार करना आलोचना है। जब आलोचना जागती है तब दोषों को देखते हैं, सिर भारी हो जाता है। आलोचना जागती है तो मस्तिष्क से सुमेरू का भार उतर जाता है। ओहो! मैंने ऐसा पाप किया, मैंने इतना भारी पाप किया, मैं ऐसा मानी, पापी, दुरात्मा, जड़धिया, मायावी, लोभी, मैं कैसा पाप कर बैठा? मुझसे ऐसा पाप स्वप्न में भी नहीं होना चाहिये था जो पाप मैंने जानकर कर लिया, कैसे में इन्द्रियों के वशीभूत हो गया? कैसे में कषायों के वशीभूत हो गया? जो ऐसा जघन्य पाप मुझसे कैसे हो गया? बार-बार विचार करने के बाद दोष मुक्ति का उपाय क्या है? इसलिए वह गुरु की शरण में जाता है। हे गुरुदेव! प्रभु तो मौन रहते हैं, उनसे निवेदन करने पर काम नहीं चलेगा अत: गुरु के पास जाता है। हे गुरुदेव! मेरे द्वारा ऐसा अपराध हो गया, आप उस अपराध को सुन लीजिये और सुनकर के जो भी दण्ड देना चाहेंगे वह मुझे स्वीकार होगा, गुरु उस पाप को सुन लेते हैं, यह विशेषता गुरु की होती है- कि जैसे कोई घी को पी लेता है, घी को पीने के बाद जीभ पर नहीं रखा रहता है। उसी तरह से गुरु ने जिसके दोष सुन लिये हैं, उन दोषों को जीवन में किसी दूसरे को नहीं बतलाते हैं। यही उनकी प्रामाणिकता है। जिस दिन गुरु शिष्य के द्वारा कहे गये गूढ दोषों को यदि दूसरे को बतला दें तो उनकी प्रामाणिकता समाप्त हो जाती है। प्रामाणिकता समाप्त हो जाने से शिष्य का भविष्य खतरे में हो जाता है। क्योंकि फिर वह अपने दोष कहाँ शुद्ध करेगा? इसलिये गुरु को बताया है अपरिस्रावी गुणधारी घी कि तरह दोषों को पी जाते हैं। अथवा गरम तवा पर जैसे पानी की बूंदे डाली जाये तो वह पानी की बूंदे तवा सोख लेता है अर्थात् वैसे ही शिष्य के दोषों को गुरु सोख लेते हैं। शिष्य अपना दोष कहता जा रहा है और गुरु ध्यान से सुनते हैं, रखते नहीं है। इस शिष्य ने किस दोष को कहा है दूसरे को सम्भावना ही नहीं होगी ताकि शिष्य सदा के लिये निर्मल हो जाता है। जब तक

दोषी निवेदन नहीं कर लेता है, तब तक मन में शल्य सी लगी रहती है। मैंने ऐसा पाप किया और ऐसा पाप हो गया सिर सुमेरू की तरह भारी हो जाता है लेकिन गुरु के पास जाकर निवेदन कर लेता है और मुक्त हो जाता है, हल्का हो जाता है, यह विशेषता होती है– गर्हा और आलोचना करने की।

एक शिष्य विचार कर रहा है मैं गुरु के पास जाऊँगा और अपने दोषों का निवेदन करूँगा। गुरु बहुत दूर है निवेदन नहीं भी कर पाया रास्ते में ही उसकी समाधि हो गयी लेकिन शिष्य तो दोषों का निवेदन करने जा ही रहा था उसका तो संकल्प था कि मैं दोषों का निवेदन करूँगा ज्यों ही गुरु मिलेंगे, जब भी गुरु मिलेंगे, मैं अपने दोषों को कह दूँगा। यदि रास्तें में समाधिमरण हो गया तो भी शिष्य आलोचक और दोषमुक्त ही माना जायेगा।

एक व्यक्ति मंदिर के दर्शनार्थ चला लेकिन मंदिर का द्वार बंद मिला लेकिन उसे दर्शन का ही फल मिलेगा। एक व्यक्ति ने साधु को आहार कराने का भाव बनाया, चौका लगाया पड़गाहन नहीं मिला, फिर भी उसे आहारदान का ही पुण्य लगेगा।

**प्रिय आत्मन् !**

कैसे–कैसे पवित्र भाव जीव लेके आते हैं। निंदा, गर्हा, आलोचना, प्रतिक्रमण ये चार ऐसी चीजें हैं जो पापों को नष्ट करती हैं। जैसे वैद्य की दवा बीमारी को नष्ट कर देती है वैसे ही गुरु के द्वारा दिया गया प्राश्चित और शिष्य के द्वारा की गयी आलोचना निंदा, गर्हा, प्रतिक्रमण उसके दोष को नष्ट कर देता है। जो शिष्य अलोचना ही नहीं करेगा, निंदा नहीं करेगा, गर्हा नहीं करेगा, वह सदा बीमार बना रहेगा। उसके अंदर से दोषों का रोग नहीं निकलेगा। इसलिये दोषों का रोग निकालने के लिये हम अपने आप को दोषरोगी स्वीकार करते हैं।

**आइरियो वि य वेज्जो, सिस्सो रोगी दु भेसजं चरिया।**

शिष्य रोगी है, आचार्य वैद्य है और चर्या औषधि चर्या है। आगमिक चर्या करना ही औषधि लेना है। चारित्र का पालना ही औषधि है। प्रमाद से यह जीव अतिक्रम करता है, व्यतिक्रम करता है, अतिचार करता है, और अनाचार करता है। हमने जो रत्नत्रय लिया है। सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र, मूलगुण–उत्तरगुण अथवा श्रावक के षट् कर्म इन सबके पालन करते हुये मन की शुद्धि हानि अतिक्रम कहलाती है। मन के विचार में कमी आ जाना, दृढ़ता में कमी आना यह अतिक्रम कहलाता है। जिस दृढ़ता से हमने जिस साहस से हमने व्रत लिया था उस साहस

में कमी आना अतिक्रम कहलाता है। मन शुद्धि की हानि होना अतिक्रम है। जो नियम लिया था उसकी मर्यादा को लांघना व्यतिक्रम है। एक बार प्रवृत्ति की अतिचार है बार-बार प्रवृत्ति करना अनाचार कहलाता है।

ज्ञानियो! अतिक्रम में पच्चीस प्रतिशत पाप है। व्यतिक्रम में पचास प्रतिशत पाप है। अतिचार में पचहत्तर प्रतिशत पाप है, अनाचार में सौ प्रतिशत पाप है। यदि धोखे से, भूल से, चूक से, कहीं अतिक्रम हो भी गया है तो उसे अतिचार तक मत ले जाओ, अनाचार तक मत ले जाओ। ड्राइवर गाड़ी चला रहा था। गाड़ी पटरी के नीचे उतर गयी, तब तक एक व्यक्ति बोला ड्राइवर जी गाड़ी नीचे जा रही है वह ड्राइवर बोले जब नीचे पहुँच ही गयी हो तो चली ही जाने दो ना। अरे! जब रात्रि भोजन करने की इच्छा होती है तो करने बैठ जाता है अरे! जब गाड़ी नीचे गिरने की होती है तो कहता है अरे भैया सम्हाल उसे आगे नहीं बढ़ने देते हैं। दिनभर में चलते-चलते कहीं पटरी से नीचे उतर गये तो वापस पटरी पर आ जाओ इसका नाम प्रतिक्रमण है।

****

# प्रतिक्रमण के पूर्व सामायिक क्यों ?

**क्षतिं मनः शुद्धि विधेरतिक्रमं, व्यतिक्रमं शील व्रतेर्विलंघनम्।**
**प्रभोऽतिचार विषयेषु वर्तनं, वदन्त्यनाचारमिहातिसक्तताम् ॥ 9 ॥**

**भावार्थ** – हे प्रभो! आपने मनः शुद्धि के विनाश को अतिक्रम, व्रत की मर्यादा के उल्लंघन को व्यतिक्रम, इन्द्रिय विषय सेवन को अतिचार तथा आसक्ति पूर्वक विषय सेवन को अनाचार कहा है।

**यदर्थमात्रा पदवाक्यहीनं, मया प्रमादाद्यदि किंचनोक्तम्।**
**तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवी, सरस्वती केवलबोधलब्धिम्॥ 10॥**

**भावार्थ** – मैंने प्रमाद से यदि अर्थ, मात्रा, पद और वाक्य से हीन कुछ कहा हो तो, हे सरस्वती देवी! मेरे उस अपराध को क्षमा कर मुझे केवलज्ञान रूपी लब्धि दे।

**प्रिय आत्मन् !**

बुद्धि के लिये स्वाध्याय, शुद्धि के लिये प्रतिक्रमण, विशुद्धि के लिये सामायिक करना चाहिए। छोटा सा बालक बरसात के दिनों में रेतीले मैदान में खेल रहा है। पांव पर धूल जमा रहा है। यह मेरा घर है। एक घर बन गया, थोड़े और आगे पांव रखा, पांव पर रेत जमायी दूसरा घर बन गया। इस क्रम में उस बालक ने अनेक घर बनाये, किन्तु जब घर के भीतर से माँ की आवाज आयी बेटा! खीर बन गयी। बेटा ने ज्यों ही सुना खीर बन गयी, जिन पांवों से घर बनाया था उन्हीं पांवों से मिटाने लगा, जिस एक घर कि सुरक्षा के लिये वह बालक दूसरें बालकों से लड़-झगड़ रहा था और

ज्यों ही खीर की आवाज सुनी और एक दूसरे बालकों ने पैरों से घर-घूला मिटाये और चल दिए माँ के पास खीर खाने को........।

**प्रिय आत्मन् !**

आपके जीवन का वह दिन कितना अच्छा होता था जब आप पांव पर घर-घूला बनाते थे और अपने ही पांव से मिटा दिया करते थे। स्वाभाविक बात है, यदि आपको खीर खाना है, तो फिर घर-घूला छोड़ना ही पड़ेगा, तुम सोचो कि मैंने परिग्रह का घर-घूला भी बनाया है। अंतर आत्मा कि आवाज जब मुझे बुलाती है, मेरे भीतर की आवाज आती है तो बाहर को हमें छोड़ना पड़ेगा। वह बालक बाहर का मैदान छोड़ देता है क्योंकि बाहर घर-घूला का आनंद तो है लेकिन खीर खाने तो माँ के पास ही मिलेगी। यदि बाहर मिलेगी, तो मिट्टी मिलेगी। मिट्टी को पांव पर जमाये रहेगा तो मुझे खीर खाने नहीं मिलेगी। यह आंखों से जो दिख रहा है इन मिट्टी के घर-घूलों को छोड़कर के अंतरलोक की यात्रा पर जाओ और देखो तुम्हारे स्वभाव की खीर तैयार है। हम कब तक इन घर-घूलों में खेलते रहेंगे, मैंने बाहर की यात्रा कर ली है। अब भीतर में लौट आने का नाम है-प्रतिक्रमण। जो दोष भूतकाल में हो गये है उन दोषों से निर्वृत्त होने के लिये जो क्रिया की जाती है वह **प्रतिक्रमण** है।

**दव्वे, खेत्ते, काले भावे, य कदावराह सोहणयं।**
**णिंदण-गरहण व जुत्तो, मण, वय कायेण पडिकमणं॥**

द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव, में जो अपराध किया है, जो अपराध हुआ है उसके शोधन के लिये, उसको दूर करने के लिये, उसको नष्ट करने के लिये, उस अपराध को माफ करने के लिये मन से, वचन से, काय से, मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। मानसिक प्रतिक्रमण, वाचनिक प्रतिक्रमण कायिक प्रतिक्रमण के भेद से प्रतिक्रमण तीन प्रकार का होता है। आप कभी मन से क्षमा मांग लें, कभी वचन बोल के क्षमा मांगे, और कभी काय से भी मांग लेते हैं। हाथ जोड़ना कायिक क्षमा, क्षमा कहना वाचनिक क्षमा, जब व्यक्ति उपस्थित नहीं होता है भाव सहित अन्तर्मन से क्षमा भाव रखना मानसिक क्षमा होती है।

**प्रिय आत्मन् !**

प्रतिक्रमण एक वह क्रिया है जो आत्मा में प्रवेश कराती है, और सामायिक वह क्रिया है जो आत्मा में ठहराती है। प्रतिक्रमण दोष मुक्त बनाता है और सामायिक गुणों में निवास कराती है।

प्रतिक्रमण भूतकाल के पापों को दूर हटाने के लिये किया जाता है, सामायिक वर्तमान में जीने के लिये की जाती है। प्रतिक्रमण में हम पूर्व में हुये पापों को याद करते हैं तथा उन पापों को दूर करते हैं, सामायिक में वर्तमान में आत्मा के स्वरूप का विचार करते हैं। प्रक्रिमण की सीमा निश्चित है जितने दोष हुये, या जो दोष हो सकते हैं उन दोषों के विषय में चिंतन करेंगे किंतु सामायिक के लिये सात तत्त्व, नौ पदार्थ, व्रत, गुण, धर्म, बारह भावना, सोलह भावना, सामायिक का क्षेत्र असीम है सामायिक के लिये जिन परिणामों से समता जागे उन सबको विषय बना सकते हो, लेकिन प्रतिक्रमण के लिये जो आपकी चर्या में निहित मूलगुण हैं, उत्तर गुण हैं उनमें जो दोष हुये हैं उसी का निवेदन किया जाता है।

**प्रिय आत्मन् !**

यदि प्रतिक्रमण ही नहीं हुआ है तो सामायिक संभव नहीं है। इसलिये हमारे आचार्यों ने पहले प्रतिक्रमण को रखा है बाद में सामायिक को रखा है। यदि दोष किये बैठे हो तो सामायिक कहाँ? जब तुमने नहाया नहीं तो अभिषेक के पात्र नहीं हो इसी तरह तुमने प्रतिक्रमण नहीं किया है तो सामायिक की पात्रता नहीं है। जब तुम बिना नहाये अभिषेक के पात्र नहीं हो, पूजा के पात्र नहीं हो, तो बिना प्रतिक्रमण किये सामायिक की पात्रता नहीं आ सकती है। पहले प्रतिक्रमण स्नान क्रिया है, और सामायिक पूजा क्रिया है, प्रतिक्रमण स्नान क्रिया है, आत्मा को स्नान कराना, दोष मुक्त कराना, जो मैल लग चुका है, जो गंदगी लग चुकी है, अतिक्रम, व्यक्तिक्रम, अतिचार, अनाचार किसी भी प्रकार का कोई भी दोष छू गया है तो उस दोष को कैसे दूर करें? बोलो ज्ञानी! यदि तन पर मैल लगा है, मल लगा है, तो फिर विशुद्ध कार्य करने की परिणति नहीं बनती है, वही पद्धति यहाँ है, यदि किंचित मात्र भी मन में दोष है तो पहले दोष को साफ करो, नहाने के बाद ही अभिषेक होता है। सांगानेर में स्पष्ट लिखा है- अभिषेकार्थी पहले स्नान कक्ष में स्नान करें बाद में अभिषेक करें। सामायिक जब-जब बतायी है तब-तब पहले प्रतिक्रमण बताया है अपररात्रि प्रतिक्रमण, प्रतिक्रमण के बाद सामायिक, दोपहर में ईर्यापथ प्रतिक्रमण फिर सामायिक, सायंकाल में पहले प्रतिक्रमण बाद में सामायिक इससे सिद्ध होता है कि पहले स्नान बाद में भोजन। यदि कोई पहले भोजन करे और बाद में स्नान करे तो क्या शोभा देगा? नहीं देगा। सामायिक तक पहुँचने के लिये प्रतिक्रमण के रास्ते से चलना होगा, तुम सोचो में रास्ते पर न चलूँ और मंजिल पर पहुँच जाऊँ तो ऐसा नहीं होगा। सामायिक तक पहुँचने के रास्ते क्या-क्या हैं? पड़ाव क्या-क्या हैं? ध्यान देना

होगा, मैं तुम्हें सामायिक महल तक ले जा रहा हूँ। मैं आत्मा के पास तक ले जा रहा हूँ। आत्मा के पास तक जाने का रास्ता क्या है। पहले दोष मुक्त हुये कि नहीं ? यदि दोष युक्त हो, तो फिर तुम्हें दोष ही याद आयेंगे और वे दोष खटकते रहेंगे और सामायिक मैं तुम्हारा मन नहीं लगने देंगे। हम कहते हैं– सामायिक में मन नहीं लग रहा ? या तो कहीं अतिक्रम है, व्यतिक्रम है, अतिचार है या अनाचार है।

यदि भोजन में मन नहीं लग रहा है तो कुछ न कुछ कारण होना चाहिये। ध्यान देना भो ज्ञानी ! जिस दिन तू नहा धोकर के मंदिर के दर्शन करके भोजन करने बैठता है तो उस दिन भोजन में ज्यादा मन लगता है और सच कहूँ तो सुबह के भोजन में जो मन लगता शाम के भोजन में मन नहीं लगता है। क्योंकि सुबह का भोजन तुम स्नान करके, दर्शन करके करते हो और शाम का भोजन बिना स्नान किये करते हो। प्रतिक्रमण स्नान विधि है, सामायिक भोजन विधि है। अर्थात् सामायिक आत्मा का भोजन है। यदि प्रतिक्रमण नहीं किया तो तूने स्नान नहीं किया और सामायिक नहीं की तो भोजन नहीं किया। आत्मा को स्नान भी आवश्यक है और आत्मा को भोजन भी आवश्यक हैं। तन का स्नान और तन का भोजन हम कर लेते हैं लेकिन चेतना का स्नान और भोजन तो प्रतिक्रमण और सामायिक है। वस्तुतः स्थिति यह है कि हम आडम्बर के घेरे में पड़कर के लाखों का द्रव्य व्यय कर लेते हैं और प्रतिक्रमण, सामायिक से दूर रह जाते हैं। बड़े-बड़े अनुष्ठानों में हमें प्रतिक्रमण करना नहीं सिखाया जाता है, सामायिक करना नहीं सिखाया जाता है। ज्ञानियो ! इसीलिये कहते हैं कि आत्मा तक नहीं पहुँचे तो जैन नहीं हुये, अपने को जानना ही तो जैनधर्म है, पर को जानना ज्ञान नहीं है, पुस्तकें पर का परिचय कराती हैं, आत्मा का नहीं, आत्मा का परिचय सामायिक से होता है। प्रतिक्रमण का आशय है बालक ने आवाज सुनी और अंदर चला गया, माँ ने खीर परोस दी, यानि तुमने प्रतिक्रमण किया भीतर में हुये पापों के प्रति पश्चाताप दोषों की निर्वृत्ति करली। साधक कहता है–

**''पापिष्ठेन दुरात्मना जड़धिया, मायाविना लोभिना।**
**राग-द्वेष मलीमसेन मनसा, दुष्कर्म यन् निर्मितं॥**
**त्रैलोक्याधिपते जिनेन्द्र भवतः, श्रीपादमूलेधुना।**
**निंदा पूर्व महं जहामि सततं, वर्वरतिसु सत्पथे॥**

हे प्रभु ! सत्पथ में चलने की इच्छा से मुझ पापी के द्वारा, खोटी आत्मा के द्वारा, खोटि बुद्धि के द्वारा, मायावी और, लोभी के द्वारा राग-द्वेष से मलीन मन के द्वारा, जो-जो पाप हुये हैं। हे त्रैलोक्याधि देव ! आपके श्री चरणों में आज सत्पथ में चलने की इच्छा से उन समस्त पापों की शुद्धि के लिये मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

**प्रिय आत्मन् !**

किसी के दोषों को देखने के लिये यह आँखें काम आ सकती हैं। लेकिन अपने दोषों को देखने के लिये सूक्ष्मदर्शी यंत्र भी काम नहीं आयेगा। ध्यान देना दूसरे के दोषों को देखने के लिये तो सूक्ष्मदर्शी यंत्र भी काम नहीं आता है। आत्मदोष दर्शन के लिए ज्ञान की आँख, वैराग्य की आंख चाहिए, जब ज्ञान और वैराग्य की आँख होती है तो मुझे निज के दोष दिखाई देते हैं और अपने दोषों को देखना ही अपने गुणों को पाना है।

वह शिल्पी कभी प्रतिमा नहीं गढ़ सकता है जिस शिल्पी को अपनी प्रतिमा में दोष न दिखता हो।

**प्रिय आत्मन् !**

अपने दोषों को निहारना ही तो प्रतिक्रमण है। अपने दोषों का आकलन करना और उनको हटाना प्रतिक्रमण है। सामायिक यदि गुणों से भरना है, तो प्रतिक्रमण दोषों को हटाना है। प्रतिक्रमण वर्तन को माजना है, तो सामायिक वर्तन में परोसना है। पहले वर्तन को माजा जाता है, कि पहले वर्तन में परोसा जाता है ? पहले वर्तन मजा हुआ होना चाहिये, बाद में उसमें खीर परोसी जायेगी।

**प्रिय आत्मन् !**

पहले प्रतिक्रमण बाद में सामायिक होना चाहिये। वर्तन को माजना आवश्यक है। ''दूसरे के दोष देखने के लिये तो आँखें काम आ सकती है। लेकिन अपने दोष देखने के लिये तो सूक्ष्मदर्शी यंत्र भी काम नहीं आयेगा। ज्ञान कभी-कभी पुस्तकों से आता है कभी-कभी स्वत: से आता है। जो स्वयं से प्रकट ज्ञान होता वह जीवन भर काम आता है, वह सही दिशा दिखाता है। मन शुद्धि कि हानि हो या वचन शुद्धि की हानि हो, सभी दोषों का निवारण प्रतिक्रमण से होता है। कपड़े में मैल तो कहीं भी और कभी भी किसी भी प्रकार से लग सकता है। लेकिन धोने के लिये तो वही पानी है, वही साबुन हैं। दोष कहीं पर भी हुआ हो, कैसा भी हुआ हो, लेकिन दोषों के धोने का

स्थान गुरु और प्रभु का पादमूल है। और दोषों के धोने की क्रिया तो प्रतिक्रमण है। यदि मेरा मन, वचन, काय, कहीं भी अशुद्ध हुआ हो, किसी भी प्रकार से अशुद्ध हुआ है तो धोने की क्रिया है प्रतिक्रमण, विराजो भगवान के पादमूल में, विराजो गुरु के पादमूल में और प्रतिक्रमण प्रारम्भ करो कि – हे प्रभु ! मुझ पापी के द्वारा, जड़ बुद्धि के द्वारा, मायावी के द्वारा, लोभी के द्वारा, लालची के द्वारा, हे परम पिता परमेश्वर जो-जो दोष हुये हैं उन दोषों का मैं निवेदन करता हूँ। हे प्रभु ! यह दोष मेरा माफ हो।

**प्रिय आत्मन् !**

कुछ लोग ऐसे होते हैं जो रोज के कपड़े रोज साफ कर लेते हैं। कुछ ऐसे भी होते हैं जो सप्ताह, पन्द्रह दिन तक रखे रहते हैं।

**प्रिय आत्मन् !**

किन्हीं के कपड़ों में लीख, जुँआ क्यों पड़ जाते हैं? क्योंकि पसीने से निकले हुये जीवाणु कपड़ों में चले जाते हैं और कपड़ों में पैदा होते रहते हैं। प्राय: आपने देखा होगा, डाक्टर जो कपड़े प्रयोग करते हैं उनको तत्काल साफ करवाते हैं। दो-चार-दिन के लिये नहीं रखते हैं। इसी तरह दोष दो-चार दिन नहीं रखा जाता है, बीमारी दो-चार दिन नहीं रखी जाती है। बीमारी के लिये, दोष के लिये तत्काल निकालना चाहिये। तत्काल हटाना चाहिये। प्रतिक्रमण तत्काल होना चाहिये, नहीं हो तो सुबह, सायं, दो काल तो इसके निश्चित किये हैं। अभी साधु आहार के लिए गया, और ज्यों ही आहार से लौटकर आया तो गुरु ने कहा – बेटे प्रतिक्रमण करो। तुम बाहर से चलकर आये हो चलने में विराधना हुयी होगी किसी प्रकार से मन-वचन अशुद्ध हो गया हो, काय अशुद्ध हो गया हो तो लौटकर आये हो मन साफ कर लो। तात्पर्य यह है कि अशुद्ध दशा में भोजन नहीं होता है पहले प्रतिक्रमण बाद में सामायिक। प्रतिक्रमण जब आपके मन को साफ कर देगा फिर सामायिक मन में प्रवेश कर जायेगी। प्रतिक्रमण आपकी चेतना के वर्तन को मांज देगा फिर सामायिक की खीर उसमें भर जायेगी।

प्रतिक्रमण हमारे मन के विकल्प को, तनाव को, राग-द्वेष को, वैर -विरोध को नष्ट करेगा और सामायिक गुणों के कोष को भर देगी। प्रतिक्रमण भी अनेक प्रकार का होता है। सबसे पहले ईर्यापथ प्रतिक्रमण, दैवसिक प्रतिक्रमण, रात्रिक प्रतिक्रमण, पाक्षिक प्रतिक्रमण, चातुर्मासिक प्रतिक्रमण, वार्षिक प्रतिक्रमण, युग प्रतिक्रमण। जो दिन के अंत में किया जाता है वह दैवसिक जो

रात्रि के अंत में किया जाता है। वह रात्रिक प्रतिक्रमण। जो आहारचर्या के बाद किया जाता है वह ईर्यापथ जो पन्द्रह दिन के अंतराल से किया जाता है पाक्षिक प्रतिक्रमण। जो चार माह में किया जाता है वह चातुर्मासिक प्रतिक्रमण। जो पांच वर्ष के अंत में किया जाता है वह युग प्रतिक्रमण। इस तरह से प्रतिक्रमण के विभिन्न भेद हैं। सामायिक का कोई भेद नहीं है सामायिक अभेद के लिये हैं। अथवा व्यवहार अपेक्षा यह कहिये द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा सामायिक के चार भेद हैं।

**प्रिय आत्मन् !**

जब तुम सरोवर में डुबकी लगाओगें तब की शीतलता अलग होती है और बाहर निकलने के बाद कुछ शीतलता कम होती है और धीरे-धीरे रास्ते में चलते-चलते और शीतलता कम होती जाती है और दिन भर में शीतलता और घट जाती है। जब सरोवर में डुबकी लगाते हैं तब की शीतलता कुछ और होती है। स्नान के बाद शीतलता घट जाती है उसके बाद दिन में फिर गर्मी लगने लगती है। यही दशा तुम्हारे परिणामों की है जिस समय तुम प्रवचन में रहते हो तो स्नान गृह की तरह तुम्हें शीतलता मिलती है, मंदिर में रहते हो तो परिणाम विशुद्ध होते हैं और धीरे-धीरे मंदिर से गये तो मन शुद्धि की हानि होनी लगती है। आप व्यापार की हानि से बचते हैं लेकिन मन की विशुद्धि कि हानि से बचने की कोशिश कभी नहीं करते हैं। व्यापार में क्या लाभ हुआ ? क्या हानि हुयी ? जबकी आत्म लाभ कितना हुआ ? आत्म हानि कितनी हुयी ? सम्यक् दर्शन का लाभ कितना हुआ ? सम्यक् दर्शन में हानि कितनी हुयी ? सम्यक् ज्ञान का लाभ कितना हुआ ? सम्यक् ज्ञान की हानि कितनी हुयी ? सम्यक् चारित्र का लाभ कितना हुआ ? चारित्र की हानि कितनी हुई ? यह विचार करना चाहिये।

एक वस्तु खरीदते हैं तो इसमें हानि क्या है ? लाभ क्या हैं ? विचार करते हैं। यदि हानि-लाभ विचार करने लग जायें तो हमारा प्रतिक्रमण होगा, सामायिक होगी। मन की हानि न हो तो आगे के दोष कैसे होगें ? व्यापार एक दम नहीं टूटता है। जैसे किसी व्यापारी को प्रारंभ में थोड़ी हानि हुयी नहीं सम्भला, थोड़ी और हानि हुयी, और नहीं सम्भला, तो हानि पर हानि होती जाती है इसी क्रम में साधना में पहले मन की शुद्धि कि हानि होती है यदि सम्हल जाये तत्काल प्रतिक्रमण कर ले, तत्काल दोष का निवेदन कर ले तो दूर हो जाये, लेकिन प्राय: करके साधकों में पाया जाता है गुरु जी के पास जायेंगे, गुरुदेव आज चीटी की विराधना हो गयी, लेकिन यह कोई विरला साधक ही बतायेगा कि गुरुदेव आज मायाचारी भी जागी थी, आज लोभ भी जागा था।

**प्रिय आत्मन् !**

मन शुद्धि की हानि का बखान करो, यह काय शुद्धि कि हानि हुयी चीटी की विराधना तो, अपने मन में कितना ह्रास हुआ है, मानसिक भावों का कितना पतन हुआ है, मन की उज्ज्वलता कितनी समाप्त हुयी है, कितना पावन तुम्हारा मन था।

**मुनि मन उज्ज्वल, जैसो है गंगा को जल।**

**काटत कर्म दल, पाप पंथ हारी है॥**

जैसे गंगा नदी का निर्मल जल है वैसा मुनिराज का निर्मल मन है। सम्यक् दृष्टि श्रावकों के ऐसे मन होते हैं ओहो! धन्य है अरे! ज्ञानियो! ऐसा निर्मल मन होता है। ध्यान देना वह निर्मलता आयी है तो उस निर्मलता की हानि तो नहीं हो गयी?

**''मुनि मन सम उज्ज्वल नीर, प्रासुक गंध भरा।**

**धरि कनक कटोरी दीन, दीनी धार धरा।।**

मुनिराज के मन के समान निर्मल जल लाया हूँ हे मुनि! आपके मन की निर्मलता तो बहुत कि हे भगवन! यह श्रावक तेरी पूजा में महिमा गा रहे, तेरी महिमा नहीं गा रहे तेरे मन की महिमा गा रहे हैं, कि मुनिराज का मन इतना निर्मल होता है, यह निर्मल जल कितना निर्मल है? कुछ खास नहीं है मुनिराज का मन इससे भी उत्कृष्ट होता है। सरसों के दाने को सुमेरु की उपमा दे सकते हैं लेकिन मुनि के मन को किसकी उपमा दी जाये? सर्वोत्कृष्ट निर्मल मन का नाम है मुनि का मन और मुनि के मन में ही विकार आ जाये। ओ हो! हे मुनिराज ! हे श्रावको! मन की शुद्धि हानि न हो जाये, मुनिराज ध्यान में बैठे हैं, श्रावक ने एक फल अर्पित किया, सामने चढ़ा दिया मुनि के मन में भाव हो गया, काश यह फल मुझे खाने मिल जाये तत्काल आयु बंध हो गया। मुनि ने तिर्यंच पर्याय का बंध कर लिया, समाधि हो गयी सभी लोग समझ रहे मुनिराज की समाधि हो गयी। मन की शुद्धि कि हानि क्या है? ध्यान देना-ज्ञानियो! जो शरीर में जीवाणु पैदा होते हैं, वायरस पैदा होते हैं वह कौन से जीव बनते हैं। जो जीव हमें चाहते हैं वे जीव पसीना बनते हैं, वे जीव संमूर्च्छन पंचेन्द्रिय मनुष्य बनते हैं। जब फल को चाहने वाला मुनि फल में जाकर कीड़ा बन गया। तो फिर कहना ही क्या है।

**प्रिय आत्मन् !**

अहो ! धन्य मुनिराज आपका यहां चातुर्मास तो मंगलमय हुआ, आपकी साधना से हमारा नगर प्रफुल्लित हो गया मुनिराज ने प्रशंसा सुन ली लेकिन यह नहीं कहा– कि यहां चातुर्मास करने वाले कोई दूसरे मुनि होंगे मैं तो आज ही आया हूँ। जिन मुनिराज ने चातुर्मास किया था वह विहार कर गये यह दूसरे मुनि आये थे और इतनी मन हानि और मायाचारी का परिणाम क्या हुआ कि हाथी की पर्याय में जन्म लेना पड़ा। मन शुद्धि कि हानि हुई, क्योंकि मुनि ने असत् प्रशंसा सुनकर भी कुछ नहीं कहा।

**प्रिय आत्मन् !**

मन कितनी जगह अपवित्र हो जाता है। हर जगह हर समय खोजो आज मेरा पवित्र मन किस कारण से, किस परिस्थिति में कैसे हानि को प्राप्त हुआ है। व्यापार में हानि की पूर्ति हो सकती है, मन की हानि की क्षति तत्काल जानों मैं कितना पवित्र मन लेके आया था में उस मन में अपवित्रता तो नहीं घुल गयी है। भो ज्ञानी! जब कपड़े आप उज्ज्वल पहन के आते है तो बैठने के स्थान का भी ध्यान रखते हैं। कि कहीं गंदगी न लग जाये। भो ज्ञानी ! जब तू वसन नये लेकर आता है तो बैठने का ध्यान देता है कचरा न लग जाये, मन नया लेके आया है, मनुष्य पर्याय का मन कितना नया होता है, सम्यक् दृष्टि का मन, ओहो! भो ज्ञानी ! भवन तो साफ है, लेकिन मन गंदा है। ज्ञानी जैसे सफेद मारबल पर एक रेत का कण भी दिखाई देता है उसी तरह मुनियों के जीवन में आया हुआ एक दोष भी उनको दिखाई देता है। जैसे तुम अपने कमरे में आयी हुयी धूल को अलग कर देते हो वैसे ही मुनिराज प्रतिक्रमण करके अपने दोष दूर कर देते हैं।

**''बैठ अकेला दो घड़ी, प्रभु के गुण गाया कर।**
**मन मंदिर में ये जिया, तू झाड़ू रोज लगाया कर।।**

दो घड़ी के लिये मुनिराज प्रतिक्रमण में बैठते हैं और अपने मन मंदिर में झाड़ू लगा लेते हैं। ओहो ! जो समय तुम्हारा घर को साफ करने का होता है, वही समय मुनिराज के मन को साफ करने का होता है। अपना-अपना घर सब साफ करते हैं। ज्ञानी ! जो जिसमें रहता है उसको ही तो साफ करेगा, तुमने मिट्टी के घर को अपना माना है तुम उसे साफ करते हो, उन्होंने चेतन को अपना माना है तो वह उसे साफ करते हैं। जो सम्यक् दृष्टि होता है, वह तो चेतन आत्मा को अपना घर मानता है।

इसीलिये अब तो प्रतिक्रमण से जुड़ो। प्रतिक्रमण प्रतिदिन होना चाहिए। प्रतिक्रमण होगा तो तुम्हे दोष ज्ञात होंगे, दोष जानोगे तो दोष नहीं करोगे और दोष जानेगे तो दोष नही होंगे अतः प्रतिक्रमण होना चाहिये। प्रतिक्रमण से तो जुड़ो सामायिक से तो जुड़ो स्वाध्याय से तो जुड़ो, इन आवश्यक क्रियाओं से तो जुड़ो, प्रतिक्रमण बराबर होना चाहिए सामायिक बराबर होना चाहिये, प्रतिक्रमण वह झाड़ू है जो मन को झाड़ देता है, मन को साफ कर देता है। मन को निर्मल कर देता है, चेतना और मन को उज्ज्वल बनाने के लिये प्रतिक्रमण करो। रहना है तो सफाई में रहो गंदगी में क्या रहना? रहना है तो पहले गंदगी को अलग करो, बाद में रहो। प्रतिक्रमण गंदगी को अलग करता है, फिर सामायिक समय में रहने देती है।

**प्रिय आत्मन् !**

शील की मर्यादा का उल्लंघन करना व्यतिक्रम है। ली हुयी मर्यादा को नहीं लांघना चाहिए। सागरसेन मुनि तपस्या में लीन है भो ज्ञानी ! उधर से एक भील बाण छोड़ रहा है, कालिका देवी कहती है रुक जाओ, रुक जाओ, वह भील आगे बढ़ रहा है। देवी पीछे आ रही है, उसका बाण हाथ से छुड़ा लेती है। और कहती है तुम किस पर बाण चला रहे हो, भील बोला – मैं हिरण पर बाण चला रहा हूँ वह बोली हिरण नहीं वह तो वन देवता है। वन देवता देखों कितने शोभायमान लगते हैं भील पास में जाकर देखता है कि अवश्य ही कोई प्रशांत मुद्रा के धारी यह वन देवता हैं बाद में मालूम चलता है कि दिगम्बर मुनिराज हैं। कहो ज्ञानी ! उस भील के अंदर बाण चलाने की इच्छा हुयी थी अब बताओ कि इच्छा हुयी तो चला लेना चाहिये था, या नहीं? यह जो शब्द अपने भीतर जागता है कि मन हो गया पाप करना हो तो कर लो यह मिथ्यात्व है हां पुण्य करने की इच्छा हो जाये, तो तत्काल कर लेना। जिस दिन उत्तम कार्य के भाव हो जायें तो जल्दी कर लो लेकिन पाप कार्य के भाव हो तो कभी नहीं करना। यही विशेषता है तुम्हें निर्दोष और महान बनायेगी।

**जो कुछ करना जल्दी कर लो, सुकृत तरुण अवस्था में।**
**पैसा पास निरोगी काया, इंद्रिय ठीक व्यवस्था में॥**
**कर न सकोगे वृद्धापन में, बल-पौरुष थक जाने से।**
**आग लगी कुटिया में भैया! फिर क्या कूप खुदाने से॥**

**प्रिय आत्मन् !**

एक बार कोई दोष हो गया तो उसको द्वारा नहीं करना। तपस्वी सम्राट आचार्य सन्मति सागर महाराज कहते हैं कि पुन: अपराध नहीं करना ही प्रतिक्रमण है। और यही सच्ची आलोचना है। जो अपराध आपसे हो गया है उस अपराध को द्वारा नहीं करना, अपराध हुआ था, हो गया। लेकिन यह संकल्प करो कि इस अपराध को हम दुबारा नहीं करेंगे, यह कहलाता है प्रतिक्रमण है। मर्यादा के बाहर प्रवृत्ति अतिचार है। आशक्ति पूर्वक विषय को ग्रहण करना अनाचार कहलाता है। भोजन करना सामान्य कार्य है लेकिन आशक्ति पूर्वक करना दोष। हिरण घास खा रहा है, बिल्ली दूध पी रही है, दोनों में कितना अंतर है? ज्ञानी ! हिरण जब घास खा रहा आचनक तब किसी की आहट मिल जायेगी तत्काल दौड़ जायेगा और बिल्ली नीचे लोटा में मुख डालेगी दो-चार लाठी पड़ेगी तब भागेगी यह है आशाक्ति। जिनकी आशक्ति नहीं होती है, वे महापुरुष की श्रेणी में आते हैं।

**प्रिय आत्मन् !**

मन शुद्धि की क्षति को अतिक्रम कहते हैं, शीलव्रत के विलंघन को व्यतिक्रम कहते हैं। इन्द्रिय विषयों में प्रवृत्ति करने को अतिचार कहते हैं। आशक्ति पूर्वक विषय सेवन को अनाचार कहते हैं।

**प्रिय आत्मन् !**

**कुशले सु अनादर: प्रमाद:।**

कुशल कार्यों में, पुण्य कार्यों में, पवित्र कार्यों में उत्साह नहीं होना प्रमाद कहलाता है। प्रमाद के मूल भेद पन्द्रह होते हैं। उत्तर भेद ३७५०० हैं।

आचार्य देव कहते हैं- विकथा अर्थात् (स्त्री कथा, राज कथा, चोर कथा, भोजन कथा) इन चार कथाओं में लग जाना। विकार को उत्पन्न करनेवाली कथा विकथा कहलाती है। स्त्री कथा में संलग्न है। राज में कहाँ क्या हो रहा है? अरे ! चर्चा करना थी चंद्रप्रभु की चर्चा करता चंदन तस्कर की चर्चा से क्या? चोर कथा - कहाँ चोरी हुयी? कहाँ क्या हो रहा है। ज्यों ही तूने समाचार पत्र उठाया चारों कथायें चालू। इन चारों विकथाओं से पाप का आस्रव होता है। अत: विकथा आदि सभी प्रमाद त्यागकर निष्प्रमाद और निर्दोष बनो तभी वीतराग बन पाओगे।

****

# जिनवाणी ही सरस्वती

**बोधिः समाधिः परिणाम शुद्धिः, स्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्यसिद्धिः।**
**चिन्तामणिं चिन्तित वस्तुदाने, त्वां वन्दमानस्य ममास्तु देवि॥ 11॥**

**भावार्थ** – हे सरस्वती देवी! आप मनोवांछित वस्तु को देने के लिए चिन्तामणि के समान हैं अतएव आपकी वन्दना करने वालों को बोधि, समाधि, परिणामों की शुद्धि अपने आत्म स्वरूप की उपलब्धि और मुक्ति के सुख की सिद्धि आपके प्रसाद से प्राप्त हो।

**यः स्मर्यते सर्वमुनीन्द्रवृन्दैः, यः स्तूयते सर्वनरामरेन्द्रैः।**
**यो गीयते वेदपुराण शास्त्रैः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम्॥ 12॥**

**भावार्थ** – जिसे सर्व मुनिराज सदा स्मरण करते हैं, जिसका सर्व इन्द्र नरेन्द्र और धरणेन्द्र स्तवन करते हैं और जिसका वेद, पुराण और शास्त्र गुणगान करते हैं वह देवाधिदेव मेरे हृदय में सदा विराजमान रहे।

**प्रिय आत्मन् !**

माँ जिनवाणी! जग कल्याणी, अरिहंत भाषित, सिद्ध–सिद्धित, आचार्य आचरित, उपाध्याय उपासित, सर्व साधु साधित, जीव तत्त्व प्रबोधिनी, अजीव तत्त्व विवेचनी, सर्वास्रव निरोधिनी, कर्म बंध विमोचनी, संवर पथ प्रदायिनी, निर्जरा निर्झरणी, मोक्ष–महल धारणी, पाप–ताप संताप हारिणी, विश्व कल्याण कारिणी, हे माँ जिनवाणी! अब तक जितने भी जीव जन्म, जर, मृत्यु से छुटकारा पाये हैं। हे जिनवाणी संजीवनी! यह तेरी परमौषधि का प्रभाव है। तीर्थंकर सर्वज्ञ के मुखारविंद से बहने वाली जिन वचनरूपी गंगा सदा जयवंत रहे। संसार के पापी प्राणी तुझ में स्नान करके पाप मैल धो लेते है। फिर भी हे माँ जिन गंगे! तू सदा निर्मल ही है। अनादि से आज तक कितने जीवों ने तेरी वाणीरूपी गंगा में अवगाहन किया, तेरा कैसा प्रताप है कि तू मलिन नहीं होती

अपितु सबको निर्मल कर देती है तेरा श्रुत जल यह कितना अगाध है, इस श्रुत नीर में जो डुबकी लगाता है उसी का मैल धुल जाता है। किन्तु यह श्रुत का नीर, यह वीर का नीर कभी मलिन नहीं होता। ओहो ! कैसे-कैसे पापी प्राणी इस गंगा में डुबकी लगाये लेकिन फिर भी हे जिन गंगे ! तू सदा से पावन है, पवित्र है, हे माँ ! अन्जान प्राणी इस गंगा में डूबते नहीं हैं, तैर जाते हैं, तिरा ले जाते हैं, पार हो जाते हैं, भवसागर से पार हो जाते हैं। हे जिनवाणी गंगे। तुझमें कषायों के मगर मच्छ नहीं हैं। तुझमें विषयों की भँवर नहीं है। कितनी पावन और निर्मल है यह गंगा। जहाँ स्याद्वाद की लहरें उत्ताल ले लेकर के आगे बढ़ रही हैं सच है यही एक गंगा है जो सीधे शिवसागर में जाकर मिलेगी। यही एक गंगा है जो बहती-बहती बहा भी ले जाये तो सीधे शिवसागर ले जायेगी। अनंत सुख के सागर में ले जायेगी। ऐसी जिन गंगा तेरे कितने नाम गाऊँ, पहला नाम भारती ! भा अर्थात् प्रकाश में रहने वाली, प्रकाश को भरने वाली, प्रकाश से सहित हे माँ तू ज्ञान प्रकाश से युक्त है वैराग्य के प्रकाश से भरी है, चारित्र के प्रकाश से भरी है इसलिये तुझे 'भारती' कहते हैं। तेरा नाम 'सरस्वती' भी है तू सारवान तत्त्व को प्रदान करती है, धारण करती है, इसलिये 'सरस्वती' कहलाती है।

हे माँ ! तुझे 'शारदा' भी कहा करते हैं। तू सदा शांति में रत रहती है, शांति को प्रदान करती है इसलिये 'शारदा' भी कहलाती है। विद्वतजन तुझे हंसवाहिनी कहते हैं क्योंकि हे जिनवाणी तू विद्वान रूपी हंस जिन्हें भेद-विज्ञान हो गया है, जिन्होंने क्षीर-नीर की तरह हंस बुद्धि को जगा लिया है आत्मा और शरीर के भेद-विज्ञान को जान लिया ऐसे विद्वतजन रूपी हंस के माथे पर विराजमान रहती है इसलिये तुझे 'हंसवाहिनी' कहा जाता है। हे माँ तू विद्वत जननी कहलाती है। क्योंकि विद्वान रूपी पुत्रों को जन्म देती है। तेरी कृपा से तेरे पुत्र विद्वान हो जाते हैं। हे माँ ! जैसे माँ शिशु को दूध पिलाकर के बलवान बनाती है वैसे ही तू ज्ञान-दान प्रदान करके विद्वान बना देती हैं। इसलिये विद्वानों की माता विदुषा माता कहलाती हो। हे वागीश्वरी ! तू वचनों कि ईश्वरी है, वचनों का ऐश्वर्य धारण करती है। अनंत वचनों को धारण करने वाली वागीश्वरी सर्वभाषा, सर्वभाषा के शब्दों को, धारण करने वाली वागीश्वरी है। हे वागीश्वरी तेरे लिये मेरा प्रणाम। हे माँ ! तू कुमारी ही है, तू पृथ्वी पर सदा शोभायमान रहती है, एवं कुमरण से बचाती है इसलिये तू 'कुमारी' कहलाती है। हे माँ तेरा आठवाँ नाम 'ब्रह्मचारणी' भी है तू आत्मा में आचरण कराने वाली होने से ब्रह्मचारिणी कहलाती है। अथवा शब्द ब्रह्म द्वादशांग के आचरण को प्रदान करती है इसलिये ब्रह्मचारिणी कहलाती है। हे जगत माता ! विश्व के समस्त जीवों को प्रकृष्ट ज्ञान देने वाली, जानने वाली यदि कोई हो तो तुम्ही हो क्योंकि माता वह कहलाती है जो जानती है, तू जग को जानती है इसलिये

जगन्माता कहलाती है। तुम 'ब्राह्मणी' हो आत्मा में स्थित हो, इसलिये ब्राह्मणी कहलाती हो। हे माँ तुझे 'श्रुतदेवी' भी कहते हैं तत्व को सुनकर के धारण किया जाता है अथवा द्रिव्य श्रुत की धारणी हो इसलिये श्रुतदेवी कहलाती हो, बुद्धि देवी कहलाती हो, विद्या देवी कहलाती हो, वरदा तेरा बारहवां नाम है वरों को देने वाली हो, श्रेष्ठ वर प्रदान करने वाली हो। जग के जीव तुझ से प्रज्ञा पाकर के महान-महान लाभ पा लेते हैं इसलिये आप वरदा कहलाती हो। जिनेन्द्र भगवान के वचनों को धारण करने वाली मुखारबिंद से निकली हुयी इसलिये आप वाणी कहलाती हो। भाषा आपकी एक नाम है आप सर्व भाषामयी होने से सर्व भाषा भी कहलाती हो। हे श्रुतदेवी! आपका एक नाम गौ भी हैं क्योंकि गौ धातु गमनार्थक है। गमन अर्थ में आती है और जितनी धातु गमनार्थक होती है वे ज्ञानार्थक होती हैं। इसलिये हे माँ! तू मेरे आत्म-स्वरूप में परिणमन करती है, आत्मा के प्रदेश-प्रदेश में परिणमन करती है इसलिये आप गौ भी कहलाती हो।

जो प्रज्ञावान होता है वही सच्चा श्रीमान् होता है ऐसी सरस्वती माँ जिनवाणी आपकी कृपा है। सकल कर्मों को नाश करने वाली है। एक अक्षर मैं तू सामहित है, इसलिये तू ओंकारमयी कहलाती हो। इस ओंकारमयी जिनवाणी के लिये योगी पुरुष ध्यान में लाते हैं। तुम कामनाओं को देने वाली हो, मोक्ष को देने वाली हो, जिसने शब्दों के समुदाय से आत्मा के द्रव्य कर्म मल, भाव कर्म मल को प्रक्षालित कर दिया है। धो दिया है, निर्मल कर दिया है, मुनियों के द्वारा जिस जिनवाणी रूपी तीर्थ की उपासना की गयी है। हे सरस्वती देवी! तू मेरे पापों का हरण कर ले, मेरे पापों को नष्ट कर दे, तथा अज्ञान रूपी रोग से अंधे हुये जीवों के लिये ज्ञान रूपी अंजन शलाका का प्रदान करके चक्षुओं में दृष्टि डालने वाले, नेत्र दृष्टि प्रदान करने वाले, ज्ञान दृष्टि प्रदान करने वाले, हे परम गुरुदेव! आपको मेरा नमस्कार हो।

**श्री परम गुरवे नमः,**

**परम्पराचार्य गुरुभ्योः नमः,**

**सकल कर्म विध्वसकं,**

**श्रेयसां परिवर्धकं,**

**भव्य जीव मनः प्रतिबोध कारकम्,**

**पुण्यः प्रकाशकं, पाप प्रणाशकम् इदं शास्त्रम्।**

**प्रिय आत्मन् !**

ओहो! संपूर्ण कलुषताओं को नष्ट करने वाली है जिनवाणी। मोक्ष-मार्ग की ओर बढ़ाने वाली है जिनवाणी। भव्य जीवों के मन को प्रफुल्लित करने वाली, जहाँ जिनवाणी की वचन किरणें पड़ती हैं, श्रुत सर्य का उदय होता है और भव्य जीवों के हृदय कमल खिल जाते हैं प्रफुल्लित हो जाते हैं भव्य जीवों के मन को प्रफुल्लित करने वाली, जिनवाणी पुण्य का प्रकाश करती है, पवित्र भावनाओं को प्रकाशित करती हैं, पवित्र विचारों को प्रकाशित करती है, पवित्र विचारों का ध्यान करती है, पवित्र विचारों को प्रदान कराती है। मंगल भावों को प्रकाशित करती है। जिनवाणी, मंगल क्षेत्रों को प्रकाशित करती है। जिनवाणी मंगल भावों को वितरित करती है। जिनवाणी मंगल भावों का दान देती है- जिनवाणी। ऐसी है जिनवाणी माँ! जो जिनवाणी धर्म से संबंध रखती है और किसी से संबंध नहीं। यदि धर्म के अलावा दूसरे से संबंध हो गया तो जिनवाणी की धारा अविरल नहीं रहेगी, अखण्ड नहीं रहेगी। इसलिये प्रवचन के बीच में धर्म के अलावा कोई चर्चा नहीं होती है, धर्म की चर्चा होगी। जो समझ में आ जाये तो भला न समझ में आये तो और भी भला।

अरे! आज मुझे भले ही समझ में नहीं आया लेकिन इतनी महान देशना कानों में सुनने तो मिली, श्रद्धा तो जागी, कि हे प्रभु! इतनी बुद्धि हमें भी मिले कि यह जिनवाणी समझ में आये। जितने कठिन-कठिन शास्त्र सुनते है तो उतनी ज्यादा श्रद्धा बढ़ती है। सूरज की कठोर किरणें ही तो कमलों को खिलाती है। इस लिये समझ में आये तो भला, न समझ में आये तो और भी भला। वैद्य की दवा न समझ में आये तब भी खाओ रोग मिटायेगी, इसी तरह जिनवाणी तो परम वैद्य गुरुदेव की दवा है तुम खाओ भर तो, सुनो भर तो अपने आप प्रभाव डालेगी और भव रोग का निवारण करेगी। समझ में आ जाये तो ले लेना, न समझ में आये तो भी ले लेना क्योंकि वैद्य ने ही दवा दी है, यह काम वैद्य का है कि क्या देना क्या नहीं देना, यह काम रोगी का नहीं है इसी तरह ज्ञान देना गुरू का काम है कौन सा देना, कौन सा नहीं देना वह गुरु जाने। इसलिये जो समझ में आये सो भला न आये तो भला। ध्यान रखें- सच्चा गुरु और सच्चा वैद्य चुनना चाहिए।

**प्रिय आत्मन् !**

भव्य जीवों के मन को प्रफुल्लित करने वाली है जिनवाणी, ऐसी जिनवाणी माँ के मूल कर्ता सर्वज्ञ देव हैं। उत्तर ग्रंथ कर्ता गणधर देव हैं। प्रति गणधर देव हैं उनके अनुसार आचार्य अमितगति स्वामी द्वारा यह सामायिक पाठ यहाँ रचा जा रहा है आज जिनवाणी माँ से हम निवेदन

करने जा रहे है कि हे जिनवाणी माँ! माँ बेटे को सब कुछ देती है , माँ कब मना करती है, बेटा जो भी मांग ले मिल ही तो जाता है, जन्म से बेटे का अधिकार रहा है मांगने का। हे जिनवाणी माँ! तू मेरी माँ है, और मैं तेरा पुत्र हूँ। इसलिये मैं तुझसे मांगने का अधिकार रखता हूँ तूने मुझे जन्म दिया है, तेरी कृपा से ही मैं सम्यक् ज्ञानी पुत्र बना हूँ, तेरी कृपा से मैं श्रुतज्ञानी सुत कहलाता हूँ। हे माँ! मैं चाहता हूँ कि मुझे कुछ दो। बेटा क्या ? मैं चाहता हूँ बोधि, समाधि, परिणामों की शुद्धि, आत्मा की उपलब्धि और शिव सुख की सिद्धि यह पाँच बातें मेरे लिये मिल जायें माँ तेरे अनंत बेटे हो चुके, तूने सब बेटों को दिया है, तो मेरी झोली खाली क्यों ? जितने-जीव सिद्धालय में गये हैं, जितने-जीव अरहंत बने है वे सब पहले तुमसे पांच चीजे पाये थे तभी उनके पंच कल्याण हुये है आदिनाथ के हे माँ! तुमने कुंद-कुंद को इनमें से कुछ दिया है, समंतभद्र को कुछ दिया है, पूज्यपाद को भी कुछ दिया है। तो मुझे भी दो ना, मैं भी मांग लेता हूँ जब सबको दिया है और देती हो, तुम सामान्य नहीं हो तुम चिंतामणी के समान चिंतित वस्तु को प्रदान करने में समर्थ हो। इसलिये मैं तुमसे मांग रहा हूँ। मैं जानता हूँ तुम दोगी, अवश्य दोगी, इसलिये माँ बोधि दो। आचार्य देव लिखते है-

**उपज्जदि सण्णाणं, जेण उवाएण तस्सु वायस्स।**

**चिंता हवेइ बोहि, अच्चंतं दुल्लहं होदि।।८३।।**

बोधि अत्यंत दुर्लभ होती है बोधि किन-किन कारणों से मुझे सम्यक् ज्ञान होगा, किन-किन साधनों से मुझे आत्म ज्ञान प्रकट होगा, किन-किन निमित्तों से मुझे श्रुत का ज्ञान मिलेगा, किन साधनों से मैं शास्त्र का ज्ञान सीखूँगा, किन निमित्तों से मुझे प्रवचन मिलेगा। यह है बोधि दुर्लभ भावना। सम्यक् ज्ञान बोध है। ज्ञान बोध है। और ज्ञान का उपाय बोधि है ज्ञान आसान है लेकिन ज्ञान का उपाय कठिन है।

**प्रिय आत्मन् !**

**ज्ञान समान न आन जगत में, सुख को कारण।**

**यह परमामृत जन्म जरा मृतु, रोग निवारण।।**

**जे पूरब शिव गये जाहि अरूँ आगे जे है।**

**सो सब महिमा ज्ञानतनी मुनिनाथ कहे है।।**

हे ज्ञानियो! ज्ञान के समान अन्य कोई सुख का सच्चा उपाय नहीं है, संसार में यदि कोई सुख का कारण है तो ज्ञान ही है। सम्यक् ज्ञान जन्म, जरा, मृत्यु के रोगों का निवारण करने वाला है। जब विषयों की चाह की ज्वाला चित्त को जलाती है, ऐसे समय में ज्ञान के बादल बरस कर ज्वाला को शांत कर देते है। इसीलिये हे जीवों! करोड़ो-करोड़ो उपाय बनाओ, एक-दो उपाय बनाने से सिद्ध न हो तो करोड़ो उपाय करो, भेद विज्ञान का उपाय बारम्बार व निरन्तर करो।

**प्रिय आत्मन् !**

**इय सव्व-दुलहं दुलहं णाणं तहा चरित्तं च।**

**मुणिऊण य संसारे, महायरं कुणह तिण्हं पि ।। 301 ।। का. अ.**

इस सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र को संसार की समस्त दुर्लभ वस्तुओं में भी दुर्लभ जानकर इन तीनों का अत्यन्त आदर करो।

संसार की सबसे बड़ी उपलब्धि है यह श्रुत का ज्ञान, लौकिक ज्ञान पाने वाले तो लाखों मिल जायेंगे लेकिन माँ जिनवाणी का ज्ञान पुण्य पुरुष को ही मिलता है। ओहो ज्ञानी! ध्यान देना-डिब्बे का दूध तो डिब्बे का है और माँ का दूध माँ का दूध है। लौकिक ज्ञान डिब्बे का दूध है। माँ का दूध बेटे को जो फायदा करेगा और किसी का नहीं करेगा। जिनवाणी का जो ज्ञान है वह यथार्थ में फायदा पहुँचाता है तत्काल में विषय कषायों को दूर कर देता है, कोई भी शास्त्र खोल लो, कोई भी पृष्ठ पढ़ लो तत्काल हमारा चित्त उज्जवल हो जाता है, जिनवाणी चित्त को उज्ज्जवल बनाती है।

**पहला फल अज्ञान नाश हो, दूजा ज्ञान मिले।**

**तीजा है गुण श्रेणी निर्जरा, अरू सम्मान मिले।।**

**अंतिम फल निर्वाण हमें दे, जय निर्वाणी माँ**

**बार-बार हम शीश झुकायें, हे जिनवाणी माँ।।**

सम्यक् ज्ञान किन कारणों से होगा, उन शास्त्रों को संयोजित करना, उन शास्त्रों के वाचकों का संयोजन करना यह बोधि है। ध्यान देना कैसे सम्यक् ज्ञान मिलेगा ? सम्यक् ज्ञान सब तक कैसे पहुँचे, शास्त्रों का ज्ञान सब तक कैसे पहुँचे, चातुर्मास कराना सम्यक् ज्ञान का उपाय है। जिन कारणों से सम्यक् ज्ञान होता है उन कारणों को एकत्रित करना बोधि है। हे माँ! सबसे पहले तू मुझे बोधि दे।

**दुर्लभ है निगोद से थावर, अरू त्रस गति पानि।**

**नर काया को सुरपति तरसे, सो दुर्लभ प्राणी।।**

निगोद से निकलकर के स्थावर पर्याय में आना दुर्लभ है। निगोद में अनंत काल बीता है जहाँ जिनवाणी सुनने नहीं मिली, पृथ्वी कायिक इसमें कहाँ जिनवाणी? फिर वायुकायिक, वनस्पतिकायिक इसमें जिनवाणी कहाँ? फिर स्थावर से त्रस गति पाने को कहते है जैसे कोई चिंतामणी रत्न बड़ी दुर्लभता से मिलता है वैसे ही स्थावर से त्रस पर्याय बड़ी दुर्लभ है। इस मनुष्य देह के लिये स्वर्ग के देवता तरसते हैं आचार्य कहते हैं दो घड़ी के लिए भी कोई मुनि बन जाये तो महान वह तप है। धन्य है बारह-पंद्रह साल के लिये जो मुनि बन जाये उसकी तो महान महिमा कहना ही क्या है? दो घड़ी के लिये यदि कोई स्त्री आर्यिका बन गयी तो उसका जीवन धन्य हो जाता है। फिर जो जीवन भर आर्यिका बन कर साधना करे उस स्त्री का तो कहना ही क्या है? आचार्य कहते हैं। उत्तम देश का पाना दुर्लभ है हमारा यह भारत देश, सब देशों में उत्तम है। यहाँ जैसा मौसम साधना के योग्य कहीं नहीं मिलेगा, अन्य देश में चले जाओ तो कहीं ठंडी ही ठंडी है, तो कहीं गर्मी ही गर्मी है। अन्य किसी देश में साधना योग्य मौसम नहीं है। भारत देश में सभी मौसम आते हैं सुहाने होते हैं। श्रावक कुल का पाना साधु संगति का पाना, सब दुर्लभ है। सम्यक् दर्शन पाना दुर्लभ है, संयम पाना दुर्लभ है, आसान नहीं है। रत्नत्रय की आराधना करना दुर्लभ है। दीक्षा का लेना दुर्लभ बहुत दुर्लभ है, इसके लेने में अनंत व्यवधान आते हैं। अनंत बाधक कारण आते हैं, उन अनंत बाधक कारणों को पार करने के बाद कहीं दीक्षा होती है। दीक्षा लेना और दीक्षा लेने के बाद दीक्षा जैसे भाव सदा बनाये रहना, उन व्रतों को पालन करते रहना, और भी दुर्लभ है। आत्मा के ज्ञान और उस ज्ञान के कारण को पा लेना और भी दुर्लभ है। जिन कारणों से सम्यक् ज्ञान हो उन कारणों को बोधि कहा है आचार्य कुंद-कुंद देव ने। संसार का ज्ञान तो कोई भी दे देगा, कहीं भी दे देगा। लेकिन आत्मा से परिचित कराने वाला ज्ञान बोधि दुर्लभ कहलाता है।

**समाधि क्या है?**

**चारित्तं खलु धम्मो-धम्मो जो सो समोत्ति णिद्दिठ्ठो।**

**मोह क्खोह विहीणो, परिणामो अप्पणो हि समो।।**

चारित्र धर्म है वह धर्म समता मयी है, वह समता मोह और क्षोभ से रहित परिणाम है, इस समतामय परिणाम का नाम समाधि है। समतामयी परिणाम ही समाधि है। धर्म ध्यानमय परिणाम

समाधि है। मोह–क्षोभ से रहित परिणति का नाम समाधि है। जब सम्यक् ज्ञान नहीं होगा, तो समता नहीं आयेगी। हे माँ! मुझे परिणामों की शुद्धि दो, जब परिणामों की शुद्धि होगी तो निज आत्मा कि उपलब्धि होगी। जब भाव शुद्ध होते हैं तो हम आत्मा तक पहुँच पाते हैं। भाव शुद्ध नहीं होते हैं तो आत्मा तक नहीं पहुँच पाते हैं। जब पानी गंदा होता है। तो गंदे पानी में अपना चेहरा दिखाई नहीं देता है। वही कचड़ा जब नीचे बैठ जाता है तो पानी निर्मल होता है और चेहरा दिखाई देने लगता है। आत्मा की उपलब्धि ही सच्ची सिद्धि है। जिसने आत्मा की उपलब्धि नहीं पायी उसने कोई भी सिद्धि नही पायी। बाह्य वस्तुओं को सिद्ध कर लेना सिद्धि नहीं है। आत्मा के स्वरूप को सिद्ध करना ही सच्ची सिद्धि है और निर्वाण सुख को पाना सर्वोत्कृष्ट सिद्धि है।

****

# परमात्मा का स्वरूप

**यो दर्शन ज्ञान सुखस्वभावः, समस्तसंसार विकारबाह्यः।**
**समाधिगम्यः परमात्मसंज्ञः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम्॥ 13॥**

**भावार्थ** - जो अनन्त दर्शन, ज्ञान और सुख रूप स्वभाव वाले हैं, जो संसार के समस्त विकारों से रहित हैं, जो समाधि के द्वारा ही अनुभवगम्य हैं और जिसे योगीजन परमात्मा कहते हैं वह देवाधिदेव मेरे हृदय में सदा विराजमान रहें।

**निषूदते यो भवदुःख जालं, निरीक्षते यो जगदन्तरालं।**
**योऽन्तर्गतो योगिनिरीक्षणीयः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम्॥ 14॥**

**भावार्थ** - जो संसार दुःख जाल को काटते हैं, जो जगत के अन्तराल को अर्थात् सम्पूर्ण लोक को जानते और देखते हैं और जो योगी जनों द्वारा जाने जाते हैं वे देवाधिदेव मेरे हृदय में सदा विराजमान रहें।

**प्रिय आत्मन् !**

जो परमात्मा है, वह मैं हूँ? मैं कैसा हूँ? मेरा परमात्मा कैसा हैं? यह निश्चित है कि मैं उनका अतीत हूँ, वह मेरे भविष्य हैं, मैं आज क्या हूँ? लेकिन भविष्य का तो भगवान हूँ। जब-जब मैं भगवान के गुणों को देखता हूँ- तो ऐसा लगता है कि इनमें से एक भी गुण ऐसा नहीं है जो उनके पास हो और मेरे पास न हो, दोनों में समानता है। आज मैं सामायिक मैं प्रवेश कर रहा हूँ। व्यवहार सामायिक और निश्चिय सामायिक के भेद से सामायिक दो प्रकार की होती है। व्यवहार सामायिक में परमात्मा का, परमेष्ठी का, अवलम्बन लेते हैं। पिंडस्थ ध्यान, पदस्थ ध्यान, रूपस्थ ध्यान, रूपातीत ध्यान यह चार ध्यान होते हैं। इन चार ध्यानों में पिण्डस्थ ध्यान में हम प्रतिमा का अवलम्बन लेते हैं। रूपस्थ ध्यान में प्रभु के रूप का अवलम्बन लेते हैं।

पिण्डस्थ ध्यान में प्रतिमा तथा लोक के आकार का, साधक प्रारंभिक दशा में सहारा लेता है। अभ्यास हो जाने पर सहारा छोड़ देता है। व्यवहार सामायिक में हम परमात्मा का अवलंबन लेते हैं। लेकिन वह अवलम्बन प्रतिमा तक सीमित न रह जाये, वह किसी मूर्ति से बधाँ न रह जाये अपितु यथार्थ में परमात्मा का स्वरूप क्या है? जिसका मुझे ध्यान करना है, जिसके ध्यान से मेरे चित्त में समता का सौंदर्य निखरना है, जिसके ध्यान से सम्यक्त्व की उत्पत्ति, वृद्धि, रक्षा, पुष्पित और फलित होना है। ऐसा परमात्मा का स्वरूप क्या है?

**प्रिय आत्मन् !**

उत्कृष्ट आत्मा वह परमात्मा है। उसके दो प्रकार हैं। अरिहंत परमात्मा, सिद्ध परमात्मा। जिन्होंने अपने गुणों के उत्कर्ष को प्राप्त कर लिया है वह उत्कृष्ट है। जिन्होंने गुणों के उत्कर्ष को नहीं पाया है वह जघन्य है। आत्म गुणों के उत्कर्ष को पाने से जो उत्कृष्ट आत्मा है। कौन-कौन से गुणों को प्राप्त किया है? अनंत दर्शन, ज्ञान, सुख, शक्ति। अरिहंत भगवान सकल परमात्मा और सिद्ध भगवान निकल परमात्मा कहलाते हैं। जो शरीर से सहित हैं वे सकल परमात्मा है। जो शरीर रहित वे निकल परमात्मा हैं। सिद्ध भगवान शरीर रहित, परमात्मा हैं। सकल परमात्मा अरिहंत भगवान हैं जो समोशरण में विराजमान हों अथवा गंधकुटी में विराजमान अथवा विहार करते हों। कैसा है स्वरूप?

चार घातियाँ कर्मों से रहित, अठारह दोषों से रहित, वीतरागी, सर्वज्ञ, और हितोपदेशिता यह उनकी पहचान है वे हमारे इष्ट देव हैं, हम उनके उपासक हैं। उन्हें हम जिन भी कहते हैं, क्योंकि उन्होंने कषायों को, इंद्रियों को तथा मोह कर्म को जीत लिया है इसलिये वे जिन कहलाते हैं। अथवा जिनेन्द्र भी कहते हैं, जिनवर भी कहते हैं, क्योंकि जिस मार्ग पर हमने चलना प्रारंभ किया है उस मार्ग की मंजिल को उन्होंने प्राप्त कर लिया है। वे हमारे मार्ग दर्शक बनेंगे, मार्ग पर चलकर के चलने की प्रेरणा दी है वे मुक्ति पथ के नेता कहलाते हैं क्योंकि वह स्वयं इस पथ पर चले हैं तथा दूसरों को चलने की प्रेरणा देते हैं और ले चलते हैं इसलिए अरिहंत भगवान परमात्मा और परम गुरु हैं। अरिहंत भगवान की देशना होती है, दिव्य-ध्वनि खिरती है, दिव्य-ध्वनि के माध्यम से तीन लोक के जीवों का हित होता है। मैं सामायिक को समता निर्माण की फैक्ट्री मानता हूँ, समता निर्माण स्थल, समता निर्माण का क्षण, समभाव उत्पादन केन्द्र, सम्भाव उत्पत्ति बेला, समभाव में आ जाना सामायिक है। सामायिक में समता हो तो परमशांति मिलती है। ममता का स्थान विषम है, समता

आनंद देती है, सामायिक अर्थात् अपने भावों को समतल कर लेना, कषायों को शांत करके अपने में लवलीन हो जाना सामायिक है।

अविद्या के संस्कार से मन विचलित्त हो जाता है, चंचल हो जाता है, भटक जाता है, वही मन जब ज्ञान का संस्कार मिलता है तो स्थिर हो जाता है। सामायिक चंचल मन को रोकने की एक दशा है। सामायिक में लीन साधक निज मन को निहारता है। परमात्मा को निहार रहा है, साधक परमात्मा का स्वरूप क्या है? मंदिर की वेदी पर विराजे परमात्मा का दर्शन करना आसान है, लेकिन हृदय की वेदी पर परमात्मा को विराजमान करना सफलता है। मंदिर की वेदी पर विराजमान परमात्मा का दर्शन सामान्य स्थिति में कर सकते हो लेकिन हृदय कि वेदी पर विराजमान करने के लिये भावों की प्रबल विशुद्धि, चित्त की एकाग्रता, श्रद्धा का कोश पूर्ण रूप से चाहिये।

जैसे कमल के फूल के बीच में उसकी कर्णिका होती है, कर्णिका के ठीक बीचों-बीच कमल का बीज होता है, उसी तरह से मेरा परमात्मा सिर्फ मेरे अंदर है। कमल का बीज कमल कर्णिका को छोड़कर के कहीं अन्यत्र नहीं हैं। उसी तरह से मेरा ईश्वर मेरे हृदय को छोड़कर अन्य कहीं नहीं हैं। मंदिर साधन हैं, शास्त्र साधन हैं, गुरु साधन हैं, वस्तुत: तेरा परमात्मा तेरे पास ही है। आटा में ही रोटी है, अग्नि तो साधन है। दूध में ही घी हैं, आग तो निमित्त। मेरा परमात्मा मेरे अंदर में है, मेरे भीतर में है, मेरे अन्तस में समाया है। खोज बाहर मत करो।सत्य स्वरूप को समझो कहीं कोई असत् स्वरूप कि कल्पना तुम भीतर में मत कर लेना इसलिये बाह्य के परमात्मा का दर्शन कराया जाता है कि तुम्हारे भीतर भी ऐसा ही परमात्मा है। भीतर क्या है? तुम ही ऐसे परमात्मा हो।

शिल्पी को एक प्रतिमा दिखा दी जाये वह दूसरे पत्थर में वैसी प्रतिमा देख लेता है। हे श्रावक सुधी! मंदिर की प्रतिमा को देखकर के अपने भीतर के परमात्मा को देख लेना ही दर्शन है।

## जो तुम हो, मैं हूँ भगवान

इस अंतर की को मेटने का नाम चारित्र है। जो भेद यह पड़ा है कि भगवान और भक्त में अंतर है। इस अंतर की कला को मिटाने का नाम है चारित्र। यदि यह चारित्र न हो, तो भक्त-भक्त ही बना रहेगा और भगवान तो भगवान बन चुका है। भगवान ज्ञान दर्शन, सुख स्वभावी है, दर्शन आत्मा का निजगुण है। मैं परमात्मा का कथन करता हूँ **निर्देश**। (**लक्षण**) जिसमें अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख, शक्ति है वही परमात्मा है। जिसमें नहीं है। वह परमात्मा नहीं है। जिसमें है वह परमात्मा।

हमारे पास अचक्षु दर्शन है। चक्षु दर्शन है, ज्ञानियो! हम सब चक्षु इंद्रिय धारी जीव हैं। सामान्यत: मनुष्य चक्षु इंद्रिय से देखते हैं और उसे प्रमाण मान लेते हैं। देव अवधि ज्ञान से देखते हैं और उसे प्रमाण मानते हैं। प्रवचन सार ग्रन्थ में आचार्य कुन्द कुन्ददेव कहते हैं –

**आगम चक्खू साहू, इंदिय चक्खूणी सव्व भूदाणी।**
**देवा य ओही चक्खू, सिद्धो पुण सव्वदो चक्खू॥**

साधुओं के नेत्र शास्त्र हैं, शेष मनुष्य और तिर्यंचों के नेत्र चक्षु इन्द्रिय हैं, देवों का नेत्र अवधिज्ञान है, सिद्धों का नेत्र सर्वदर्शी केवलदर्शन–केवलज्ञान है।

मनुष्यों की आँखें अलग हैं, देवों की आँखें अलग हैं, और साधुओं की आँखें अलग हैं, सिद्धों की आँखें अलग हैं। अरे! देखना सबको है, देखने के अपने–अपने तरीके, तरकीब है, देवों के पास आँखें हैं, पर वह उन आँखों से न देखकर के अवधि ज्ञान से देखते हैं। मध्यलोक में क्या हो रहा है, आर्यखण्ड के भारत देश में, क्या हो रहा है? वह अपने अवधि से देखते हैं।

**प्रिय आत्मन् !**

देव अवधि ज्ञान से जानते हैं। मनुष्य अपनी आंखों से देखते हैं। चक्षु इंद्रिय से देखते हैं। साधु आगम से देखते हैं। अभी आप कहेगें यहाँ कोई जीव तो दिखाई दे नहीं रहा लेकिन साधु कहेंगे नहीं आकाश में भी जीव है। जो नहीं दिखता है, वह भी होता है। राम दिखाई नहीं देते है लेकिन हैं। सुमेरू पर्वत दूर है पर है। परमाणु दिखाई नहीं देता परन्तु यहाँ भी परमाणु हैं।

**प्रिय आत्मन् !**

सिद्धों के पास, अरिहंतों के पास अनंत दर्शन होता है। अनंत दर्शन में आत्मा के प्रदेश–प्रदेश में देखने की क्षमता होती है। क्षमता तो हमारे पास भी है लेकिन अप्रकट है उनकी प्रकट हो चुकी है। और जिसने प्रगट कर ली है उसी का मूल्यांकन है। जितने रुपये का तराजू नहीं आता है, उससे ज्यादा का व्यापारी लाभ कमा लेता है और जिसे व्यापार की कला नहीं है उसका तराजू लोहे के भाव बिक जाता हैं।

**प्रिय आत्मन् !**

अनंत दर्शन के द्वारा जो स्व को भी अवलोकन करते हैं और पर का अवलोकन तो स्वयमेव होता है। करने नहीं जाते क्योंकि मोहनीय कर्म का अभाव हो चुका है। इसलिये अरहंत,

सिद्ध किसी को निहारते नहीं है, किसी को देखते नहीं है। "**जो निहारता है, वह हारता है। वह निहारते नहीं है, सो हारते नहीं।**"

**प्रिय आत्मन् !**

मोहनीय कर्म को उन्होंने नष्ट कर दिया है अब किसी को देखने की इच्छा नहीं रही। यदि इच्छा हो जाये तो दुख हो जाये। इच्छा का पर्यायवाची दुख है। दुख का पर्यायवाची इच्छा है। **जहाँ इच्छा है सो दुख है, जहाँ दुख है सो उसकी जननी इच्छा है। दुख की माँ का नाम है इच्छा।**

**प्रिय आत्मन् !**

अनंत दर्शन ऐसा अनंत दर्शन है जिस अनंत दर्शन में, तीन लोक, त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थ झलकते हैं। अनंत ज्ञान यह उनका दूसरा गुण है। जिन्होंने ज्ञानावरणीय कर्म को नष्ट करके अपनी पूर्ण त्याग की क्षमता को प्रकट किया है। आप सभा में विराजे हैं अभी सभी श्रोतागण प्रवचन सुन रहे हैं, सबका क्षयोपशम अलग-अलग है इससे सिद्ध होता है कि किसी का कम है, किसी का अधिक है, इसका तात्पर्य है कि कोई ऐसा पुरुष होगा जिसका पूर्ण क्षपोपशम प्रगट हो गया होगा, जिसने पूर्ण आवरण को हटाया होगा और जिसने पूर्ण ज्ञानावरण को हटाया होगा। और जिसने पूर्ण ज्ञानावरण को हटाया है उसी का नाम केवलज्ञानी है। उसी का नाम अनंत ज्ञानी है।

**प्रिय आत्मन् !**

**दोषावरण योर्हानि र्निशेष..............**

बहिरंग और अंतरंग मलों का क्षय किन्हीं कारणों से होता है। जैसे स्वर्ण की किट्टि कालिमा अग्नि के संयोग से दूर हो जाती है वैसे ही ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय आदि जो कर्म है वह विशिष्ट तपस्या के द्वारा विशिष्ट ज्ञान-ध्यान चर्या के द्वारा दूर हो जाते हैं और यही साधना है। जब पूर्णत: ज्ञान आवरण नष्ट हो जाता है तब उस समय केवलज्ञान शक्ति प्रकट हो जाती है। जैसे बादलों के हटने से सूर्य प्रकट हो जाता है वैसे कर्म आवरण हटने से केवलज्ञान सूर्य प्रकट हो जाता है। प्रकट हुआ सूर्य जैसे लोक के पदार्थों को देखने में, दिखाने में, सक्षम हो जाता है। वैसे ही वह केवलज्ञान तीन लोक, त्रिकालवर्ती पदार्थो को जानने में समर्थ हो जाता है। सूर्य देखने की इच्छा नहीं करे, फिर भी पदार्थ दिखता है। ऐसे ही अरिहंत स्वामी पदार्थ को देखने की इच्छा नहीं करते

हैं। पदार्थ उनके ज्ञान में झलकता है। यह उनके ज्ञान की विशेषता है। दर्पण की जैसे कोई इच्छा नहीं होती वैसे ही अरिहंत सिद्ध की भी कोई इच्छा नहीं होती है। इच्छा का अभाव ही है। इस तरह से मोह कर्म के नाशक धन्य हैं प्रभु! अनंत दर्शनी!, अनंत ज्ञानी!, जिनेन्द्र के पास इतना ज्ञान है उनके केवल कि ज्ञान एक समय की एक पर्याय में तीन लोक, तीन काल के अनंतानंत जड़ और चेतन पदार्थ अनंतकाल तक के झलक रहे हैं। उनकी एक समय की पर्याय में हमारे अनंत काल झलक रहे हैं। उनकी एक समय की ज्ञान पर्याय में अनंतातनंत पर्याय झलक रही हैं। केवल ज्ञान के अनंतानंत प्रतिच्छेद हैं एक प्रतिच्छेद इतना ज्ञानवान है कि उस ज्ञान में ही इतना है यदि तीन लोक की अपेक्षा और भी अधिक लोक होते तो उनको भी जाना जा सकता है।

**प्रिय आत्मन् !**

हम जो ज्ञान की परिभाषा करते है हमारे आचार्यों ने यही कहा है कि –

**''सीलं विसय विरागो णाणं पुण केरिसं भणियं।**

विषयों से विरक्ति को ज्ञान कहा है। सामान्यत: तो हित की प्राप्ति और अहित का निवारण ही ज्ञान है। शेष अध्ययन तो सामान्य है लेकिन जब तक ज्ञान अपना फल प्रदान न करे तब तक हम उसे ज्ञान कैसे कहें? क्योंकि हम तो उसे ही वृक्ष कहते हैं जिस वृक्ष में फल लगे होते हैं हम तो उसे ही कूप कहते हैं जिसमें जल भरा होता है। जिसमें जल नहीं है वह कुआँ किस काम का? जिसमें फल नहीं वह वृक्ष किस काम का? फल रहित वृक्ष और जल रहित कूप किस काम का?

ज्ञानियो! सरोवर में जल न हो तो किस काम का? गन्ने में रस न हो तो, किस काम का? जीवन में ज्ञान का कुआँ खोदने के बाद यदि चारित्र का जल उसमें नहीं आया तो वह कुआँ किस काम का? ओहो! ज्ञान रूपी कुआँ का खनन होने पर यदि चारित्र का जल निकला तब तो कुआँ का खोदना सफल है और चारित्र का पानी यदि नहीं निकला तो कुआँ का खोदना बेकार है।

**प्रिय आत्मन् !**

ज्ञान का कुआ खोदने के बाद चारित्र का जल आना चाहिये। वृक्ष यदि लगाया है तो फल आना चाहिये। हमारे भगवान ने ज्ञान के फल को प्राप्त किया है। यदि तुम एक सप्ताह, एक महीने का दूध इकट्ठा करोगें तो दूध खराब हो जायेगा, घी नहीं बनेगा। इसी तरह हमारे यहाँ ज्ञान को एकत्रित करना नहीं बाताया है यह बताया कि जितना ज्ञान मिला है, उसको तत्काल चारित्र में बदल

दो। **दूध का घी बनाओ, ज्ञान का चारित्र बनाओ**। ज्ञान को चर्या में ढाल दो, बुद्धि को चर्या में लगा दो, अनंत ज्ञान आत्मा का स्वभाव है। हमारे भगवान का स्वभाव अनंत सुख है। किंचित मात्र भी दुख उनके जीवन में नहीं है। किसी भी प्रकार का दुख उनके जीवन में नहीं है। न जन्म का दुख, न मरण का दुख, न भय, न वेदना, न रोग, न व्याधि किसी भी प्रकार का दुख नहीं है। मोहनीय कर्म का अभाव हो चुका है तो पूर्ण सुख उनको प्रकट हो चुका है। मोही, सुखी नहीं हो सकता, सुखी, मोही नहीं हो सकता है। यदि सुखी है, तो मोही नहीं है।, मोही है, तो सुखी नहीं है। अरिहंत भगवान सुखी हैं मोही नहीं हैं। हम मोही हैं, तो सुखी नहीं हैं।

**प्रिय आत्मन् !**

उनके पास जो सुख है शक्ति रुप में तो मेरे पास भी है। सुख का उपाय कुछ नहीं है। मात्र यह उपाय है। मोह को जितना Mains करोगे। सुख उतना Plus होगा। आत्मा में से जितना-जितना मोह माइनस होता जाएगा सुख उतना-उतना प्रगट होता जाएगा। सुख के प्रकट करने की पद्धति मोह को माइनस करने में है। ममत्व बुद्धि जितनी नष्ट होगी। ममता भाव जितना नष्ट होगा, उतना-उतना सुख प्रकट होता चला जाएगा।

**मोह-क्षयाच्च ज्ञान-दर्शनावरण क्षयाच्च केवलं.....**

ज्ञान-दर्शन आत्मा का स्वभाव है। अपना भाव ज्ञान, अपना भाव दर्शन, अपना भाव सुख जो आत्मा का है। वह अपना है। जो आत्मा का नही हैं वह अपना नहीं है। क्योंकि स्व अर्थात् निज द्रव्य का भाव अर्थात् गुण तात्पर्य हुआ द्रव्य के निजगुण को स्वभाव कहते हैं।

**''समस्त संसार विकार वाह्यः''**

अरिहंतदेव संसार के समस्त विकारों से परे हैं। किसी प्रकार का विकार जिन्हें छू नहीं सकता है। जब आदिनाथ भगवान मुनि दीक्षा में थे। स्वर्ग की देवियाँ भी अनेक प्रकार के हाव-भाव लायी लेकिन जिन्हें विकार के मार्ग से नहीं ले जा पायीं। संसार के समस्त विकार, किसी भी प्रकार का विकार जिनके अंदर में नहीं है। यदि विकार होता तो, अविकार न होता। ओर विकार होता तो प्रभु भी न मिलते। किंचित् मात्र भी विकार होता तो यह मोह का चिन्ह बना रहेगा।

दसवे गुणस्थान में सूक्ष्म मोह उसको पार करने के बाद ग्यारहवे गुण स्थान में उपशांत मोह होता है। बारहवे में मोह क्षीण होने का मतलब है। सौ में से सौ परसेंट मोह का नाश किंचित मात्र भी

निशान न बना रहे। पूर्णत: मोह नाश हो जाये। दसवें गुणस्थान में तो हल्दी के रंग के समान मोह है लेकिन बारहवें गुणस्थान में पूरा नाश कर दिया है कोई भी विकार जिनके नहीं है संपूर्ण विकारों का अंत जैसे–जैसे विकार शांत हो जाते हैं वैसे–वैसे विभाव शांत होते हैं। जैसे–जैसे विभाव शांत होते हैं वैसे–वैसे स्वभाव प्रकट होता है।

**प्रिय आत्मन् !**

जन्म विकार है, मरण विकार है, बुढ़ापा विकार है, प्यास लगना विकार है, भूख लगना विकार है। जन्म, जरा, तृष्णा, क्षुधा, विस्मय, आरति, खेद। रोग, शोक, मद, मोह, भय, निंद्रा, चिंता, स्वेद एवं राग, द्वेष यह सब विकार हैं यह अठारह तो मैंने गिनाये हैं ऐसे अठारह हजार प्रकार शील के विकार होते हैं। चौरासी लाख प्रकार के भी विकार हो सकते हैं। अनंत गुण हैं, तो अनंत दोष हो सकते हैं। ऐसे संसार के अनंत विकारों को जिन्होंने नष्ट कर दिया है, किसी भी प्रकार का विकार जिन्हें छू नहीं सकता है। विकार जिनके समीप नहीं भटकता है। मात्र एक ऐसे वीतराग देव हैं। मोह कर्म को नाश करने पर अनंत दोष नाश हो जाते हैं। सम्यक् मन होना ही समाधि है। मन का समता शील हो जाना, मन का समभाव में आ जाना, जब मन समता शील हो जाता है, धर्म–ध्यान में लवलीन होता है तो उस ध्यान में लवलीन होकर ही परमात्मा को हम जान सकते हैं। धर्म–ध्यान के समय परमात्मा को जाना जाता है।

**प्रिय आत्मन् !**

जिनके चिंतन करने से दु:खों का समूह नष्ट हो जाता है। एक समय में एक काम होता है जिस समय तुम बैठ सकते हो उस समय तुम खड़े नहीं हो सकते हो, जिस समय खड़े हो सकते हो उस समय बैठ नहीं सकते हो, बैठे हो तो, खड़े नहीं हो। खड़े हो, तो बैठे नहीं हो। जिस समय प्यास लगी है उस समय भूख नहीं लगी है। जिस समय भूख लगी है उस समय प्यास नहीं लगी है। जिस समय ठंडी लगी है उस समय गर्मी नहीं लगी है। जिस समय गर्मी लगी है उस समय ठंडी नहीं लगी है। एक समय में एक उपयोग होता है। भगवान का स्मरण करने से संसार के दुखों का समूह नष्ट हो जाता है। क्योंकि जो उपयोग दुख के वेदन में लगा था वहाँ से हटकर के उपयोग प्रभु के स्मरण में चला गया। एक समय में एक ही कार्य होगा, चाहे दुख का वेदन कर लो चाहे प्रभु का स्मरण कर लो। मैंने मंत्र अनुष्ठान या जाप किया। तत्काल मेरा उपयोग एक ओर केन्द्रित हो गया उपयोग की धारा बदल देने से हमारा उपयोग प्रभु के स्मरण में चला गया।

**प्रिय आत्मन् !**

उपयोग में एक ही आयेगा चाहे शरीर में उपयोग चला जाये, चाहे आत्मा में उपयोग चला जाये। उपयोग में जिस समय आत्मा के गुण रहेंगें उसे समय इंद्रियाँ और शरीर नहीं आयेगी। जिस समय शरीर और इंद्रिय का वेदन करोगें उस समय आत्मा के गुणों का वेदन नहीं होगा। हम दुख का वेदन स्वयं करते हैं और कहते हैं हम दुखी हैं सच बात यह है कि तुमने दुख का वेदन किया क्यों ? यदि तुम ज्ञानी हो तो प्रश्न यह होता है कि तुमने दुख का वेदन किया क्यों ? गलती तुम्हारी है ? क्या पारस के ऊपर पत्थर नहीं बरसे ? क्या गजकुमार के ऊपर सिगड़ी नहीं जली ? क्या यशोधर पर सर्प नहीं डाला गया ? शियार और शेरनी ने भक्षण नहीं किया उन मुनिराजों का क्या हुआ ? उनने अपने सुख का वेदन किया है मुझे वेदन किसका करना है यह मेरे ऊपर निर्भर है।

**प्रिय आत्मन् !**

जब हम अपने उपयोग को भीतर में लगा देते हैं तो दुख का भान ही नहीं होता है। दुख कुछ नहीं है मात्र माथे की उपज है। जब हमारा चिंतन उस रूप होता है, अज्ञानरूप होता है तो दु:ख होता है। और जब चिंतन चिद्रूप होता है तो सुख होता है। हम एक समय में एक का ही वेदन करेंगे, चिंतन सम्यक् हो गया सुख आ गया और चिंतन विपरीत हो गया दुख आ गया। संसार के दुखों को नष्ट कर देता है जिनका स्मरण, हमने तो णमोकार का जपना ही शुरू किया फिर वही बात आती है।

**जुड़ा हुआ जो आपसे, जोड़ रहा है जाप।**
**जुड़ा नहीं जो आपसे, जोड़ रहा है पाप।।**

**प्रिय आत्मन् !**

दूसरे की हरी-भरी फसल को देखने के बाद अपने खेत में हल जोतने का भी भाव बन जाये तो श्रेष्ठ है। सौ खेत में हल जातने की अपेक्षा एक खेत में बीज बो लेना अच्छा है। ज्ञान पाना तो हल जोतना है और चारित्र पाना उसमें बीज बोना है।

****

# सच्चे देव का स्वरूप

**विमुक्ति मार्ग प्रतिपादको यो, यो जन्म मृत्यु व्यसनाद्यतीतः।**
**त्रिलोक लोकी विकलोऽकलंकः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम्॥ 15॥**

**भावार्थ** – जो मोक्षमार्ग के प्रतिपादक हैं, जन्म, बुढ़ापा, मृत्यु इत्यादि दु:खों से रहित हैं लोकालोक के ज्ञाता दृष्टा हैं, अशरीरी हैं, कर्म कलंक से रहित हैं वे देवाधिदेव मेरे हृदय में सदा विराजमान रहें।

**क्रोडीकृता-शेषशरीरवर्गाः, रागादयो यस्य न सन्ति दोषाः।**
**निरिन्द्रियो ज्ञानमयोऽनपायः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम्॥ 16॥**

**भावार्थ** – समस्त प्राणीवर्ग को अपने आधीन करने वाले रागादि दोष जिनमें किंचित भी नहीं हैं। जो अतीन्द्रिय हैं, ज्ञानमयी हैं और सर्व अपायों से रहित हैं। वे देवाधिदेव मेरे हृदय में सदा विराजमान रहें।

**प्रिय आत्मन् !**

सामायिक पाठ के मंगलमय स्वर शांति, समता, समभाव की स्थापना करते हुये साधना के पथ में आत्मा का श्रृंगार करते हुये आत्म सौंदर्य को प्रदान कर रहे हैं। सामायिक पाठ, समता का पाठ, समभाव का पाठ, आराधना का पाठ, सहन शीलता का पाठ, क्षमा का पाठ है। जीवन का सार तत्त्व पाने के लिये जो-जो आवश्यक है वह-वह सामायिक पाठ में है। सामायिक पाठ में अरिहंत भक्ति है, सिद्ध भक्ति है, आचार्य भक्ति है, उपाध्याय भक्ति है, साधु भक्ति है, सामायिक पाठ में जिनवाणी की आराधना है, सामायिक पाठ में प्रतिक्रमण, आलोचना, प्रत्याख्यान, क्या नहीं है? सब कुछ तो है। सामायिक को पाने के लिये समता आवश्यक है। समता को पाने के लिये सम्यक्त्व

आवश्यक है। सम्यक्त्व को पाने के लिये देव, शास्त्र, गुरु का परिचय, और श्रद्धा आवश्यक है। सच्चे देव का ज्ञान कराने के लिये जैन आगम का प्रधानतम उत्कृष्ट श्रेष्ठ मंगल स्तोत्र है।

**मोक्ष मार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम्।**

**ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये॥**

जैन दर्शन का प्रमुख ग्रंथ है– तत्त्वार्थ सूत्र इसका दूसरा नाम है 'मोक्षशास्त्र' इसके रचयिता हैं– आचार्य उमास्वामी जी इनका दूसरा नाम है उमास्वाति तीसरा नाम है गृद्धपिच्छाचार्य जी। कम से कम सूत्रों में शास्त्र लेखनकर सर्वाधिक प्रसिद्धि पाने वाले यदि कोई आचार्य हैं तो वह हैं उमास्वामी। इन्होंने तत्त्वार्थ सूत्र रचा जिसमें तीन सौ सत्तावन सूत्र रचे। दस अध्याय में मुक्तिमार्ग का महामंगलकारी वर्णन किया। मोक्ष मार्ग की यह विवेचना हम आपको पर्यूषण में सुनायेंगे।

जो मोक्षमार्ग के नेता हैं, कर्म रूपी पर्वतों को भेदन करने वाले हैं और विश्व के समस्त तत्त्वों के ज्ञाता हैं, वे हमारे सच्चे देव हैं। मैं उनके उन जैसे गुणों को पाने के लिये नमस्कार करता हूँ। मोक्षमार्ग एक अदृश्य मार्ग है जो दिखाई नहीं देता है, लेकिन होता है। यह ऐसा मार्ग है। जैसे आकाश में मार्ग दिखाई नहीं देता है लेकिन वायुयान का मार्ग निश्चित होता है। उसी तरह से मोक्षमार्ग तीर्थंकर देशना से निश्चित मार्ग है किन्तु अदृश्य है। यह किसी अन्य के द्वारा नहीं बनाया जाता है। मोक्ष मार्ग का साधक स्वयं यह पथ बनाता है और स्वयं ही चलता है। मोक्षमार्ग संसार का सबसे महानतम मार्ग हैं। या यों कहिये कि संसारपुर से मोक्षपुर जाने का मार्ग है वह है मोक्षमार्ग। आत्मा से परमात्मा बनने का, इंसान से भगवान बनने का मार्ग है– मोक्षमार्ग। यह मार्ग कहाँ तैयार होता है? कौन तैयार करता है?

**प्रिय आत्मन् !**

**''मोक्खस्स कारणं आदा''**

मोक्ष का कारण आत्मा है। मोक्षमार्ग बाहर में नहीं है। मोक्षमार्ग भीतर में है। चैतन्य भावों के कदम इस मार्ग पर चलते हैं, यह मेरी आत्मा में है। आत्मा का ज्ञान गुण, दर्शन गुण और चारित्र गुण ये तीनों मिलकर जब एक होते हैं तो मोक्ष मार्ग बन जाते हैं। मोक्षमार्ग बाहर में दिखाई नहीं देता है। सामायिक में विराजमान योगी हलन-चलन से रहित, स्पन्दन से रहित, स्वभाव में लवलीन है। किन्तु अचल होने पर भी चल रहा है, मोक्षमार्ग में। जब बाह्य हल-चल बंद हो जाती है, तब

मोक्षमार्ग में चाल बढ़ जाती है। बाहर में चाल अधिक होती है, भीतर की चाल कम हो जाती है। मोक्षमार्ग के लिये आचार्य देव कहते हैं।

**सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्गः**

सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र इन तीनों की एकता मोक्ष का मार्ग है। कभी आपने अमृत धारा बनायी होगी। अमृत धारा में तीन तत्त्व होते हैं। तीन तत्त्वों से मिलकर अमृतधारा बनती है। अजवाइन का सत्, पिपरमेंट, कपूर, इन तीनों की मात्रा बराबर-बराबर होती है। आपने कपूर अलग रखा, अजवाइन का सत् अलग रखा, पिपरमेंट अलग रखा। जब तक यह तीनों जुदे-जुदे है तब तक अमृत धारा नहीं है। पीपरमेंट अकेले का नाम अमृतधारा नहीं है, कपूर अकेले का नाम अमृतधारा नहीं है, पीपरमेंट और अजवाइन का सत् यह दोनों भी अमृतधारा नहीं है। पीपरमेंट, और कपूर यह दोनों भी अमृत धारा नहीं है, अजवाइन का सत् और कपूर यह दोनों भी अमृत धारा नहीं है पीपरमेंट, कपूर और अजवाइन का सत् यह तीनों जुदे-जुदे भी अमृतधारा नहीं हैं। अकेले सम्यक् दर्शन को मोक्ष-मार्ग मानना मिथ्यात्व है। मात्र सम्यक् ज्ञान को मोक्ष-मार्ग मानना मिथ्यात्व है। मात्र सम्यक् चारित्र को मोक्ष-मार्ग मानना मिथ्यात्व है। सम्यक् दर्शन और सम्यक् ज्ञान को मोक्ष-मार्ग मानना मिथ्यात्व है। सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र को मोक्ष-मार्ग मानना मिथ्यात्व है। सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र को मोक्ष-मार्ग मानना मिथ्यात्व है। सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र इन तीनों को जुदे-जुदे मोक्ष-मार्ग मानना भी मिथ्यात्व है। सात प्रकार का यह मिथ्यात्व है।

**प्रिय आत्मन् !**

हम सातों पक्षों को छोड़ देते हैं- हम कहते हैं सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र तीनों की एकता ही मोक्षमार्ग हैं। उदाहरण के लिए- एक कांच की शीशी ली उसमें कपूर डाल दिया, उसी में अजवाइन का सत् डाल दिया, उसी में पीपरमेंट डाल दिया। पानी नहीं डाला मात्र तीनों चीजें डाली हैं यह तीनों मिलेंगी और अमृत धारा बन जायेगी। यह तीनों परस्पर में एक-मेक हो जायेगी तीनों बराबर हैं और तीनों मिल चुकी है कांच की शीशी में। जैसे कांच की शीशी में पीपरमेंट, कपूर और अजवाइन का सत् डाल देते हैं वह मिल जाता है वैसे ही अपनी आत्मा में सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र तीनों को मिला देने का नाम है मोक्ष मार्ग। अपनी आत्मा में सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्र यह तीनों डालो और यह तीनों डाल के रख दो अपने आप मिल जायेंगे और मोक्षमार्ग बन जायेंगा।

मोक्षमार्ग बाहर का मार्ग नहीं है। काँटों पर चलने का नाम मोक्ष-मार्ग नहीं है और फूलों पर चलने का नाम मोक्ष मार्ग नहीं है। मखमली कालीन पर चलने का नाम मोक्षमार्ग नहीं है। और शूलों की राहों पर चलने का नाम मोक्षमार्ग नहीं है। मोक्षमार्ग अन्तस की यात्रा है। मोक्षमार्ग भावों की यात्रा है। मोक्षमार्ग रत्नत्रय के गुणों की एकता है।

**प्रिय आत्मन् !**

अंतरात्मा में परिणमन होना ही यात्रा है। प्रतिसमय परिणमन होता है। जल कितना भी शांत क्यों न हो लेकिन उसमें भीतर ही भीतर परिणमन होता है। उसी तरह से जब साधक शांत दशा में लीन हो जाता है, तब अनुभव करता है। अभी तो और धीमे चलना है, अभी तो चलने की आवाज आती है। व्यवहार मोक्ष-मार्ग में चलने पर आवाज आती है और धीमा चलो, शांत हो जाओ, सरल हो जाओ, निश्छल हो जाओ, निष्कपट हो जाओ यह है चलना। बाहर का चलना, चलना नहीं है। दौड़ लगाते रहना भी यह साधु का परिचय नहीं है।

**प्रिय आत्मन् !**

बाहर में उतना ही दौड़ों, कि भीतर में थक न जाओ। और भीतर में थक गये तो बाहर की दौड़ से क्या ? भीतर में दौड़ना है। बाहर की दौड़ इसलिये बतायी थी कि एक स्थान पर रहकर के बाहर के मोह में जकड़ न जाये। भीतर की दौड़ बंद न हो जाये। जल यदि एक स्थान पर रहता है तो वह सड़ जाता है इसलिये कहा है विहार करो-

**बहता पानी निर्मला, रुके तो गंदा होय।**
**साधु तो चलता भला, दाग न लागे कोय॥**

पानी बहता जाये तो निर्मल बना रहता है। और साधु विहार करता जाये तो निर्मल बना रहता है।

**प्रिय आत्मन् !**

अब तेरी चाल रुक चुकी है। तू कितना भी बाहर में गमन करेगा ? पहले एक समय था- साधु अपरिचित था, आज का साधु श्रावकों से परिचित हो चुका। श्रावक के पास तेरी चाल को पकड़ने के साधन हैं। कहीं भी विहार करके पहुंचेगा, श्रावक वहाँ पहुँच जायेगा। इसलिये अब तो भीतर में विहार करो, बाहर में विहार समय-समय पर आवश्यक है। पर भीतर का विहार तो नहीं रुक गया। रत्नत्रय में परिणमन करना भीतर में विहार है। कदमों से चलना तो बाहर में विहार है।

स्थान परिवर्तन करना साधन है, साध्य नहीं। द्रव्य परिवर्तन हो गया, क्षेत्र परिवर्तन हो गया, काल परिवर्तन हो गया किन्तु भावों का परिवर्तन करने के लिये यह सब परिवर्तन हुआ था। यदि भाव परिवर्तन नहीं हुये तो फिर द्रव्य, क्षेत्र, काल परिवर्तन से क्या लाभ ?

**प्रिय आत्मन् !**

जो राग, द्वेष, मोह यहाँ पैदा होने लगा था। यदि विहार के बाद वहीं पैदा होने लगे तो फिर विहार का प्रयोजन क्या ?

**प्रिय आत्मन् !**

वीतराग भावों की संस्थापना जो मैंने अपनी आत्मा पर की है वे वीतराग भाव सदा एक से बने रहें। परिचय होने से मेरा वीतराग भाव न घट जाये, इसलिये साधु को विहार करना बताया है। अंतरंग में विहार करना सामायिक है। अपने स्वरूप में विचरण करना, अपनी ज्ञान पर्यायों में विहार करना, अपने दर्शन गुण में विहार करना, चारित्र गुण में विहार करना यह सर्वोत्तम विहार है। यति विहार, मुनि विहार, मुनि को आत्मा के बाहर विहार नहीं करना है। जब मार्ग भीतर में है तो चलेगा कहाँ ? चलेगा भी तो भीतर में ही। चलते-चलते थक गये। गुरुदेव थोड़ा विश्राम कर लीजिये। हाँ पाँव के लिये विश्राम भले ही दे दो, लेकिन स्वभाव के लिये विश्राम नहीं देना। स्वभाव में तो परिणमन करना है। भीतर में चलना ही तो है सच्ची चाल है। जब बाहर की चाल रुक कर के साधु सामायिक में विराजता है। तब लगता है कि अब चाल चली है- मोक्ष मार्ग में। तभी चाल बनती है पूरी एकाग्रता के साथ जब लवलीनता आती है स्वरूप में। तब चाल सम्यक् होती है और वह चाल किसी को दिखाई नहीं देती है कभी-कभी यह भी लगता है जिस समय हम साधना में होते हैं, जिस समय हम स्वस्थ होते हैं। आत्मस्थ होते हैं उस समय हम बोल नहीं सकते ? बता नहीं सकते ? आत्मा में स्थित हो तो स्वस्थ हो और आत्मा से बाहर आ गये तो अस्वस्थ हो। स्वरूप में गमन करना मोक्षमार्ग है आत्मा के स्वभाव में प्रवेश करना मोक्षमार्ग है।

**प्रिय आत्मन् !**

हम इतने दूर चले गये है कि लौट के आना भी हमें कठिन लग रहा है। अपने स्वभाव में लौटो ! आओ ! अपने घर आना ही होगा, अपने ही घर से यह यात्रा शुरू होती है, अपने ही भीतर से यात्रा शुरू होती है। मोक्ष मार्ग की। तत्त्व पदार्थों के प्रति जो रूचि है उस श्रद्धा का नाम सम्यक् दर्शन है।

**"अरिहंतादिसु भत्ति सम्मतं।"**

अरिहंत आदि के प्रति जो भक्ति है वह सम्यक्त्व है अथवा देव शास्त्र गुरु के प्रति जो भक्ति है वह सम्यक्त्व है।

**प्रिय आत्मन् !**

**अन्यूनमनतिरिक्तं, याथातथ्यं विना च विपरीतात्।**
**निःसन्देहं वेद, यदाहुस्तज्ज्ञान मागमिनः ।।42।।**

सम्यक् ज्ञान की परिभाषा है– न्यूनता रहित, अधिकता रहित, जैसा का तैसा, विपरीतता से रहित और संदेह से रहित जो ज्ञान है उसे सम्यक् ज्ञान कहते हैं। रत्नकरण्डक श्रावकाचार में श्री समंतभद्र स्वामी ब्यालीसवें श्लोक में यह परिभाषा लिखते हैं।

**प्रिय आत्मन् !**

सम्यक् ज्ञान प्रमाण है। शास्त्रों की आराधना से यह उत्पन्न होता है। सम्यक् चारित्र क्या है?

**असुहादो विणिवित्त, सुहे पवित्ति य जाण चारित्तं।**

पांच पापों से निवृत्ति होना और पांच प्रकार के व्रतों में प्रवृत्त होना इसका नाम चारित्र है। सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र इन तीनों की एकता मोक्ष-मार्ग कहलाता है। सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र आत्मा के निजी गुण हैं। आत्मा में ही मिलेंगे जैसे - जायठौन, जायपत्ति, जेष्ठमद, (मुलेठी), और जायफल। जिस पेड़ में जायठौन है, उसी पेड़ में जायफल है। जिस पेड़ में जायफल है, उसी में जायपत्ति है, जिस में जायपत्ति है उसी में जेष्ठमद है एक ही पेड़ के पांच अवयव हैं। पाँच अंग है। उसकी जड़ भी काम आती है। जड़ को कह दिया जेष्ठमद, उसके पत्ते भी काम आते हैं, पत्ते को कह दिया जायपत्ति, उसका फल काम आता है जायफल, कोंपल काम आती है। उसकी ऊपर की छाल काम आती है, एक ही पेड़ में सब है। उसी तरह मेरी आत्मा में ही सम्यक् दर्शन है, मेरी आत्मा में ही सम्यक् ज्ञान है, मेरी आत्मा में ही सम्यक् चारित्र है।

**प्रिय आत्मन् !**

जो मोक्षमार्ग का प्रतिपादक है। जनम से भी रहित है, मृत्यु से भी रहित है। जनम, मृत्यु की परम्परा से रहित है, वह परमात्मा है।

**आचाराणां विघातेन, कुदृष्टिनां च सम्पदाम्।**
**धर्मंग्लानि परिप्राप्त, मुच्छ्रयन्ते जिनोत्तमाः॥**

जब-जब आचार का विघात होने लगता है, कुदृष्टियों की सम्पदा बढ़ने लगती है, धर्म ग्लानि को प्राप्त होने लगता है। तब कोई ऐसा महान आत्मा जन्म लेता है जो भविष्य में भगवान बनता है। भगवान जन्म नहीं लेते हैं, ऐसा महान आत्मा जन्म लेता है, जो भगवान बनता है। यह परम रहस्य रविषेण आचार्य पद्मपुराण में लिखते हैं- इसलिये मैं कहता हूँ प्रत्येक घर में पद्मपुराण होना चाहिये और प्रत्येक श्रावक को प्रतिदिन पद्मपुराण पढ़ना चाहिये।

**कुछ लिखके सो, कुछ पढ़के सो**
**जिस जगह जागा सबेरा, उस जगह से बढ़के सो।।**

**प्रिय आत्मन् !**

परमात्मा का जन्म नहीं होता है। जैन दर्शन में अवतार नहीं होता है, अवतरित नहीं होते हैं, वे एक बार सिद्ध होते हैं। फिर पुनः संसार में जन्म नहीं लेते। भगवान का केवलज्ञान गुण कभी नहीं नष्ट होगा। यदि गुण नष्ट हो जायेगा, तो गुणी नष्ट हो जायेगा। गुणी नष्ट हो जायेगा तो द्रव्य नष्ट हो जायेगा। द्रव्य नष्ट हो जायेगा तो संसार नष्ट हो जायेगा। ओहो! सृष्टि शाश्वत है, अजर-अमर अविनाशी कोई कारण ही नहीं है कि परमात्मा का जन्म हो ऐसा कोई कारण नहीं रहा कि मरण हो। परमात्मा ने जन्म को भी जीत लिया और मृत्यु को भी जीत लिया।

हे जन्मजयी प्रभु! मोक्ष-शास्त्र के मंगलाचरण पर समंतभद्र स्वामी ने एक सौ पन्द्रह श्लोकों में देवागम लिखा। उस देवागम पर अकलंक आचार्य ने आठ सौ श्लोकों में अष्टशती रची इसी मोक्ष मार्गस्य नेतारं पर विद्यानंदी ने आठ हजार श्लोक में अष्ट सहस्री रची।

**प्रिय आत्मन् !**

मंगलाचरण पर आठ हजार श्लोक लिखने वाले विद्यानंद आचार्य रहे ऐसे विद्यानंद आचार्य को हम प्रणाम करते हैं। आप अपनी ग्रंथ सम्पदा को एक बार निहारो, देखो, समय निकालो, जब तक तुम्हें जैनत्व का दुर्लभ वैभव पता नहीं पड़ेगा, तब तक हम जैन नहीं। सच्चा जैन बनना हो या पूरे षट् दर्शन को एक जगह जानना हो तो अष्टसहस्री को पढ़ लेना। मोक्ष शास्त्र तो जान है, जैनों की पहचान है।

**प्रिय आत्मन् !**

यदि तत्त्वार्थ सूत्र को नहीं जाना, तो तुमने अपनी जान को नहीं जाना। पहचान को नहीं जाना। मूल ग्रंथ है– तत्त्वार्थ सूत्र जैसे– कुरान, बाईबिल, अपने–अपने मत के हैं। जैन मत का मूल ग्रन्थ है तत्वार्थ सूत्र।

**प्रिय आत्मन् !**

काँटो से बचकर चलना आसान है, लेकिन फूलों से बचना बहुत कठिन है। राग फूल है। द्वेष काटा है। कांटे से तो व्यक्ति बच जाता है लेकिन फूल से बच पाना कठिन होता है। लेकिन बचना चाहिये। राग की कषायें तेरह, द्वेष की बारह हैं, मोहनीय कर्म राजा है। मोहनीय कर्म की दो ही संतान है राग और द्वेष इन दो को जीत लिया तो सबको जीत लिया।

**प्रिय आत्मन् !**

आत्मा के दो ही प्रमुख दोष हैं राग और द्वेष। जहाँ राग पैर जमाता है द्वेष नियम से खड़ा हो जाता है। ऐसा नहीं हो सकता है कि राग हो और द्वेष न हो, राग होगा तो द्वेष होगा ही होगा। और द्वेष होगा तो राग होगा ही होगा। यह निश्चित होता है। एक से राग होगा तो शेष से द्वेष होगा, शेष से द्वेष होगा तो एक से राग होगा। यदि राग और द्वेष दोनों नहीं है तो फिर आप वीतरागी हैं। आप धन्य हैं, आप महान हैं। जिनके अंदर कोई भी द्वेष नहीं है। हमने भक्तामर में पड़ा है कि दोषों को घमण्ड आ गया है हमने जरा सी जगह नहीं दी तो वह बाहर निकले और उन्हें दूसरा ग्राहक मिल गया, वह उनके पास चले गये उनको घमण्ड आ गया सारी दुनियाँ तो मेरा सम्मान करती है। और वीतराग के पास मेरा कोई मूल्य नहीं अब मैं उनके पास ही नहीं जाऊँगा। इसलिये प्रभु। वह द्वेष तुम्हारे पास नहीं आते हैं, अब तुम्हारे पास नहीं आयेंगे हम कभी नहीं जायेंगे तुम्हारें पास, क्योंकि तुमने मेरा आदर नहीं किया सम्मान नहीं किया। दोष को घमण्ड आ चुका है। अब वह दोष तुम्हारे पास से जा चुके है। इसलिये अब तुम्हारे पास गुण ही गुण बचे हैं। प्रभु आप दोषों से रहित हैं, निर्दोष हैं, इन्द्रियाँ पांच होती है। आप इन्द्रियों से रहित है। ज्ञानमयी है। इस प्रकार से आप देवाधिदेव हैं आप हमारे हृदय में विराजमान रहें यह सच्चे देव अरिहंत, सिद्ध प्रभु जब मेरे हृदय में होते हैं तो मेरे सम्यक् दर्शन को निर्मल करते हैं। सम्यक् ज्ञान को निर्मल करते हैं और चारित्र को निर्मल करते हैं।

****

# ध्यान से - विकार विनाश

**यो व्यापको विश्वजनीन वृत्तेः, सिद्धो विबुद्धो धुतकर्मबन्धः।**

**ध्यातो धुनीते सकलं विकारं, स देवदेवो हृदये ममास्ताम्॥ 17॥**

**भावार्थ** – विश्व कल्याण की प्रवृत्ति जिनकी साहजिक हो चुकी है जो ज्ञेयापेक्षा सर्वव्यापी हैं, सिद्ध हैं, जानने की अपेक्षा ज्ञायक स्वभावी हैं और सर्वकर्म बन्धनों से रहित हैं तथा जिनका ध्यान करने से हृदय के सर्व विकार दूर हो जाते हैं, वह देवाधिदेव मेरे हृदय में सदा विराजमान रहें।

**न स्पृश्यते कर्म कलंक दोषैः, यो ध्वान्त संघैरिव तिग्मरश्मिः।**

**निरंजनं नित्यमनेकमेकं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये॥ 18॥**

**भावार्थ** – जैसे सम्पूर्ण अंधकार का समूह भी सूर्य को स्पर्शित नहीं कर सकता अर्थात् सूर्य अंधकार समूह से अस्पृष्ट है उसी प्रकार ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म कलंक से रहित और रागादि दोष जिसे स्पर्श भी नहीं कर सकते हैं, जो नित्य निरंजन स्वरूप है जो एक रूप होकर के भी अनेक रूप में हैं मैं उन्हीं आप्त देव की शरण को प्राप्त होता हूँ।

**प्रिय आत्मन् !**

चिदानंद चैतन्य तत्त्व की अभिलाषा लिये हुये चिन्मय चिद्ज्योति स्वरूप चिद् चमत्कार लक्षण निज चेतना का स्वभाव, निज चेतना का दर्शन सामायिक पाठ के माध्यम से करते हुये समता रस का अनुभव कर रहे हैं। सामायिक को श्रावक की अपेक्षा से देव वंदना कहा गया है। सामायिक के काल में श्रावक अपने इष्ट देव की वंदना करता है, आराधना करता है। सच्चे देव का स्वरूप जानकर के उनके गुणों को स्मरण करता है क्योंकि वह जानता है जो गुण प्रभु के हैं, वही गुण मेरे हैं

मुझे अपने गुण याद नहीं करना है। प्रभु के गुण याद कर लूँगा तो अपने आप अपने गुण जान जाऊँगा। इसलिये मैं याद प्रभु को करता हूँ और याद स्वयं हो जाता हूँ। याद प्रभु के गुणों को करता हूँ याद स्वयं के गुण हो जाते हैं। मैं जिस देव को हृदय में बिठाने की बात कर रहा हूँ वह मेरा इष्ट देव कैसा है? विश्व की समस्त प्रवृत्तियाँ जिसके ज्ञान में समायी हुयीं हैं। अखिल विश्व में चेतन-अचेतन द्रव्यों में होने वाले गुणों को और गुणों में होने वाली समस्त पर्यायों को जो जानता है। वह मेरा सच्चा देव है। व्याप्य व्यापक भाव होता है। व्यापक वह होता है जिसमें समाया जाता है, व्याप्य वह होता है जो समा जाता है। उदाहरण के लिये- ग्लास व्यापक और दूध व्याप्य है । आत्मा व्यापक है, ज्ञान व्याप्य है। दर्शन व्याप्य है। एक व्यापक में अनंत व्याप्य रह सकते हैं। जिसमें विश्व की अनंत वृत्तियाँ, अनंत उत्पाद, अनंत व्यय और अनंत स्थिरतायें समाविष्ट हैं। जिसके कैवल्य ज्ञान में अनंत वृत्तियाँ झलक रही हैं फिर भी मोह वृत्ति न होने से किसी में प्रवृत्ति नहीं होती है। मोह वृत्ति-प्रवृत्ति की ओर ले जाती है। दर्पण में अनंत पदार्थ व्याप्य हो रहे हैं, दर्पण व्यापक है। आपकी छवि व्याप्य है। दर्पण में छवि झलक रही है लेकिन न दर्पण में राग है न द्वेष है। मेरा चेहरा सुन्दर है यह मैं कह रहा हूँ दर्पण कभी नहीं कहता है। दर्पण में तुमने देखा है लेकिन दर्पण नहीं कहता कि तुम सुन्दर हो यह डेफिनेशन (परिभाषा) मैंने स्वयं की बनायी है कि मैं सुन्दर हूँ या असुन्दर हूँ यह दर्पण का काम ही नहीं है। दर्पण का काम है झलका देना दर्पण व्यापक है सामने पहुँच गये व्याप्य हो गये।

**प्रिय आत्मन् !**

आगम यही तो दर्शाता है तुम क्या हो? वह दर्शा दिया। अब चाहे तुम अपने को जो मानों अब मैं इस रहस्य तक जाना चाहता हूँ कि मुझमें क्या व्याप्य है? व्यापक तो मैं हूँ। एक गिलास व्यापक है उसमें पानी भी हो सकता है दूध भी हो सकता है, घी भी हो सकता है, अमृत भी हो सकता है। यह आप पर निर्भर करता है। यह मेरी आत्मा व्यापक है मैं अपनी आत्मा में व्याप्य क्या कर रहा हूँ। गिलास तो सबके पास है लेकिन जब बच्चे के हाथ में गिलास पहुँचता है तो वह या तो रेत भरेगा या कीचड़ भरेगा यही बाल-बाल दर्शा रहा है। जो ज्ञान से भी बाल है और चारित्र से भी बाल है, दर्शन से भी बाल और चारित्र से भी बाल है, अत: सम्यक् दर्शन से भी रहित और सम्यक् चारित्र से भी रहित हैं वे बालक-बालक हैं। बाल-बाल हैं ऐसे बाल-बाल के हाथ में जब कोई गिलास आयेगा तो गिलास को किससे भरेंगे? पाप पंक से भरेंगे, मिथ्या पंक से भरेंगे, अज्ञान कर्दम से भरेंगे, अचारित्र के कीचड़ से भरेंगे।

**प्रिय आत्मन् !**

मेरा आत्मा रूपी जो गिलास है वह किससे भरा है? अनादि से मैंने इसी बाल-बाल दशा को पाकर के अज्ञान, मिथ्या चारित्र से भरा है लेकिन हमारे प्रभु जो हैं वे केवलज्ञान से भरे हैं, केवल दर्शन से भरे हैं, क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक सुख से परिपूर्ण हैं। आज सामायिक सार के माध्यम से हम यह जानना चाहेंगे कि वह उससे भरे हैं तो मुझे किससे भरना चाहिये ? वह अनंत ज्ञान से भरे हैं, मुझे किससे भरना चाहिये ? वह अनंत दर्शन से भरे हैं, मुझे किससे भरना चाहिये। मेरे प्रभु अनंत शक्ति से भरे हैं मुझे किससे भरना चाहिये ? सम्यक् दर्शन से भर लो, ज्ञान से भर लो, चारित्र से भर लो, आत्मा में समाहित कर लो, आत्मा को लबालब भर लो, यदि पहले से तुमने गिलास में कीचड़ भर रखा है तो फिर हम दूध कैसे भर पायेंगे ? घी कैसे भर पायेंगे इसलिये व्यापक में देखो कि क्या व्याप्य है। उसमें कुछ रिक्त स्थान भी है कि नहीं है। रिक्त स्थान है तो उसमें भरने की कोशिश की जाती है और भर दिया जाता है और नहीं भी हो तो स्थान बन जाता है।

**प्रिय आत्मन् !**

यह मत सोचना कि पहले से भरा है तो भर नहीं पायेंगे। एक गिलास में दूध है या मान के चलिये कि तेरे बेटे ने राख भी भर दी है तब भी उसकी विशेषता है। एक गिलास राख है तो उस राख में यदि आप दूध डालेंगे तो दूध भी उसी में मिल जायेगा। राख में आप सुई डालेंगे तो सुई भी समा जायेगी। दूध भी समा जायेगा। जैसे- एक ही गिलास में राख भी समा गयी, सुई भी समा गयी और दूध भी समा गया उसी तरह एक ही आत्मा में दर्शन भी समाहित है, ज्ञान भी समाहित, चारित्र भी समाहित है।

**प्रिय आत्मन् !**

हमें आत्मा को राग-द्वेष से व्याप्य नहीं करना है। राग-द्वेष से नहीं भरना है। हमें भरना है गुणों से। जब मेरे प्रभु गुणों से भरे हैं तो प्रभु तुम्हारा भक्त भी गुणों से भरेगा। आप ईश्वर हैं, ऐश्वर्यवान हैं, तो आपका भक्त भी गुणों के ऐश्वर्य का धारक ही होगा। विश्व की समस्त वृत्तियाँ जिनके ज्ञान में झलक रही हैं, लेकिन देखो कैसी निवृत्ति है कि किंचित मात्र भी राग-द्वेष न होने से वे वृत्तियाँ न सुख दे रही हैं न दुख दे रही हैं। हमारे सामने कोई नन्हा सा बच्चा खेलता हुआ आ जाये उसे देखकर हमारा चेहरा खिल जाता है। उस नन्हें से बालक कि प्रवृत्ति ने तेरे अंदर के मोह की दशा का परिचय करा दिया, कि तेरे अंदर कितना मोह है। किन्तु वीतराग के सामने पूर्ण विश्व की

प्रवृत्तियाँ एक साथ झलक रही हैं लेकिन झलकने के बाद न उन्हें राग हो रहा है न उन्हें द्वेष हो रहा है। विश्व की अखिल वृत्तियाँ व्याप्त हो रही है लेकिन न राग में न द्वेष में यह स्थिति है। अपने आप को हम ऐसा कब बनायेंगे ?

## ज्ञाता दृष्टाहमेकोऽहं

मैं ज्ञाता, दृष्टा हूँ। न रागी बनूँ, न द्वेषी बनूँ, जो होता है, सो होने दूँ, होने वाला होता रहे, आने वाला आता रहे, जाने वाला जाता रहे, देखो, जानो, जाने दो, मात्र देखो–दृष्टा। जानो–ज्ञाता। पर्याय आयी है पर्याय चली गयी। ज्ञान में पर्याय आयी, यदि पवित्र पर्याय आ जाये तो उस पर्याय को पुनः स्मरण कर लेना। अपवित्र पर्याय आये तो फिर उसे स्मरण नहीं करना।

**प्रिय आत्मन् !**

ज्ञान को सम्हालना ही जीवन को सम्हालना है। ज्ञान की पर्याय को सम्हाल लिया तो ज्ञान गुण सम्हल जायेगा और ज्ञान गुण सम्हल गया तो अनंत गुण सम्हल जायेंगे। क्योंकि ज्ञान गुण सब गुणों का नायक है। सबसे पहले विकार ज्ञान गुण में आता है, बाद में अन्य गुणों में आता है। जिसका ज्ञान न बिगड़े तो आचरण न बिगड़े। जब कोई व्यक्ति गलत प्रवृत्ति करता है तो आप कहते हो कि आपका दिमाग ठिकाने पर तो है। इस का तात्पर्य क्या है ? यदि ज्ञान ठिकाने पर है तो आचरण गलत हो ही नहीं सकता। क्योंकि ज्ञान गुण सब गुणों का नायक है। ज्ञान गुण के बिना अन्य गुण प्रवृत्ति नहीं करते हैं। यद्यपि गुण स्वतंत्र है फिर भी शेष गुणों का बोध ज्ञान गुण के द्वारा ही होता है। अज्ञान में जाने से सारी प्रवृत्तियाँ अज्ञानमयी हो जाती है। केवलज्ञानी मेरे प्रभु जिनके कैवल्य ज्ञान में विश्व कि वृत्तियाँ व्याप्य हैं समायी हुयी हैं। उन्हें क्या नहीं दिख रहा ? वह क्या नहीं जान रहे हैं ? उन्हें सब कुछ दिख रहा है, और सब कुछ जान रहे हैं। फिर भी प्रयोजन नहीं है, हम कुछ भी नहीं देखते हैं, कुछ भी नहीं जानते हैं फिर भी कहते हैं हम तुम्हें अच्छी तरह से जानते है, आप कैसे हो ?

**प्रिय आत्मन् !**

सहजता का नाम सामायिक है। जब भी अपने मन में कलुषता आये अपन को लगे कि वो हमारे सामने ऐसा करते हैं तो हमें पसंद नहीं आता है, वह ऐसा बोलते हैं तो पसंद नहीं आता है। ज्ञानी ! यह भी विचार कर ले जो उसने तुम से बोला है वही तो उसने भगवान से बोला है। जो तेरी आँखों के सामने झलका है वही तो केवलज्ञान में झलका है। जो तेरी आँखों के सामने दिखा है वही

तो केवलदर्शी के सामने दिखा है जब भगवान को मतलब नहीं है तो तू क्यों मतलब रखता है। तू जान तेरा भगवान जाने, मैं क्यों तेरे कारण राग-द्वेष करूँ। क्योंकि मुझे अपना उपादान सम्हालना है, अपना उपादान किसी के कारण बिगाड़कर के दुर्गति मत करना। किसी भी निमित्त को पाकर के यदि तुम अपने परिणाम बिगाड़ोगे, परिणति बिगाड़ोगे तो दुर्गति तुम्हारी होगी, वह निमित्त तो बाद में सम्हल जायेगा, वह निमित्त तो सम्हल गया लेकिन जिन ने अपना उपादान बिगाड़ा ओहो! मारीचि कुमार तीन सौ तिरेषठ मत चलाने में निमित्त बना लेकिन स्वयं तो भगवान बन गया लेकिन जिसके उपादान बिगड़े वे संसार में भटक रहे हैं।

निमित्त को पाकर के अपना उपादान मत बिगाड़ना। क्योंकि निमित्त क्षण-दो क्षण का है, कब तक का है भरोसा नहीं है लेकिन उपादान को बिगाड़ लिया तो फिर उपादान को सम्हालने कौन आयेगा? पल भर के निमित्त ने द्वीपायन मुनि को नरक भेज दिया।

**प्रिय आत्मन् !**

वही निमित्त अपनाओ, जो तुमको शुभ बना दे। उन निमित्तों से दूर रहो जो अशुभ बना दे। एक ही निमित्त कभी शुभ बना सकता है कभी अशुभ में भी कारण बन सकता है लेकिन उपादान को सम्हाले रहो। यदि उपादान सम्हालने कि कला है तो निमित्त कुछ भी नहीं कर सकता, यदि उपादान सम्हालने कि कला नहीं है तो निमित्त आसमान से जमीन मिला देता है। रावण अपने उपादान को नहीं सम्हाल सका। चंदन बाला को कितने निमित्त बने लेकिन उपादान सम्हाले रही। सीता को कितने निमित्त मिले, उपादान सम्हाले रही। उपादान परिणति को सम्हालना साधना है। जो द्रव्य में कार्य होता है वह उपादान है। मेरा आत्मा उपादान है, यह अनंत जीव मेरे लिये निमित्त हो सकते हैं, शुभ में भी निमित्त हो सकते हैं, अशुभ में भी निमित्त हो सकते हैं लेकिन मेरा विवेक इन से शुभ-शुभ ले लूँ और अशुभ-अशुभ को छोड़ दूँ। विश्व की अनंत वृत्तियाँ झलकने के बाद भी जिसके चित्त में कोई विचार नहीं आता है और हम सब जीव ऐसे हैं कि जरा से किसी के विचार सुन ले तो हमारे मन में उलझने प्रकट हो जाती है।

मेरे प्रभु इन सब में नहीं पड़ते है तो मैं क्यों पड़ूँ, मेरे भगवान इन सब में नहीं पड़ते हैं, तो मैं क्यों पड़ूँ। सिद्ध परमात्मा का स्वरूप क्या है?

जीवकाण्ड में आचार्य नेमीचन्द जी स्वामी कहते हैं- जो आठों कर्मों से रहित है, परम शांति मय है, निरंजन है, नित्य है, आठ गुणों से युक्त है, अव्याबाध स्वरूप है, कृत्य-कृत्य है, लोक के

अग्र भाग पर निवास करते हैं, वे सिद्ध हैं। जिस देव को में हृदय में विराजमान कर रहा हूँ वह तो सिद्ध देव हैं। मेरे देव सिद्ध हैं और दूसरे देव को मुझे सिद्ध नहीं करना है। द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नो कर्म के कलंक से रहित ज्ञान शरीरी हैं। वह सिद्ध परमात्मा हैं।

**ज्ञान शरीरी त्रिविध कर्म मल, वर्जित सिद्ध महंता।**
**ते हैं निकल अमल परमातम, भोगे शर्म अनंता॥ छहढ़ाला**

**अट्ठ विह कम्म वियला, सीदी भूदा णिरंजणा णिच्चा।**
**अट्ठगुणा किद किच्चा, लोयग्ग णिवासिणो सिद्धा ।। 68 ।। जीव का.**

सिद्ध आत्मा तीनों कर्म मल से रहित है। ऐसे वे सिद्ध हैं। विशिष्ट प्रकार की बुद्धि को धारण करने वाले होने से विबुद्ध हैं अर्थात् केवलज्ञान स्वरूप हैं। कर्म के बंध को नष्ट करने वाले हैं। यदि नष्ट करना ही है तो किसको नष्ट करो? कर्म बंध को नष्ट करो, कर्म बंध को समाप्त करो। क्यों समय नष्ट करते हो? अरे! हम और आप समय नष्ट करते हैं और हमारे भगवान कर्म बंध नष्ट करते हैं। यदि कर्म बंध नष्ट कर लिया तो समय नष्ट नहीं होगा। समयसार बन जायेंगे।

**प्रिय आत्मन् !**

चित्त की एकाग्रता ध्यान है। ध्यान करने वाला पुरुष ध्याता है। ध्यान करने योग्य पंच परमेष्ठी या आत्मा ध्येय हैं और ध्यान का फल स्वर्ग-मोक्ष की उपलब्धि है। संवर, निर्जरा तत्त्व की प्राप्ति है।

## चिंता निरोधो ध्यानं

चित्त के रोकने को ध्यान कहते हैं। किसी एक विषय में चित्त का ठहरा देना, रोक देना ध्यान कहलाता है। यह ध्यान प्राणी को निरन्तर होता है, रौद्रध्यान, आर्तध्यान, यह तो हमेशा ही चलते रहते हैं। अनादि से चले आ रहे हैं, लेकिन इन पर विराम लगाकर के धर्म-ध्यान करने वाला पुरुष ध्याता कहलाता है। वह ध्याता ध्यान के भी फल को प्राप्त करता है। ध्याता जिस वस्तु का ध्यान करता है, जिस पुरुष का ध्यान करता है, जिस द्रव्य, क्षेत्र, जिस काल, भाव का ध्यान करता है वह पदार्थ ध्येय कहलाता है। हमारे लिये देव, शास्त्र, गुरु ध्येय हैं, पंच परमेष्ठी ध्येय हैं, नव देवता ध्येय हैं, ओम्, ह्रीं इत्यादि मंत्र ध्येय हैं। ध्येय के ध्यान से क्या लाभ होता है?

## सकलं विकारं धुनीते

सम्पूर्ण विकार नष्ट हो जाते हैं। जब हम सिद्ध स्वरूप भगवान आत्मा का ध्यान करते हैं, अरहंतों का ध्यान करते हैं तो मेरे मन में अरहंतता और सिद्धता के गुण प्रकट होने की क्षमता आती है। इसलिये ध्यान करने से मन के विकार नष्ट हो जाते हैं। एक-दो विकार नहीं, जितने भी विकार हों मानसिक, वाचनिक, कायिक, सभी प्रकार के विकार, सभी प्रकार के रोग, सभी प्रकार की बीमारियाँ नष्ट हो जाती हैं। यदि विकार है तो इसका तात्पर्य आपने ध्यान नहीं किया, यदि मन में विकार है तो सामायिक नहीं होती है। इसलिये पहले प्रतिक्रमण किया बाद में सामायिक। अर्थात् स्नान करके आया है फिर भोजन को बैठा है।

**प्रिय आत्मन् !**

ध्यान करने से सकल विकार नष्ट हो जाते हैं और मन में यदि विकार चल रहा है तो इसका तात्पर्य है अभी पूजा हुयी नहीं है, अभी ध्यान हुआ नहीं है, अभी माला हुयी नहीं है, अभी जाप हुआ नहीं है, ध्यान करने से तो मन के विकार भग जाते हैं। और हम कहते हैं महाराज ध्यान में बैठते हैं तो चित्त भटकता है अब बताओ सत्य कौन है? हमारे आचार्य भगवान सत्य बोल रहे हैं कि हम सत्य बोल रहे?

**प्रिय आत्मन् !**

मन भटक नहीं जाता है, मन तुम्हें पटकता है। मन नहीं चाहता कि तुम इतनी ऊँचाई पाओ, मन नहीं चाहता कि इस ऊँचाई की मंजिल को चढ़ो, मन को वही अच्छा लगता है जिसमें मन अनादि से रमा है, मन को वही पसंद है, जिसमें मन अनादि से लवलीन रहा। कैसे मन स्वीकार कर ले? मन जानता है तुम ऊँचे चले जाओगे मुझे मरना पड़ेगा मन मर जाता है। जब साधक ऊँचाई को पाता है तो भाव मन नष्ट हो जाता है। मन को अपनी दशा पता है जब तुम ध्यान में पहुँच जाओगे आत्मा के पास पहुँच जाओगे तो मेरा कोई अस्तित्व नहीं रहेगा, हर व्यक्ति अपना अस्तित्व चाहता है, मन अपना अस्तित्व बनाये रखना चाहता है। इसलिये तुम्हें आत्मा के समीप नहीं जाने देता है। तुम्हें यदि लगता है कि कांच के टुकड़े को छोड़कर हीरे के पास पहुँचना है तो मन को छोड़कर आत्मा के पास जाना होगा। मन की दशा क्या है? और आत्मा की दशा क्या है? मन की स्थिति अलग है आत्मा की स्थिति अलग है। जब हम आत्मा का समीप पाते हैं तो मन के समस्त विकार नष्ट हो जाते हैं। यह है ध्यान का कौशल, ध्यान की कला, फैक्ट्री में कच्चा माल आता है फैक्ट्री

उसको पुनः ढालकर के नया माल तैयार करती है। उसी तरह साधक जानता है कि यह विकार कच्चा माल है, यह विचार कच्चा माल है, इनको ढालकर के नये प्रकार का माल तैयार कर सकते हैं। ध्यान की पर्याय आत्मा का वह उत्पादन केन्द्र है कि इस समय नये-नये परिणाम उत्पादित होते हैं। पुराने-पुराने समाप्त होते हैं। दोष समाप्त हो जाते हैं और गुण उत्पन्न हो जाते हैं। विकार समाप्त हो जाते हैं, स्वभाव प्रकट हो जाते हैं। विभाव समाप्त हो जाते हैं, कषायें शांत हो जाती हैं, चारित्र प्रकट हो जाता है। अज्ञान समाप्त होता है, ज्ञान प्रकट होता है। मिथ्यादर्शन समाप्त होता है, सम्यक् दर्शन प्रकट होता है।

**प्रिय आत्मन् !**

वस्त्र की सफेदी को मैल ने ढका है। मैल, मैल से दूर नहीं होगा। उस मैल को धोने के लिये आप साबुन, पानी का प्रयोग करते हैं। जैसे वस्त्र की सफेदी को मैल ने ढक लिया है तो साबुन पानी का प्रयोग करने से वह कालिमा दूर हो जाती है उसी तरह मेरी आत्मा की सफेदी को, आत्मा के ज्ञान गुण को अज्ञान ने ढक लिया, दर्शन गुण को मिथ्या दर्शन ने ढक लिया, चारित्र गुण को कषाय ने ढक लिया है ।इसलिये इनको प्रकट करने के लिये अपने स्वभाव का आश्रय लो। अरहंत सिद्ध का आश्रय लेते हैं क्योंकि ध्यान करने से मन की कालिमा दूर हो जाती है और आत्मा का स्वभाव प्रकट हो जाता है। वस्त्र की सफेदी वस्त्र में है तभी तो आपने साबुन लगाने का प्रयास किया है। यदि तुम्हें यह मालूम न होता कि इसमें सफेदी है, आयेगी भी, लौट के आयेगी कि नहीं ? तो फिर साबुन नहीं लगाते।

**प्रिय आत्मन् !**

जैसे वस्त्र सफेद था, सफेद है, सफेद रहेगा, लेकिन प्रजेन्ट (वर्तमान) में उसमें कुछ कालिमा आ गयी है, तो वह कालिमा, वह मैल, पानी और साबुन के प्रयोग से और कुछ परिश्रम से दूर हो जाता है। इसी तरह से वर्तमान में जो कुछ मैल आ जाता है उस मैल को थोड़े समय में दूर किया जा सकता है। यही तो ज्ञान है, यही श्रद्धान है, यही विवेक है। जब तुम अपने कपड़े धो सकते हो, वसन धो सकते हो तो मन को क्यों नहीं धो सकते हो ? और चेतना को क्यों नहीं धो सकते हो ? जिस प्रक्रिया से कपड़े का मैल दूर करते हो वही एक प्रक्रिया तो अध्यात्म में चलती है। विश्वास पक्का है आपका, कहीं कोई कमी नहीं है कि आपका कपड़ा सफेद है। पक्का विश्वास था तभी तो धोकर पहनकर आये हो। जब मैल लगा था, कपड़ा काला था लेकिन आपको पूरा विश्वास था कि

मेरा कपड़ा सफेद है तो उस पर साबुन लगा-लगाकर कपड़े को साफ कर लिया। भो ज्ञानी! उसी तरह से जानो कि मेरा आत्मा सिद्धात्मा है मेरा आत्मा शुद्धात्मा है, लेकिन वर्तमान में आत्मा विकारों से सहित है।

भो ज्ञानी! एक ग्वाला गुरु के पास पहुँचा, गुरुदेव बोले क्या है? जंगल का व्यक्ति था उसने सोचा जंगल में मुनिराज आये हैं और सब पूछ रहे हैं तो मैं भी कुछ पूछ लूँ उसने कहा महाराज! मैं किस चीज का ध्यान करूँ? महाराज ने सहजता से कह दिया तुम्हें जो प्रिय हो उसका ध्यान करो। महाराज मैं कहाँ ध्यान करूँ? चैत्यालय में जाके करो, गुफा में जाके करो, उसने सोचा चैत्यालय कौन जायेगा? और मेरी क्या स्थिति होगी वहाँ पर? इसलिये इसी जंगल में एक गुफा है और गुफा में प्रवेश कर गया प्रवेश करने के बाद वह ध्यान में लीन हो गया और लीन हुआ तो कहना ही क्या हैं। महाराज से पूछ लिया था तत्स्वरूप ध्यान करना जैसे मैं सिद्ध स्वरूप हूँ उसी तरह से उसको सबसे प्रिय भैंस थी और वह ध्यान करता है भैसोऽहं, महिषोऽहं.... मैं भैंस हूँ। मेरे इतने बड़े सींग है, इतना बड़ा पेट है, इतने बड़े पांव हैं ओहो! अब दरवाजा छोटा है अब मैं कैसे निकलूँ, निकल नहीं सकता, मैं तो भैंस हूँ........ दरवाजा छोटा है सुबह से शाम हो गई अब बेचारा घबराने लगा अंधेरा छाने लगा है अब क्या होगा? मैं तो भैंस हूँ।

**प्रिय आत्मन् !**

आत्मा की परिणति वैसी बन जाती है। व्यक्ति जैसा ध्यान करता है। इसलिये ज्ञानी जीव सदा सिद्धों का ध्यान करेगा। परिणति में सिद्धत्व झलकेगा अरहंतों का ध्यान करेगा अरहंत्व झलकेगा। इसलिये ध्यान करना तो उसी का करना जो ध्यान के योग्य हो। ध्येय पंच परमेष्ठी हैं, ध्येय में रागी-द्वेषी को मत लाना। ध्यान का काल किसे समर्पित किया है। मेरी सामायिक सिद्धों के लिये समर्पित है, मेरी सामायिक अरहंतों के लिये समर्पित है, मेरी सामायिक पंच परमेष्ठी के लिये समर्पित है। मैं अपनी सामायिक रागी-द्वेषी के लिये समर्पित नहीं कर सकता।

**प्रिय आत्मन् !**

अंतर की गहराई में जाना। ज्ञानी! भूमि की चिंता करना भी ध्यान की भूमिका में प्रवेश नहीं देगा, क्योंकि आर्त रौद्र ध्यान हो गया।

**प्रिय आत्मन् !**

ध्यान करने से सकल विकार नाश हो जाते हैं। इसलिये जब ध्यान के बाद उठो तो नया आनंद लेकर आना चाहिये। एक माला करके उठे हो तो उसका आनंद होना चाहिये। दो माला करके उठे हो आनंद दुगुना होना चाहिये। स्वाध्याय करके उठे हो तो आनंद हजार गुना, कई गुना होना चाहिये। यह इनकी परम आनंद दशा है, परम आनंद मुद्रा है, सामायिक की मुद्रा परम आनंदमयी मुद्रा है। वह देवों का भी देव मेरे हृदय में विराजमान रहे। जिसे कर्म, कलंक और द्वेष छू नहीं पाते हैं।

भो ज्ञानी ! प्रतिमा को तू छू लेगा लेकिन प्रभु को नहीं छू पायेगा। सच कहो तो तू अपने ज्ञान से प्रभु को छू लेगा, कर्म जिसको छू नहीं पाते हैं, कलंक जिसको छू नहीं पाते हैं, दोष जिसको छू नहीं पाते हैं वही प्रभु है। कर्म न छू पाये तब तो तुम्हारी विशेषता है। कर्मों से अछूते हैं कर्म जिसको छू नहीं पाते हैं। दोष जिनको छू नहीं पाते हैं, कलंक जिनको छू नहीं पाते हैं, निष्कर्म है, अकलंक है, निर्दोष है, कर्म छूने का प्रयास करते हैं हमें तो कर्म सताते हैं किन्तु उन्हें कर्म छू ही नहीं पाते हैं। क्योंकि उन्होंने कर्मों को नष्ट कर दिया है। कर्म को छूने का कारण क्या था ? मोह था। मोह को नष्ट कर दिया तो कर्म को छूने की शक्ति नहीं रही। कर्म जिनको छू नहीं पाते हैं, कलंक जिनको छू नहीं पाते हैं और दोष जिनको छू नहीं पाते है। अब हम विचार करें मुझे कौन छू रहा है। बाहर मैं तो कोई छू नहीं पाया। भीतर में कौन छू रहा ? सावधान रहो ! कोई विकार छू न लें अन्यथा आत्मशुद्धि नहीं रहेगी।

****

# दो नय, दो नों नयन समान

**विभासते यत्र मरीचिमाली, न विद्यमाने भुवनावभासी।**
**स्वात्मस्थितं बोधमयप्रकाशं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये॥ 19॥**

**भावार्थ** - जिनेन्द्र देव के विद्यमान रहने पर भुवन प्रकाशक सूर्य शोभा नहीं पाता है, जो अपने आत्मा में स्थित हैं और ज्ञानमयी प्रकाश वाले हैं, मैं उन्हीं आप्त देव की शरण को प्राप्त होता हूँ।

**विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं, विलोक्यते स्पष्ट मिदं विविक्तम्।**
**शुद्धं शिवं शान्तमनाद्यनन्तं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये॥ 20॥**

**भावार्थ** - जिनके केवल दर्शन में यह सारा विश्व स्पष्ट और पृथक-पृथक दिखाई देता है, जो शुद्ध शांत आदि अन्त रहित और शिव स्वरूप है, मैं उन्हीं आप्त देव की शरण को प्राप्त होता हूँ।

**प्रिय आत्मन् !**

**''ज्ञान स्वरूपोऽहम्। मैं ज्ञान स्वरूपी हूँ। आप ज्ञान स्वरूपी हैं,**
**हमारा परमात्मा ज्ञान स्वरूपी है। ''जानाति ज्ञायते ज्ञप्ति मात्रं ज्ञानं।**

जो जानता है, जिसके द्वारा जाना जाता है, अथवा जानना मात्र ज्ञान कहलाता है। हमें सामायिक के परम सौंदर्य को प्राप्त करना हैं, दुर्लभ, रसरसायन समता रस को पाना है। उस सामायिक में आत्मा के लिये हम कुछ चिंतन करते हैं। वह चिंतन हमारा परमात्मा से जुड़ता है। आस्था के स्वर ईश्वर से जुड़ते हैं। अपनी आत्मा में परमात्मा को प्रतिष्ठित करते हुए प्रभु से कहते हैं हे प्रभु! आप केवलज्ञान स्वरूपी हो, आप अपनी आत्मा में स्थित हो।

प्रिय आत्मन् !

हम जिस परमात्मा को चिंतन में प्रतिष्ठित करते हैं वह मेरा परमात्मा केवलज्ञानी, केवलदर्शी है, आज हम केवलज्ञान के संदर्भ में यहाँ विमर्श करते हैं :-

**जाणदि पस्सदि सव्वं, ववहारणयेण केवली भगवं।**
**केवलणाणी जाणदि, पस्सदि णियमेण अप्पाणं॥ १५९ नि.सा.**

आचार्य भगवन् श्री कुंदकुंद देव नियमसार ग्रंथराज कि एक सौ उन्सठ वीं गाथा में कहते हैं - केवली भगवान व्यवहार नय से पर को जानते हैं, जग को जानते हैं, लोकलोक को जानते हैं, निश्चय नय से अपनी आत्मा को जानते हैं। यह कथन में आता है कि भगवान तीन लोक को जानते हैं। यह व्यवहार नय का विषय है। हम आपको परिचय कराते जिसके द्वारा पदार्थों का ज्ञान होता है ऐसे प्रमाण और नय के विषय में - प्रमाण वस्तु को सम्पूर्ण जानता है, सम्पूर्ण वस्तु को विषय करता है। जबकि नय प्रमाण के द्वारा जानी गये किसी एक अंश को विषय करता है। नय वक्ता के अभिप्राय और इच्छा के अनुरूप चलता है, नय वस्तु के एक अंश को जानता है, नय श्रुत ज्ञान का भेद है, व्यवहार नय पर के आश्रित होता है, निश्चय नय आत्मा के आश्रित होता है

**''स्वाश्रितो निश्चयः, पराश्रितो व्यवहारः।''**

जो द्रव्य के आश्रित है, स्व के आश्रित है, निज के आश्रित है वह निश्चय नय है। जो पर के आश्रित है, पर्याय के आश्रित है, वह व्यवहार नय है।

**जइ जिण मयं पवज्जह, तो मा ववहार णिच्छह मुणह।**
**एक्केण विणा छिज्जई, तित्थं अण्णं च तिच्थ फलं॥**

यदि तुम जिन मत की प्रभावना चाहते हो, जिन शासन का प्रकाशन चाहते हो, जैन धर्म का दिग् दिगंत प्रचार-प्रसार चाहते हो, तो हे भव्य जीवो! दोनों नयों को स्वीकारो। यदि व्यवहार नय छोड़ दोगे तो तीर्थ प्रवृत्ति नहीं होगी, चरणानुयोग नहीं रहेगा और निश्चय नय छोड़ दोगे तो तीर्थ का फल प्राप्त नहीं होगा।

**प्रिय आत्मन् !**

दो नयन के समान दोनों नय आवश्यक हैं। हम व्यवहार को भी महत्त्व देते हैं, निश्चय को भी महत्त्व देते हैं। अन्तर इतना होता है-

**"अर्पितानर्पित सिद्धे।"**

कभी व्यवहार मुख्य हो जाता है, कभी निश्चय मुख्य हो जाता है। क्योंकि व्यवहार-व्यवहार की अपेक्षा सत्य है निश्चय-निश्चय की अपेक्षा सत्य है। व्यवहार नय से केवली भगवान तीन लोक को जानते हैं। किन्तु निश्चय नय से तीन लोक को नहीं जानते निश्चय नय से केवलज्ञानी आत्मा-आत्मा को जानता है लेकिन व्यवहार नय से नहीं जानता। क्योंकि व्यवहार का विषय पर्याय है, और निश्चय का विषय द्रव्य है। व्यवहार अनेक को विषय करता है, निश्चय एक को विषय करता है। निश्चय के पास मात्र शुद्ध, विशुद्ध आत्मा ही है, व्यवहार के पास सारा जग है। शिशु अकेले माँ को ही पहचानता है लेकिन माँ सबको पहचानती है। निश्चय मात्र आत्मा को जानता है क्योंकि निश्चय एक में ही होता है व्यवहार दो में होता है, अनेक में होता है।

प्रश्न यह आता है कि पहले केवल ज्ञान होता है कि केवल दर्शन होता है ! भो ज्ञानी ! विषय केवल ज्ञानी का चल रहा है और जब छद्मस्थों की चर्चा आवे तो दर्शन पूर्वक ज्ञान होता है लेकिन जब केवल ज्ञानी कि चर्चा आये तो दर्शन और ज्ञान एक साथ होते हैं जैसे - सूरज का प्रताप और सूरज का प्रकाश एक साथ होता है वैसे ही दर्शन और ज्ञान एक साथ होते हैं।

**दंसण पुव्वं णाणं, छुदमत्थाणं ण दुण्णि उवओगा।**

**जुगवं जम्हा केवली, णाहे जुगवं तु ते दोवि॥44॥ द्रव्य संग्रह**

**प्रिय आत्मन् !**

कोई जीव यह कहते हैं कि ज्ञान पर को जानता है, दर्शन निज को जानता है, आत्मा निज पर दोनों को जानती है। किंतु आचार्य भगवन् का कहना है कि ज्ञान निज को भी जानता है, ज्ञान पर को भी जानता है, दर्शन निज को भी अनुभव करता है और पर का भी अनुभव करता है। आत्मा निज का अनुभव करती है और पर का भी अनुभव करती है। तथा जानती भी है।

यदि ज्ञान पर को ही जाने, निज को न जाने तो फिर ज्ञान आत्मा से रहित हो जायेगा। इसलिये जब ज्ञान आत्मा को ही नहीं जानेगा, द्रव्य को ही नहीं जानेगा तो फिर कौन जानेगा अपने आपको ? इसलिये ज्ञान स्वपर प्रकाशी है। जैसे-दीपक का प्रकाश स्वयं को प्रकाशित करता है और पर पदार्थों को भी प्रकाशित करता है। वैसे ज्ञान अपने आत्मा को भी प्रकाशित करता है और पर पदार्थों को भी प्रकाशित करता है।

**प्रिय आत्मन् !**

वे केवली भगवान् अपने आत्म-स्वरूप का अवलोकन करते हैं। और व्यवहार दृष्टि से तीन लोक का अवलोकन हो जाता है। किन्तु इतना होने के बाद भी उन्हें कर्म का बंध नहीं होता है। क्योंकि जिनके मोहनीय कर्म का नाश हो गया है उनको इच्छा प्रकट नहीं होती है। और जहाँ इच्छा नहीं होती है उन्हें क्रिया करते भी कर्म का बंध नहीं होता है। ऐसे केवली भगवान विहार कर रहे हैं, दिव्य-ध्वनि दे रहे हैं, लेकिन फिर भी कर्म का बंध नहीं होता है।

**प्रिय आत्मन् !**

एक ओर जिनेन्द्र देव विराजे हैं दूसरी ओर सूर्य का उदय हो रहा है। सूर्य अपनी बारह हजार किरणों के साथ उदय को प्राप्त हो रहा है एक-एक किरण प्रकाश पुंज को लिये हुये है। प्राची में दिनकर उदय को प्राप्त हो रहा और इधर जिनेन्द्र विराजमान हैं। जिनेन्द्र की आत्मा में कैवल्य ज्ञान का सूर्य उदित हो चुका है। दोनों प्रकाश कर रहे हैं उधर सूरज भी प्रकाश छोड़ रहा है और इधर केवल ज्ञानी आत्मा प्रकाश छोड़ रही है। प्रभो ! जहाँ आपका कैवल्य ज्ञान प्रकाश करता है वहाँ सूर्य का प्रकाश कार्यकारी नहीं होता है। सूर्य का प्रकाश केवल जड़ पदार्थों को प्रकाशित करता है, अचेतन पदार्थों को प्रकाशित करता हैं लेकिन आपका ज्ञान चेतन और अचेतन दोनों पदार्थों को प्रकाशित करता है। सूर्य का प्रकाश केवल पौद्गलिक पदार्थों को प्रकाश करता है। लेकिन आपका ज्ञान सचेतन और पौद्गलिक दोनों को प्रकाशित करता है। सूर्य का प्रकाश जहाँ पहुँच पाता है उसी स्थान को प्रकाशित करता है लेकिन आपका ज्ञान तीनों लोकों में पहुँच जाता है और तीनों कालों को प्रकाशित करता है। सूर्य तो दिन में प्रकाश देता है रात्रि में प्रकाश नहीं देता है किन्तु आप दिन और रात को ही नहीं अपितु तीनों काल भूत, भविष्यत, वर्तमान तीनों कालों को प्रकाशित करते हैं। सूर्य का प्रकाश कभी घटता है कभी बढ़ता है लेकिन आपमें ज्ञान सूर्य एक बार उदय हो चुका है अब आपका अस्त नहीं होता है। सूर्य प्रातः उदय को प्राप्त होता है संध्या में अस्त हो जाता है किन्तु आप सदा सर्वोदयी हो आप अस्त को प्राप्त नहीं होते हैं।

सूर्य निरन्तर गमन करता रहता है लेकिन आप सदा स्थिर रहते हो, सूर्य ज्योतिष्क देव है लेकिन आप देवाधि-देव हैं। सूर्य के पास ज्योति है लेकिन आपके पास केवल ज्ञान रूपी परम ज्योति है। सूर्य दूसरों को प्रकाश देता है संताप पहुँचाता है जबकि आप दूसरों को प्रकाश देते हैं किन्तु संताप नहीं पहुँचाते। सूर्य ग्रीष्मकाल में तपाता है, बरसात में छिप जाता है, और शीत में दूर

चला जाता है किन्तु आप ऊष्ण काल में भी शीतलता देते हैं, शीत ऋतु में आप प्रसन्नता देते हैं और ग्रीष्म काल में आप पापों को जलाते हैं।

हे प्रभु ! कैसे तुमको सूरज की उपमा दूँ। सूरज ऊपर रहता है किरणें नीचे फैंकता है। लेकिन आप कोई किरणें नहीं फेंकते हैं लेकिन आप अपने में स्थित रहते हैं। आप अपनी आत्मा में स्थित हो, सूरज आत्मा में स्थित नहीं है सूरज तो सुमेरू की परिक्रमा लगाता है आप किसी की परिक्रमा नहीं लगाते है किन्तु तीन लोक के जीव आपकी परिक्रमा लगाते हैं। सूरज अंधकार को नष्ट करता है लेकिन आप पाप रूपी अंधकार को नष्ट करते हैं। हे प्रभु ! विमान तो वही रहेगा लेकिन जो सूर्य देव का जन्म होता है, मरण होता है, किन्तु न आपका जन्म होता है न आपका मरण होता है।

**''मरीचिमाली न यत्र विभासते।**

जहाँ आप विद्यमान रहते हैं वहाँ सूर्य शोभा को प्राप्त नहीं होता है। वह छवि हीन हो जाता है। क्योंकि आपका ज्ञान तेज इतना है, ज्ञान का प्रभाव इतना है कि सूर्य का प्रभाव भी मंद पड़ जाता है। आप ज्ञानप्रकाश मय हो, सूर्य पुदगल प्रकाश मय है। प्रकाश पुदगल की पर्याय है। लेकिन ज्ञान प्रकाश चेतना की पर्याय है। इसलिये हे प्रभु ! आपके विराजमान रहने पर सूर्य शोभा को प्राप्त नहीं होता है। जो भुवन को प्रकाशित करने वाला है ऐसा सूर्य भी शोभा को प्राप्त नहीं होता है कैसी महिमा है आपकी ? निज में रह रहे हैं लेकिन फिर भी तीन लोक को प्रकाश प्रदान कर रहे हैं। दूसरे की आत्मा में जाना बहुत आसान है लेकिन अपनी आत्मा में रहना बहुत कठिन है। हमारी आत्मा में आके असंख्य लोग रह लेते हैं लेकिन हम अपनी आत्मा में जाके नहीं रह पाते। कितना बड़ा विस्मय है ? मेरे ज्ञान में जितने पर द्रव्य आये हैं, पर पदार्थ आये हैं, वे मेरी आत्मा में स्थित हैं लेकिन मैं कहाँ स्थित हूँ ? ध्यान देना– जो जो तुम्हारे ज्ञान में आ रहा है वह–वह तुम्हारी आत्मा में स्थित होता है। इसलिये अपने ज्ञान में कभी कोई बुरी चीज मत लाना क्योंकि आत्मा में बुरी चीज नहीं बसाई जाती है। घर के अन्दर कचड़ा नहीं ले जाते हैं। आत्मा तुम्हारा घर है, आत्मा हमारा घर है, हम गली का कचड़ा घर में नहीं ले जाते हैं। नाली का पानी घर मे नहीं ले जाते हैं, अहो ज्ञानी ! बाहर का राग–द्वेष इस आत्मा रूपी भवन में नहीं ले जाना।

ओहो ! ज्ञानी ! राग–द्वेषवर्धक चर्चा को घर लेकर नहीं जाना। मैं आत्मा रूपी घर में क्या लेकर जा रहा हूँ ? कौन सा नियम लेकर जा रहा हूँ ? कौन सा संयम लेकर जा रहा हूँ ? ज्ञान गुण की

कौन सी पर्याय लेकर जा रहा हूँ? ज्ञानी ! जब-जब घर में जाते हो या आपके घर कोई मेहमान आता है तो मिठाई लेकर आता है। ज्ञानी पुरुष ! तू अपने घर में क्या लेकर गया, शाम को जब घर जाते हो तो बच्चे पूछते हैं पिताजी! क्या लाये हो? तो आप कहते मैं आपके लिये फल लाया हूँ। ज्ञानी पुरुष! तेरी आत्मा का ज्ञानगुण, तुझ से पूछ रहा है कि तू क्या लेके आया है? तू कह देता है मैं राग लेके आया हूँ, मैं द्वेष लेकर आया हूँ। ओहो! क्या गंदा लेके आया है। आत्मा देखती है क्या लेकर आया है। क्या लेने भेजा था। क्या लेके आया? एक नन्हे से बच्चे के लिये तू फल लेके आता है और अपनी आत्मा के लिये क्या लेके आया है।

**प्रिय आत्मन् !**

हम आज अपनी आत्मा के लिये कुछ लेने आये हैं, क्योंकि **बाजार की किसी दुकान पर आत्मा के लिये मिलने वाली कोई चीज नहीं है** ओहो! चाहे जौहरी बाजार हो, वे हीरे मोती आत्मा के लिये कुछ नहीं कर पायेंगे ऐसी कोई दुकान भी तो नहीं जहाँ आत्मा के लिये कुछ मिल जाये कि मैं ले आऊँ।

ऐसी कोई दुकान भी तो नही जहाँ कुछ मिल जाये तुम आत्मा के लिये ले जाओ। बस ज्ञानी जीव! मन्दिर शास्त्र, गुरु यह वो दुकान है जहाँ आत्मा के लिये सब कुछ मिलता है, शरीर के लिये कुछ भी नहीं। आत्मा के लिये ही सब कुछ मिलता है। ओहो ! तीर्थंकर प्रभु! तुम्हारे जन्म के समय तो इन्द्र ने पुद्गल के रत्न बरसाये थे लेकिन तुम्हारे जन्म से तो धन्य हमारा जन्म है कि हमारे जन्म पर ज्ञान की वर्षा हो रही है ज्ञान की वर्षा होना सबसे महान वर्षा है। पौद्गलिक रत्न तो कभी बरस जायेंगें।

**प्रिय आत्मन् !**

जिन के जीवन में सम्यक् ज्ञान बरसता है उन्हीं के जीवन में आगे चलके रत्न बरसते हैं और वह रत्न कुछ काम के नहीं हैं यह रत्न जो रत्नत्रय कहलाते हैं यही परम रत्न हैं।

**प्रिय आत्मन् !**

जब योगी सामायिक में प्रवेश करता है उसकी अंतर ध्वनि प्रकट होती है आत्मा में क्या लेके आये हो?

एक खाली बर्तन कुँए में डालते हैं वह थोड़ी देर के बाद पानी को लेके आता है। तुम मंदिर आये, लौटे के गये क्या लेके आये? क्या लेके गये? आना खाली, जाना भरे। कुँए में खाली बर्तन डालते हैं और भरा बर्तन लेके आते हैं, कूप में खाली पात्र जाता है भरा पात्र आता है, जाता पात्र है, आता पात्र है, जो पात्र खाली होता है वह भरा आता है।

**प्रिय आत्मन् !**

अपने पात्र को जरा खाली करके आओ और डाल दो प्रभु चरणों में, डाल दो गुरु चरणों में, डाल दो शास्त्र के चरणों में और फिर मालूम चलेगा कि तुमने भरना शुरू किया है। हम पहले से ही भरे हैं तो भरेंगे कैसे? कोई भी व्यक्ति हो पानी भरने के पहले बर्तन को पूरा खाली कर लेता है तभी उस बर्तन को कूप में डालता हैं लेकिन आप तो क्या किये हैं? घर से मंदिर आ गये ओहो! घर छोड़के तुम संघ में भी आ गये लेकिन यदि तुम्हारा राग-द्वेष खाली नहीं हुआ तो मैं इसमें क्या भरूँ।

**प्रिय आत्मन् !**

रागद्वेष - विभाव परिणति है। राग-द्वेष करना जीव की पुरानी आदत है जो आसानी से छूटती नहीं है। बारह साल लग गये। पुष्पडाल जैसे जीव के लिये दीक्षा लिये हुये बारह वर्ष हो गये, याद रहे ज्ञानियो! वारिषेण जिसका मित्र जिस वारिषेण कि सुन्दर-सुन्दर बत्तीस रानियाँ थी। पुष्पडाल उसी का मित्र था उसकी एक ही स्त्री थी।

**प्रिय आत्मन् !**

वारिषेण ने बत्तीस रानियों को त्याग करके दीक्षा ले ली और पुष्पडाल मित्र ने भी मित्र के प्रेमवश चलो तुम कहते हो तो मैं दीक्षा ले लेता हूँ। लेकिन भीतर में तो बसी है प्रियतमा। दीक्षा लेने के बाद भी याद आ रही है। वारिषेण समझ गये, अभी इसका मन नहीं लग रहा। वारिषेण ने कहा चलो अपन विहार करते हैं। किस दिशा में विहार करें? वारिषेण ने कहा आपको जो इष्ट हो उस दिशा में विहार करें और हम तो इष्ट दिशा में विहार करेंगे वारिषेण का विहार इस ओर हुआ पुष्पडाल का विहार गांव कि ओर हो गया कम से कम ''एक बार तो देख लूँ मैं'' वह कैसी है? ओहो! वारिषेण समझ गया कि मेरा मित्र उस ओर जा रहा है जिस ओर उसे जाना नहीं चाहिये।

**यदि तुम वह करते हो, जो तुम्हें करना न चाहिए।**
**तो तुम्हें को वह मिलेगा, जो तुम्हें मिलना न चाहिये॥**

वारिषेण अपने पांव मोड़ते हैं और पुष्पडाल के पीछे–पीछे चलने लगते हैं। वारिषेण पास आ जाते हैं और कहते हैं पुष्पडाल चलो अपने राजमहल चलें। पुष्पडाल तो चाह ही रहा था। जब यह राजमहल जायेंगे तो उसके बाद मैं अपनी देवी से मिल आऊँगा। वारिषेण ने प्रवेश किया माँ ने सादर आमंत्रण दिया एक सोने का आसान, एक काष्ठ का आसन। वारिषेण काष्ठ आसन पर विराजमान हो गये। पुष्पडाल स्वर्ण आसन पर विराजमान हो गया। वारिषेण की माँ विचार रही कि अचानक वारिषेण का आना क्यों हो गया? और विचार करती है कि वारिषेण ने कहा! माँ मेरी समस्त रानियों के लिये बुलाया जाये और सभी रानियाँ सुन्दर रूप में आयें? ज्यों ही बुलाया माँ जानती थी। बुलाया गया सभी रानी सोच रहीं थी कि मेरा सौभाग्य ही है जो मेरे पति देव पुनः पधारे और अब मना लेंगे पति देव के लिये।

वारिषेण ने कहा पुष्प डाल देखो तुम क्यों कष्ट उठाते हो वीहड़ वन में मेरे कारण देखो मैंने इन सबको त्याग कर दिया है और मैं सोचता हूँ कि आप व्यर्थ में कष्ट उठाते हैं और आप राजमहल में रहें और मैं तो जा ही रहा हूँ वापिस वन के लिये मुझे तो मुनि मुद्रा ही प्यारी लगती है **'इन बत्तीस में से एक भी प्यारी मुझे प्यारी नहीं लगती है' मुनि मुद्रा में ही मुझे सर्वोत्तम सुख है।** यह निर्ग्रंथ प्रवचन अनुत्तर है, नैयायिक है, सामायिक है, परम सुख को देने वाला है, दुखों को नष्ट करने वाला है। इसी मुनि मुद्रा से कर्म छूटते हैं, इस मुनि मुद्रा को मैं स्पर्श करता हूँ, इसी मुनि मुद्रा का मैं ध्यान करता हूँ, इसी मुनि मुद्रा में मैं श्रद्धा करता हूँ। इस मुनि मुद्रा के समान न कोई रूप था, न कोई है, न कोई होगा तीन लोक में तीन काल में कल्याण करने वाली कोई मुद्रा है तो यह मुनि मुद्रा है। इसलिये मैं तो वन की ओर जा ही रहा लेकिन मैं आप से कह रहा हूँ आप क्यों मेरे मित्रता के कारण कष्ट उठाते हो तुम इन बत्तीस में से जिसको सम्हालना चाहो और जो आपको वरण करने चाहे वह कर सकती है। पुष्पडाल विचार करता है धिक्कार हो मुझे यह बत्तीस को त्याग कर सकते हैं और मैं एक काली कलूटी एक आँख बंद कानी स्त्री का त्याग नहीं कर सकता? धिक्कार अपने आप को करता है। वारिषेण के चरणों में पुष्पडाल प्रणाम करता है। हे मित्र! मुझे क्षमा करो, क्षमा करो, भीतर का रहस्य वारिषेण समझ जाते हैं **पश्चाताप से बड़ा संसार का कोई भी ऐसा प्रायश्चित नहीं है जो पाप को धो सके''** और पुष्पडाल इतनी मात्र घटना से वैरागी बन जाता है।

**प्रिय आत्मन् !**

अब वह पुष्पडाल उस घर नहीं जाता है, आत्मा के घर लौट आता है। जा रहा था कुछ लेने के लिये और जब भीतर का ज्ञान हो जाता है तो व्यक्ति बाहर की वस्तुयें लेकर के नहीं आता है।

**प्रिय आत्मन् !**

हम मंदिर आये हैं ।क्या लेके जायेंगे ? हम प्रवचन सुनने आये हैं। क्या लेके जायेंगे ? यह महत्वपूर्ण है। साधना की नहीं जाती है, हो जाती है। विराधना न करना ही तो साधना है। हे ज्ञानी पुरुषो ! केवली भगवान अपनी आत्मा में विराजे हैं बाहर में नहीं विराजे हैं। हम कहाँ विराजे ? कहाँ बैठे ? हमारे प्रभु अपनी आत्मा में बैठे हैं। यदि हमसे कोई बैठने को न कहे, तो हम अपनी आत्मा में बैठ जायें। यदि हमसे कोई खड़े होने को न कहे तो कायोत्सर्ग में खड़े हो जायें। हमसे किसी ने बैठने को नहीं कहा ओहो ! बैठना अच्छा है, कि खड़ा होना अच्छा है ? अहो ! ज्ञानी ! खड़े-खड़े होना अच्छा है, कायोत्सर्ग में सबसे उत्तम विधि है खड़े-खड़े होना। भीतर में धर्म-ध्यान में खड़े हैं, बाहर में तीर्थंकर मुद्रा में खड़े हैं यह है सर्वोतम विधि। और बाहर में भले ही बैठे रहो लेकिन भीतर में खड़े रहना धर्म-ध्यान में लीन रहना यह दो ही विशेषतायें हैं। तुम कहते हो बैठने को नहीं कहा ? भगवान कहते हैं बैठने को कहना मत। किसी को तू बाहर से बैठे जाना, लेकिन भीतर में मत बैठना। यदि भीतर मैं बैठ गया तो, आर्त और रौद्र ध्यान करने लगा तो तेरा कल्याण नहीं होगा। जो धर्म-शुक्ल ध्यान कर रहा है वह भीतर में खड़ा है। जो आर्त और रौद्र ध्यान कर रहा है वह भीतर में बैठा है लेकिन परिणाम की अपेक्षा खड़े रहना चाहिये। भावों से खड़े रहो जागृत रहो, धर्म-ध्यान शुक्ल ध्यान में लीन रहो तो भीतर से खड़े हो और अंदर से बैठे हो। अपने कुँए के पानी से दूसरे के खेत नहीं सींचे जातें। कुँए के पानी से अपना ही खेत सींचा जाता है। किसान अपने कुँए के पानी से अपना खेत पहले सींचता है। भो ज्ञानी ! अपने ज्ञान को अपनी आत्मा में ठहरा देना तो तेरा खेत हरा-भरा हो जायेगा।

**प्रिय आत्मन् !**

**छुत पिपासाजरातंक, जन्मांतकभयस्मयः।**
**न राग द्वेष मोहाश्च, यस्याप्तः सः प्रकीर्त्यते।।**

श्री समंतभद्र स्वामी रत्नकरण्डक श्रावकाचार में लिखते हैं जो क्षुधा आदि अठारह दोषों से रहित हैं वह आप्त कहलाते हैं। ऐसे आप्त की शरण को मैं प्राप्त होता हूँ।

**सर्व द्रव्य पर्यायेषु केवलस्य।**

जो सम्पूर्ण द्रव्य और सम्पूर्ण पर्यायों को जानता है वह केवल ज्ञान है। ऐसे केवल ज्ञानी अरहंत देव हैं जो एक साथ तीन लोक, तीन काल को जानते हैं। और हमें भी जानते हैं तुम्हें भी जानते हैं, सबको जानते हैं सब कुछ जानते हैं, रात में जानते हैं, यत्र, तत्र, सर्वत्र जानते हैं ऐसे वे केवल ज्ञानी है।

## रत्तो बंधदि कम्मं..............।

**प्रिय आत्मन् !**

आचार्य कुंद-कुंद देव समयसार जी कि एक सौ पचास वीं गाथा में कहते हैं राग करने से कर्मों का बंध होता है। अशुद्ध होता है जीव राग से, अशुद्ध होता हैं जीव द्वेष से, और शुद्ध होता है संवर और निर्जरा से। जितनी-जितनी संवर-निर्जरा होगी उतना-उतना शुद्ध होगा और जितना-जितना आस्रव बंध होगा, उतना-उतना अशुद्ध होगा। आस्रव बंध कराता है राग और संवर निर्जरा कराते हैं शुद्ध भाव। अशुभ भाव अशुभ-बंध कराता है। शुभ भाव-शुभ बंध कराता है लेकिन शुभ भाव संवर-निर्जरा भी कराता है।

**प्रिय आत्मन् !**

संवर-निर्जरा का जो पथ है वह शुद्ध है। मेरा देव अशुद्ध नहीं हो सकता है, अशुद्ध मेरा देव नहीं हो सकता है, यह मेरे देव की परिभाषा है कि मेरा देव शुद्ध है, सो सच्चा है। तुम्हारी वस्तु शुद्ध लिखे होने पर भी अशुद्ध हो सकती है। लेकिन मेरा देव पूर्णत: निर्दोष है क्योंकि मोह उसमें से निकल गया है जिसमें से मोह जितना निकला है वह उतने परसेंट शुद्ध हो गया जिसमें जितने परसेंट मोह है उतने परसेंट अशुद्ध है।

जिसमें अनंतानुबंधी मोह बैठा है वह ज्यादा अशुद्ध हे जिसमें अप्रत्याख्यान बैठा है वह कुछ कम अशुद्ध है जिसमें प्रत्याख्यान मोह है वह कुछ और कम अशुद्ध है जिसमें संज्वलन मोह है उसमें और कम अशुद्ध है और जिसमें मोह ही नहीं है वह परम शुद्ध है। यह है शुद्ध का मार्ग, मोह का कचड़ा निकालो, मोह की गंदगी निकालो, मोह का मैल निकालते ही आत्मा शुद्ध होती है।

**प्रिय आत्मन् !**

जैसे क्षत्रीय रानी जब अपने बेटे को युद्ध में भेजती है तो यही कहती है या तो विजय लेके आना पीठ दिखाकर नहीं। उसी तरह हे माँ जब तेरा पुत्र जब वैराग्य की ओर बढ़े तो रोकना मत स्पष्ट कह देना कि तूने मुझे छोड़ा है अब तू स्वप्न में भी मुझे याद मत करना। याद करेगा तो तुझे पाप लगेगा। इसलिये सदा-सदा जिनवाणी माँ को याद करना जो व्यक्ति वैराग्य के पथ में आकर के माता-पिता को रागवश याद करते हैं वे पाप बंध करते हैं। यदि माता-पिता याद करेंगे तो वे अपने कर्मों की निर्जरा कर लेंगे। रागी-वैरागी को याद करें तो कर्मों का नाश कर लेगा। वैरागी-रागी को याद करेगा तो कर्मों का बंध करेगा।

****

# जिनमुद्रा ध्यान मुद्रा

**येन क्षता मन्मथमानमूर्च्छा, विषादनिद्रा भयशोकचिन्ताः।**

**क्षतोऽनलेनेव तरुप्रपंचस्तं, देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये॥ 21॥**

**भावार्थ** – जिस प्रकार अग्नि के द्वारा वृक्षों का समूह क्षय को प्राप्त होता है। उसी प्रकार जिसके द्वारा काम विकार, मान, मूर्छा, विषाद, निद्रा, भय, शोक और सर्व प्रकार की चिन्तायें नष्ट कर दी गई हैं, मैं उसी आप्त देव की शरण को प्राप्त होता हूँ।

**न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी, विधानतो नो फलको विनिर्मितः।**

**यतो निरस्ताक्षकषाय विद्विषः, सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मतः॥ 22॥**

**भावार्थ** – ध्यान का आसन, न संस्तर है, न पाषाण है न तृण है, न भूमि है और न काष्ठ फलक (चौकी/पाटा, तख्त) है किन्तु जिसके अन्दर से विषय कषाय रूप शत्रु दूर हो गये हैं ऐसी निर्मल आत्मा को ज्ञानी जनों ने ध्यान का आसन माना है।

**प्रिय आत्मन् !**

मैं इष्ट देव अरिहंत स्वामी को हृदय कमल में बिठाता हूँ। जिनकी पूजा से पाप नष्ट हो जाते हैं, जिनकी भक्ति से चित्त पावन हो जाता है, जिनकी स्तुति से वचन शुद्ध हो जाता है, जिनके गुण-गान से कंठ पवित्र हो जाता है, जिन्हें ध्यान में लाने से मन के विकार पलायन कर जाते हैं, जिनके पास आने से पग पवित्र हो जाते हैं, जिन्हें हृदय में विराजमान करने से सम्यक्त्व प्रकट होता है, जिनका विचार करने से ज्ञान प्रकट होता है, जिनके पास आने से चारित्र प्रकट होता है ऐसे विशुद्धि को देने वाले, वृद्धि को देने वाले, समृद्धि को देने वाले देवाधि-देव, इष्ट देव, वीतराग, सर्वज्ञ, हितोपदेशी सच्चे देव आपके लिये मेरा नमस्कार हो।

हे देव ! आप जहाँ हो, वहाँ हो। किन्तु मैं जहाँ हूँ आपको वहाँ से ही नमस्कार करता हूँ। मेरा यह नमस्कार आपके पास सिद्धालय तक पहुँचता है। मैं यहाँ से आपको नमस्कार करता हूँ, मेरा नमस्कार सिद्धालय में विराजमान देवाधि-देव प्रभु को हो जाता है। मैं यहाँ नमस्कार करता हूँ, विदेह क्षेत्र के समोशरण में विराजमान समस्त अरिहंतों को मेरा नमस्कार पहुँच जाता है। मैं यहाँ नमस्कार करता हूँ, ढाई द्वीप में विराजमान समस्त दिगम्बर श्रमणों के चरणों में मेरा नमस्कार पहुँच जाता है।

हे प्रभु ! यह मेरे मन की क्षमता और मेरी भक्ति की क्षमता रहे कि यह नमस्कार के परमाणु आपके चरणों तक पहुँचते रहें और आशीष के परमाणु मेरे माथे तक आते रहें ऐसी भक्ति-भावना के साथ मैं आपकी मनोहर मुद्रा देख रहा हूँ। मेरी दृष्टि आपके चरणों को निहार रही है। मेरे नयन आज अश्रु जल से आपका अभिषेक कर रहे हैं। मुझे बहुत प्रसन्नता है। आज मैंने देखा है – वीतराग स्वरूप को, वीतराग मुद्रा ! अहा धन्य मुद्रा ! धन्य छवि ! क्या अलौलिक रूप है। इसी मुद्रा को पाकर के आपने तप किया है, इसी मुद्रा से आपने केवलज्ञान पाया है, इसी मुद्रा से आपने निर्वाण पाया है।

हे प्रभु ! यह आपकी मुद्रा आपके तप की मुद्रा है, आपकी मुद्रा ध्यान की मुद्रा है, निर्वाण की मुद्रा है।

हे प्रभु ! आपकी मुद्रा समता की मूरत है, आपकी मुद्रा क्षमा और मार्दव धर्म की मूरत है, आपकी मुद्रा आर्जव की मूरत है, आपकी मुद्रा अनंत गुणों की मूरत है। अनंत गुणों को एकत्रित करके यदि कोई आकार दिया जाये, अनंत गुण रूपी परमाणुओं को एकत्रित करके यदि कोई आकार दिया जाये तो वह आकार होगा वीतराग देव का, वह आकार होगा जिनेन्द्र देव का, वह आकार होगा सर्वज्ञ देव का, वह आकार होगा हितोपदेशी देव का ।

हे प्रभु ! आपकी यह अनंत गुणरूपी परमाणुओं से मिलकर बनी हुयी छवि है आप जैसी छवि संसार में अन्यत्र कहाँ मिलेगी। आपकी मुद्रा आपके हृदय की अनुक्रमणिका है। तथा वीतरागता की परिचायक भी।

## *Face in the Index of the Hart*

चेहरा हृदय की अनुक्रमणिका है। व्यक्ति का परिचय तो चेहरा देता है लेकिन आपके तो चरण भी परिचय देते हैं आपके/चरणों के नखों से निकलने वाली कांति पापरूपी अंधकार को नष्ट कर देती है।

हे प्रभु ! आपके पद-रज में लगे हुये परमाणु सर्वोषधि का काम करते हैं, रोगों का निवारण कर देते हैं।

हे प्रभु ! आटे में गुड़ मिल जाता है तो आटा मधुर हो जाता है किन्तु आपके चरण के परमाणु पद-रज के परमाणु, जिस धरा-धाम पर मिल जाते हैं वह धरा-धाम सदा-सदा के लिये तपोवन, तीर्थ क्षेत्र कहलाने लगता है।

हे जिनेन्द्र देव ! आप जब इस धरती पर पांव रखने वाले थे उससे पहले ही यह धरती रत्नमयी हो गयी थी, आप जिस कमल पर पांव रखने वाले थे वह कमल सोने का हो गया था। आप मेरे हृदय में विराजमान होईये और मेरे हृदय को रत्नत्रयी कर दीजिये, आप मेरे हृदय में विराजमान होईये और मेरे हृदय को सोने जैसा शुद्ध कर दीजिये।

हे प्रभु ! आप निर्दोष हैं, निर्द्वन्द हैं, निर्मल हैं, निर्भय हैं, निर्मद हैं, निर्माया हैं, निर्मान हैं।

हे प्रभु ! आपके गुणों का सुमरण करने वाले का मरण सु-मरण हो जाता है, आपको स्मरण करने वाले शरण को प्राप्त हो जाते हैं तरण और तारण हो जाते हैं।

हे प्रभु ! आपके यह चरण मोक्ष-मार्ग दर्शाते हैं। आपके यह हाथ कृत-कृत्यता प्रकट करते हैं। आपका यह औदारिक शरीर परम शांति दशा को प्रकट करता है।

हे प्रभु ! आत्म के प्रदेश-प्रदेश को पावन करने वाले, हे परम पिता ! आपकी छवि निहार-निहारकर के मैं अपने आपको कृत-कृत्य मान रहा हूँ। जबसे आपको देखा है सम्यक् दर्शन पा लिया, जब से आपको जाना है सम्यक् ज्ञान को पा लिया, जब से आपके पथ पर चला हूँ, सम्यक् चारित्र को पा लिया।

हे प्रभु ! आपकी छवि जीवंत शास्त्र है, आपकी छवि ही समयसार है, आपकी छवि ही प्रवचनसार है, आपकी छवि ही मूलाचार है, विद्वान जो शास्त्र में लिखता है। शिल्पिकार वही मूर्ति में लिखता है। शिल्पी प्रतिमा में लिखता है, विद्वान शास्त्र में लिखता है किन्तु आपने अपने जीवन में लखा है। यदि आप अपने जीवन में न लखते तो शिल्पी प्रतिमा में कैसे लिखता ? विद्वान शास्त्र में कैसे लिखता ?

हे प्रभु ! आपने तो जीवन में लखा है विद्वान ने तो लिखा है, शिल्पी ने तराशा है। हे देवाधिदेव! शिल्पी ने पाषाण तराशा है, लेकिन आपने अपनी चेतना को तराशा है, आत्मा को तराशा है।

हे प्रभु ! आपके यह दोनों नयन लालिमा नहीं लिये सो बता रहे हैं कि आप में क्रोध नहीं है। आपके यह नयन कटाक्ष नहीं छोड़ते, आपने विकारों को जीत लिया है। आपके चेहरे पर विषाद की रेखायें नहीं हैं, शोक नहीं, क्योंकि आपने शोक को जीत लिया है आप अशोक बन चुके हैं, आप वीतरागी हैं तो विषाद कैसा ? आप तो परम प्रसन्नता का प्रसाद बाटते हैं तो विषाद कैसा ?

हे प्रभु ! संसार के समस्त प्राणी आभूषण पहनते हैं तभी सुंदर लगते हैं। किंतु आप निराभूषण, विगतदूषण, साम्यभाव वाले हो। फिर भी आप तीन लोक के अलंकार हो, आभूषण हो, आप वस्त्राभूषण से रहित हो।

हे प्रभु ! आपके तन पर कोई वस्त्र नहीं है क्योंकि –

**जो स्वभाव से रहें असुन्दर, रखते तन पर भूषण हैं।**
**बैरी मुझको जीत न लेवें, रखते शस्त्र प्रदूषण हैं।।**
**लगते हो सर्वांग मनोहर, हो अजेय शक्ति वाले।**
**अस्त्र-शस्त्र वस्त्राभूषण भी, वीतराग ने तज डाले।।**

हे प्रभु ! आपने अस्त्र-शस्त्र, वस्त्र तीनों का त्याग कर दिया है। जब कोई आपका शत्रु नहीं है तो अस्त्र-शस्त्र किसके लिये ? जब तन में विकार नहीं है, तो वस्त्र किसलिये ? जो सहज सुंदर है तो अलंकार किसलिये हैं ? आभूषण पहनना भी तो पराधीनता है। क्यों अलंकार पहनना ? यह सुंदरता उधार क्यों ली है ? क्या सहज सौंदर्य शोभा नहीं देता जो आभूषणों से उधार लिया हैं।

हे प्रभु ! आप आभूषण रहित हैं। आपका कोई बैरी नहीं है इसलिये आपके पास अस्त्र-शस्त्र नहीं हैं। आप हिंस-हिंसक हिंसादि भाव से परे हैं इसलिए तो शस्त्र नहीं रखते हो। प्रभु आप सदा भोजन नहीं करते हो फिर भी आप तृप्त हैं।

हे प्रभु ! आपके नख और केश नहीं बढ़ते हैं। कर्म रूपी मल क्षय हो जाने से आपके पास नख और केश का बढ़ना भी बंद हो गया है।

**प्रिय आत्मन् !**

चंदन के समान परम सुगंधित देह को धारण करने वाले आप हो लेकिन आचार्य कहते हैं यह नख और केश रूपी रज मल का स्पर्श भी आप नहीं करते हैं। परमौदारिक शरीर के धारी जिनदेव के नख और केश नहीं बढ़ते हैं। किन्तु हम बढ़ाते हैं जबकि हमें नहीं बढ़ाना चाहिए।

**प्रिय आत्मन् !**

भगवान जानते हैं यह नख तो शरीर का मल है। इसलिये मल का श्रृंगार कैसा? आज के जीव नख को बढ़ा कर रखते हैं। मैं कल चौके में गया। मैने देखा एक सज्जन के नख बढ़े हुए थे। ओहो! मैंने कहा रे जीव! प्रभु के नख और केश बढ़ते नहीं है। और तू मल को आभूषण मान रखे हुये है। ओहो! ज्ञानी जीव बात मान गया उसने बढ़े हुए नख उतार दिये। समझ गया कि-मल से क्या शोभा बनेगी? ज्ञानियो! चंदन के समान दिव्य गंध को धारण करने वाले कोटि-कोटि सूर्य से अधिक कांतिमान आपका यह परमौदारिक देह जो राग और मोह से अंधे हैं उनको भी नई रोशनी देने वाला यह आभामण्डल। जिनके मन कलंकित हैं उनके मन को पवित्र करने वाली आपकी यह दिव्य-देशना। शरद चंद्रमा की चाँदनी के समान यह मुखाकृति सदा जयवंत रहे। हे प्रभु! आपके चरणों में, मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ। आपकी स्तुति आस्रव को रोक देती है, आपकी भक्ति कर्म बंध को रोक देती है, आपके दर्शन से नयन प्रफुल्लित हो उठते हैं।

हे प्रभु! आपकी प्रतिमा ने अनंतों की प्रतिभा जगायी है। हे प्रभु ! आप भले ही सिद्धालय में हो लेकिन आपकी प्रतिमा का दर्शन करके भक्तों की प्रतिभायें जाग जाती है। और आप की तरह भगवान बनने का मार्ग प्रशस्त कर देती हैं।

हे प्रभु ! समयसार सुधारस वाहिनी ! आपकी यह छवि समयसार रूपी अमृत धारा को बहाने वाली नदी है। यह आपकी मूरत है या शुद्धात्म तरंगिणी हैं। यह समयसार की रस धार को बहाने वाली आपकी छवि ही नदी के तुल्य है। यह छवि ही समयसार रूपी सुधाकर की सुन्दर चाँदनी है तथा आत्मा के सार को बताने वाली चैतन्य चाँदनी आपकी छवि है।

हे प्रभु! आपकी मुद्रा समयसार रूपी कल्पवृक्ष है। हे जिनेन्द्र ! आपकी प्रतिमा सदा जयवंत रहे, आपकी प्रतिभा आप हैं, आप आपकी प्रतिमा हैं। ऐसा लगता है जब मैं आपकी प्रतिमा को देखता हूँ तो यही लगता है -

**तेरी प्रतिमा इतनी सुन्दर, तू कितना सुन्दर होगा।**

हे प्रभु! जब आपकी छवि ऐसी है तो साक्षात आप कैसे होगें? क्योंकि यह तो सत्य है कि प्रतिबिम्ब प्रतिबिम्ब हुआ करता है और यथार्थ-यथार्थ होता है। जल का प्रतिबिम्ब यदि दर्पण में झलके तो दर्पण शीतल नहीं होता है। किन्तु आप जहाँ विराजमान होते हैं वहाँ शीतलता-शीतलता

छा जाती है। हे प्रभु! मेरी आन्तरिक श्रद्धा आपकी प्रतिमा में आपका दर्शन करती है। तथा प्रतिमा को प्रतिबिम्ब नहीं जिनबिम्ब के रूप में स्वीकार कर हृदयंगम करती है।

हे प्रभु ! जल की गिरी हुयी बूंदें जैसे गरम तबा को शांत कर देती हैं, तथा धरती की प्यास बुझा देती हैं वैसे ही आपकी दिव्य-ध्वनि मेरी अन्तस् आत्मा की प्यास बुझा देती है। प्रभु! आप जयवंत हों। जैसे खेवटिया नौका में बैठे हुये व्यक्तियों को पार लगा देता है वैसे हे प्रभु! आप संसार सागर में डूबते प्राणियों को पार लगा देते हैं। आप सदा जयवंत हों। धन्य हैं आप कितना हितकारी उपदेश देते हैं, आपने पूरे संसार को पार लगा दिया है भवसागर से तिरा दिया है आप सदा जयवंत हों।

हे प्रभु ! मैं आपकी शरण में आता हूँ। शरण में आने का कारण क्या है? आपने क्या किया हैं? आपमें क्या है? क्या नहीं है? आचार्य कहते हैं -

**क्रोधस्त्वया यदि विभो! प्रथमं निरस्तो,**
**ध्वस्तास्तदा वद कथं किल कर्म चौराः।**
**प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिरापि लोके,**
**नील द्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी।।13।। क.मं.**

अहो ज्ञानियो ! हे प्रभु ! आपने पहले क्रोध को जला दिया है तो आप यह बताओ आपने कर्म चोरों को कैसे भगाया? आचार्य कहते हैं भो ज्ञानी! जो कार्य अग्नि से होता है परन्तु यह मत समझ कि अग्नि से ही होता है जब अत्यधिक बर्फ पड़ती है तो भी वृक्ष जल जाते हैं, सूख जाते हैं इसी तरह से आत्मा का शीतल परिणाम भी कर्म रूपी शत्रुओं को शांत कर देता है। यदि ढंडे पानी की सिकाई से काम चल रहा हो तो अग्नि से सेकने की आवश्यकता क्या है? हे नाथ! आप समोशरण में विराजमान हैं। तीन लोक का वैभव एकत्रित है लेकिन परिग्रही नहीं है। द्वार पर एक सौ आठ निधि रखी हैं आप स्वयं स्वर्ण मणी सिंहासन पर विराजमान है फिर भी परिग्रही नहीं हैं क्योंकि! वस्तु का होना मात्र परिग्रह नहीं हैं, वस्तु से मोह का होना परिग्रह है।

यदि मोह नहीं है तो वस्तु होने पर भी दोष नही है। और मोह है तो वस्तु नहीं होने पर भी दोष है। अहो ज्ञानी ! एक व्यक्ति अपनी पत्नि से रूठकर के जंगल चला गया, परन्तु वह स्त्री त्यागी नहीं माना जायेगा। मूर्छा को जिन्होंने नष्ट कर दिया है, ममत्व नहीं है वे अपरिग्रही हैं। जब मंदिर में बैठो तो घर का त्याग कर देना, लेकिन जब घर में बैठो तो मंदिर का त्याग मत करना, जब मंदिर

आओ तो घर वालों को याद मत करना। लेकिन जब घर पहुँच जाओ तो मंदिर के भगवान को भूल मत जाना। ध्यान देना जब गुरुजी के पास आ जाओ तो घर वालो को याद मत करना लेकिन जब घर पहुँच जाओ तो गुरुजी को भूल नहीं जाना। किसको याद करने से कर्म बढ़ते है और किसको याद करने से कर्म घटते है? देव शास्त्र, गुरु को याद करने से कर्म घटते हैं, निर्जरा होती है और रागी, द्वेषी, मोही जीवों को याद करने से कर्म बढ़ते हैं। तीन लोक का वैभव सामने है, पर मूर्छा नहीं हैं, आशक्ति नहीं हैं, इस स्थिति पर पहुँचों मूर्छा न रहे, ममत्व न रहे, ध्यान देना-एक भिखारी जिसके पास कुछ भी नहीं है। लेकिन इच्छा करता है काश! मेरा भी इतना बड़ा मकान होता। ओहो! उसकी इच्छा होती है किन्तु उसके पास नहीं है। फिर भी भिखारी को उतना ही पाप लग रहा है। लेकिन एक व्यक्ति सोच रहा हैं कि मैं कब इस महल को छोड़कर दिगम्बर मुनि बन जाऊँ। जिसके पास है वह होने पर भी उतना पाप अर्जन नहीं कर रहा जिसके पास नहीं है वह सोच रहा है कब मिल जाये ? यह सोचकर पाप अर्जन कर रहा हैं। जिसके पास है वह सोच रहा है कब छूटे-छूटे लेकिन जिसके पास नहीं है वह कल्पना कर रहा, ऐसा सुंदर भवन मेरा भी होता, ऐसी दुकान मेरी भी होती, जिसके पास नहीं है वह कर्म बंध कर रहा है और जिसके पास है वह होने के बाद भी कर्म बंध नहीं कर रहा है। एक के अंदर पकड़ने की भावना है एक के अन्दर छोड़ने की भावना है।

ज्ञानी और अज्ञानी जीवों में यही तो अन्तर है। अज्ञानी जीव पकड़ने की भावना रखता है और ज्ञानी जीव छोड़ने की भावना रखता है।

**प्रिय आत्मन् !**

वस्तु की उपलब्धि होने के बाद भी परिणतियाँ कहाँ हैं? ओहो ज्ञानी! एक योगी आहार ले रहा है सोच रहा यह वस्तु मुझे न लेना पड़ती हे प्रभु! यह हाथ मेरे बाईस घंटे ऊपर रहते हैं अभी मुझे अपने हाथ नीचे करना पड़ रहे। प्रभु! ऐसा दिन कब आयेगा जब मुझे अपने हाथ किसी के सामने न फैलाना पड़े ? ओहो ज्ञानी! वह कर्म निर्जरा कर रहा है, आहार करने पर भी। लेकिन एक कहता है आहा! महाराज क्या माल खा रहे हैं। ओहो ज्ञानी! जो खा रहा है वह क्या विचार कर रहा है और जो देख रहा है वह क्या विचार कर रहा है?

अरे ! इतना अच्छा आहार करने मिलता है मैं भी मुनि बन जाऊँ और वह महाराज के पास गया। बेचारे ने देखा बढ़ियाँ व्यवस्था है। किन्तु महाराज अपने ध्यान में बैठे थे। वह जाकर के महाराज के पास बैठ गया उसने सोचा कि कल महाराज जायेंगें चौके में तो मैं भी वही आहार

करूगाँ। लेकिन महाराज आहार को नहीं गये, जब नहीं गये तो उसने महाराज का पिच्छी कमण्डलु उठाया और चल दिया। तो गाँव वालों ने समझा एक नये मुनिराज आये हैं। तो बढ़िया आहार कराया आकर के महाराज के पास बैठ गया और पिच्छी कमण्डलु ज्यों का त्यों महाराज के पास रख दिया। अब उसने सोचा देखो यह भी महाराज ऐसे ही रहते आज हमें जितना अच्छा भोजन मिला अब तो मैं ऐसा ही रहूँगा। साधु संगती से उसकी परिणति में सुधार आ गया मुनिराज जानते थे इसकी होनहार अच्छी है। और जब उनका ध्यान टूटा तो उनने फिर संबोधन दिया बेटे तुमने जिस मुद्रा को धारण किया यह मुद्रा तेरी नहीं है यह तो भगवान महावीर की मुद्रा है, तीर्थंकर की मुद्रा है। इस मुद्रा को एक बार धारण करने के बाद बदला नहीं जाता है। खेल-खेल मैं धर्म हो सकता हैं लेकिन धर्म पालन में खेल नहीं हो सकता है।

**प्रिय आत्मन् !**

राजा चाहता था ब्रह्मगुलाल को दण्ड दिया जाये। लेकिन बिना अपराध के दण्ड कैसे दूँ। अतः राजा ने कहा – हे ब्रह्मगुलाल – तू एक बार दिगम्बर मुनि का रूप बना ब्रह्मगुलाल जानता था कि मुनि बनने के बाद दूसरा रूप धारण नहीं किया जाता है। ब्रह्मगुलाल छः महीने का समय लेता है और मुनि बनने की साधना करता है और छठवें महीने में सीधे राजसभा में आता है राजा देखता है! कहता – महासाधु! महासाधु!! महासाधु!!! दिगम्बराः।

**इमं गिग्गंथं, पवयणं, अणुत्तरं, केवलियं,**

**पडिपुण्णं, णेगाइयं, सामाइयं, संसुद्धं।**

ओहो ! यह निर्ग्रंथ प्रवचन आ रहा है, यह नमोस्तु शासन आ रहा है, यह निर्ग्रंथ मुद्रा आ रही है, यह तीर्थंकर मुद्रा आ रही है, यह केवली द्वारा प्रतिपादित मार्ग है। इससे श्रेष्ठ न कोई हुआ हैं, न होगा, वह ब्रह्मगुलाल एक बार खेल-खेल में मुनि मुद्रा को धारण करता है फिर दुबारा गृहस्थ नहीं बनता है।

**प्रिय आत्मन् !**

खेल-खेल में धर्म हो सकता है लेकिन धर्म के साथ खेल नहीं हो सकता है। इसलिये यह मार्ग चुनना आसान नहीं है

**प्रिय आत्मन् !**

शरीर की शक्ति से उपवास नहीं होता है। उपवास होता है आत्मा की शक्ति से। मन की दृढ़ता से, उपवास होता है। प्रत्येक द्रव्य का परिणमन अपने-अपने अनुसार होता है तेरे अनुसार तो सिर का बाल भी नहीं मुड़ने वाला है। भो ज्ञानी ! प्रत्येक द्रव्य का परिणमन स्वतंत्र-स्वतंत्र है तू चाहे कि उसको बदल दे तो बदल नहीं पायेगा। इसलिये अच्छा है तू अपनी बुद्धि को बदल ले। यदि बदलना हैं तो मात्र अपनी बुद्धि बदल लेना। तुम लाख चाहो उसको बदल दो, तो नहीं बदल पाओगे। जिनके अंदर कोई भय नहीं है। चिंता नहीं है क्यों –

**उत्तमा स्वात्म चिंता, देह चिंता च मध्यमा।**

**अधमा काम चिंता स्यात्, पर चिंता धमाधमा।।**

यदि तुझे चिंता भी करना हो तो उत्तम चिंता करना। आत्म कल्याण की कब मेरा कल्याण हो जाये ? कैसे मेरा कल्याण हो जाये ? यह उत्तम चिंता कहलाती है। शरीर की चिंता, शरीर का ख्याल करना यह माध्यम चिंता है। कार्य की चिंता जघन्य चिंता और परायी चिंता जघन्य चिंता है। दूसरे की चिंता करना अधम-अधम चिंता है। इस तरह से जिन्होंने इन सब दोषों को जला दिया है।

समाधि का साधन न कोई संस्तर है, न कोई पाषाण है, न कोई तृण है, न कोई भूमि हैं, न कोई पाटा है, न कोई चटाई है, न कोई आसन है, न कोई सिंहासन है। समाधि पाटे पर बैठकर नहीं होती है, समाधि जमीन पर बैठकर नहीं होती है, समाधि तृण पर बैठकर नहीं होती हैं, समाधि आत्मा में बैठकर होती है। कैसी आत्मा हो ! जहाँ कषायें और इंद्रियाँ हल-चल नहीं मचाती हैं। वहाँ समाधि होती हैं। इसलिये समाधि का आसन काष्ठ आसन नहीं हैं। लोग विचार करते हैं कि समाधि का आसन कैसा होना चाहिये स्थान कैसा होना चाहिये ?

**प्रिय आत्मन् !**

कषायें शांत होना चाहिये, इन्द्रियाँ शांत होना चाहिये। जिस क्षण तेरी कषायें शांत हैं उस क्षण समाधि चल रही है। और जिस क्षण कषायें उग्र हैं उस समय असमाधि चल रही है। प्रति समय समाधि का है। प्रति समय असमाधि का है। ध्यान देना-प्रतिपल को अंतिम पल मानों। एक-एक पल को अंतिम पल मानों। यह मेरा अंतिम पल है। अगली श्वास किसने देखी है ?

**प्रिय आत्मन् !**

इस श्वास को पहले धन्य करो। फिर अग्रिम श्वासों पर विश्वास करो। जो विषय रूपी कषायों से रहित है, कषाय और इंद्रियों को जीतना सबसे महान उपलब्धि है। जिन्होंने इंद्रियों को जीता है वे समाधि के पात्र हैं। इंद्रियों में काम इंद्रिय और भोगेन्द्रिय दो प्रकार हैं। स्पर्शन और रसना काम इंद्रिय कहलाती है, घ्राण, चक्षु, कर्ण भोग इंद्रिय कहलाती है। सबसे पहले काम और भोग दोनों इंद्रिय को जीतना चाहिए।

**प्रिय आत्मन् !**

जिसने चार अंगुल की रसना इंद्रिय को जीत लिया और जिसने चार अंगुल की स्पर्शन इंद्रिय को जीत लिया, वह जितेन्द्रिय पुरुष अनंत चतुष्टय का धारी बन जाता है। मूलाचार में आचार्य भगवन लिखते हैं – यदि तू आठ अंगुल को जीत लेगा तो अष्टम भूमि पर पहुँच जायेगा। ज्ञानी! मात्र स्पर्शन, रसना इंद्रिय को जीत लिया तो अष्टम भूमि पर निवास करने वाला बन जायेगा। कितने भी अर्घ चढ़ा लेना अष्टम भूमि पर नहीं पहुँचेगा, जिस दिन स्पर्शन, रसना दो इंद्रिय को जीत लेगा उसी दिन तू अष्टम भूमि का पात्र बन सकता है।

****

# अमितगति का शुभाशीर्वाद

**न संस्तरो भद्र! समाधिसाधनं, न लोकपूजा न च संघ मेलनम्।**
**यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवानिशं, विमुच्य सर्वामपि बाह्यवासनाम्॥ 23॥**

**भावार्थ** – हे भद्र परिणामी आत्मन्! समाधि का साधन निश्चय से न संस्तर है, न लोक पूजा है और न संघ समूह है, इसलिए सभी बाह्य वासनाओं को छोड़कर अपने अध्यात्म में निरन्तर संलग्न रहो।

**न सन्ति बाह्या मम केचनार्थाः, भवामि तेषां न कदाचनाहम्।**
**इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं, स्वस्थः सदा त्वं भव भद्र! मुक्त्यै॥ 24॥**

**भावार्थ** – कोई भी बाह्य पदार्थ मेरा नहीं है और न मैं कभी उनका हुआ हूँ ऐसा दृढ़ निश्चय कर हे भद्र पुरुष! बाह्य वस्तुओं को छोड़कर तुम मुक्ति प्राप्ति के लिये सदा अपनी आत्मा में स्थिर रहो।

**प्रिय आत्मन् !**

सामायिक पाठ क्या? समता रस का रसास्वादन। समता सरिता में स्नान करते हुये समत्व परिणाम, आत्म शांति, आत्मीय शीतलता की परम अनुभूति प्राप्त करते हुये हम सभी सामायिक पाठ के तेईसवे छंद में प्रवेश करते हैं।

किसी भी कार्य की सिद्धि में साधन आवश्यक होता है। साधन की परिभाषा है।

**उत्पत्ति निमित्तं साधनं**

कार्य की उत्पत्ति में जो निमित्त है वह साधन कहलाता है। कार्य की उत्पत्ति में दो प्रकार निमित्त होते हैं।

1. बहिरंग निमित्त
2. अंतरंग निमित्त

बहिरंग निमित्त उत्तर निमित्त कहलाता है। अंतरंग निमित्त मूल निमित्त कहलाता है। बहिरंग निमित्त को निमित्त ही कहते हैं। अंतरंग निमित्त को उपादान भी कहते हैं। समाधि हमारा कार्य है उस कार्य की सिद्धि का कारण क्या है? समाधि का तात्पर्य मृत्यु नहीं है, समाधि का तात्पर्य है मोह और क्षोभ रहित परिणाम।

**मोहक्खोह विहिणो, परिणामो अप्पणो हु समो।**

आत्मा का मोह क्षोभ रहित परिणाम, राग-द्वेष कहो, मोह-क्षोभ कहो एकार्थवाची शब्द है। मोह से तात्पर्य दर्शन मोह, क्षोभ से तात्पर्य चारित्र मोह, दर्शन मोह रहित परिणाम और चारित्र मोह रहित परिणाम का नाम सम है। ऐसे सम भाव में ठहरने का नाम समाधि है। समाधि एक पल की क्रिया नहीं हैं। समाधि साधना है। समाधि प्रतिपल की जाती है। जब हम पल-पल को अंतिम पल मान के चलते हैं तो पल-पल समाधि होना शुरू हो जाती है। पल-पल को सफल करने के लिये प्रतिपल को अंतिम पल माना जाये तो पल-पल सफल होना शुरू हो जाता है। हम विफल कहाँ है ? हमारा पल निष्फल क्यों जा रहा है? क्योंकि हमने प्रतिपल को अंतिम पल नहीं माना है।

**प्रिय आत्मन् !**

लौकिक जन से मिलने वाली ख्याति, लाभ, पूजा, प्रतिष्ठा, यह समाधि का साधन नहीं है। जन मानस तुम्हें पूजा दे देगा, प्रतिष्ठा दे देगा, तस्वीर, चित्र, ख्याति, बेनर, पोस्टर, पत्रिका, नाम यह सब हो सकता है लेकिन यह लोक पूजा समाधि का साधन नहीं बन सकती है। भो ज्ञानी! इसको जरूर देखें - जो जीव नरक में पड़ें हैं उन जीवों की मूर्तियाँ बनकर पूजा हो रही है। उन जीवों के मंदिर बने पड़े हैं। अब बताओ पूजा करके या कराके क्या नरक जाना है ? ज्ञानी! ध्यान देना अपनी पूजा के लिये, प्रतिष्ठा के लिये, बहिरंग यात्रा में हम इतने तल्लीन हो जाते हैं कि आत्मा की अंतर निधि को भूल जाते हैं। बाह्य वैभव का आकर्षण हमारे अंतरंग निधि को भुला देता है आचार्य अमितगति लिखते हैं -

**वरं संयततः निंदा, शील संयम साधनी।**

**न तु असंयततः, पूजा शील संयम नाशनी॥**

यदि संघ के साधु तेरी निंदा करें तो बहुत खुशी की बात है। यदि संयमी व्यक्ति तेरी निंदा भी करें तो भी श्रेष्ठ है क्योंकि संयमी पुरुष के द्वारा की गयी निंदा तेरे शील और संयम को साधेगी,

तेरा संयम ही बढ़ायेगी किन्तु असंयतों के द्वारा की गयी पूजा भी तेरे शील और संयम को नाश करेगी। इसलिये बताया गया है कि समाधि का साधन पूजा नहीं है, जिन पूजा तो है, प्रभु पूजा तो है, गुरु पूजा तो है लोक पूजा से तात्पर्य है लोक में मिलने वाली मान्यता और लोक मान्यता किस गुण पर मिल जाये कुछ पता नहीं हैं सच बात है लोक में मिलने वाली मान्यता हो सकता तुम्हारे रूप के लोग दीवाने बन जायें, तुम्हारे गीतों के दीवाने बन जायें, हो सकता तुम्हारे कविताओं के लोग दीवाने बन जायें और तुम्हें बहुत बड़ी मान्यता दे दें। लोक पूजा, लोक मान्यता, न जाने कब किस गुण के द्वारा मिल जाये यशःकीर्ति नाम कर्म उदय होने पर कभी भी, कहीं भी लोक मान्यता मिल सकती है। लेकिन वह लोक मान्यता तुम्हें समाधि का साधन नहीं बन सकती इसलिये देखो मुझे पूजा करना है, पूजा कराना नहीं, पूजा करने से कर्म की निर्जरा होती है, कराने से नहीं। प्रतिष्ठा करने से निर्जरा होती है, प्रतिष्ठा कराने से नहीं। लोक में यश पाने की भावना बनी रहती है जीवों में, कहाँ से यश मिले।

**प्रिय आत्मन् !**

यश बाहर से नहीं मिलता है। यश मिलता है यश नामकर्म की प्रकृति के उदय से लौकिक कार्यों को किये बिना भी लोक पूजा नहीं मिलती है और लौकिक कार्यों को करना हमारे यहाँ वर्जित है।

**साधूनां अलौकिकः वृत्ति।**

साधुओं की वृत्ति अलौकिक होती है। जहाँ संसार पीठ किये है साधु उस ओर मुँह किये हैं। और जहाँ साधु पीठ किये हैं संसार उस ओर मुख किये हैं दोनों की वृत्तियाँ बिल्कुल भिन्न हैं इसलिये लोक पूजा लौकिक कार्यों से मिलेगी और लौकिक कार्यों में पड़ने से समाधि नहीं होती है। लोकाचार नहीं, लोकोपचार नहीं, साधुओं की साधना अलौकिक, पारलौकिक होती है। न जाने साधु किस लोक में जीते हैं? उनकी आँखें आगम की होती है। आगम की आँखों से निहारते हैं। मैंने अनंतों बार जन्म लिया है, अनंतों बार मरण किया है, अनंतों बार माँ का दूध पिया है। यह आगम की आँखे बोलती हैं। कौन आये हैं? भव्य जीव आये हैं। मात्र इतना ही परिचय पर्याप्त है।

**ध्यान देना लोक पूजा में साधुओं को श्रावक बहा ले जाते हैं। लोक प्रतिष्ठा में तुलना करते हैं एक साधु की दूसरे साधु से वस्तुतः साधु की योग्यता का प्रमाण ना कोई मण्डप है, ना कोई प्रवचन है, ना कोई सभा है, कि मेरी सभा में कितने व्यक्ति आये यह साधु की योग्यता का मापयंत्र नहीं है।**

अरे! साधु की साधना का मापदण्ड तो उसके रत्नत्रय की निर्मलता है। भावों की विशुद्धि कितनी है। ज्ञानी! चन्द्रगिरि पर्वत पर चन्द्रगुप्त और भद्रबाहु दो ही तो विराजे हैं। कौन आ रहा है उनके पास? कौन जा रहा उनके पास? अंतिम श्रुत केवली विराजे हैं पहले वन खण्ड में अकेले मुनिराज विराजे हैं कौन आ रहा? कौन जा रहा? लोक पूजा से दूर। भाव श्रमण को अपनी चर्या और अपनी क्रिया करने में ही आनंद आता है।

मैंने सब कुछ छोड़ा, मात्र आत्मा को पाने के लिये। और आज लोक प्रतिष्ठा के पीछे आत्मा को छोड़ दूँ जितने समय तक मैं पर व्यक्ति से चर्चा करता हूँ उतने समय तक में अपनी आत्मा का त्याग करता हूँ। जब तक आत्मा का त्याग नहीं करोगे, तब तक तुम दूसरे को ना समझा पाओगे। ध्यान देना यह समाधि के साधक नहीं बाधक तत्त्व हैं। इसलिये कहा जाता है कि इनको भी छोड़ दो। इसलिये समाधि के पूर्व में आचार्य, आचार्य पद का भी त्याग करता है और संघ का भी त्याग करता है। संघ का सम्मेलन समाधि का साधन नहीं है। कितना बड़ा संघ है कितना विशाल संघ है? भो ज्ञानी! कितना भी बड़ा परिवार रहे। **परिवार से कल्याण नहीं होता है, परिणाम से कल्याण होता है।**

यदि बड़े परिवार से कल्याण होता तो कहो लक्ष्मण जी का कितना बड़ा परिवार? सुभौम चक्रवर्ती का कितना बड़ा परिवार जिसकी छियानवें हजार रानियाँ हो कितना बड़ा परिवार? ओहो ज्ञानियो! यदि संघ सम्मेलन से ही समाधि होती तो क्या बारह हजार साधुओं के संघ में बारह हजार की समाधि होती है। समाधि पर के मिलन से नहीं होती है। समाधि आत्मा के मिलन से होती है। मेरी आत्मा की विशुद्ध परिणति समाधि है। समाधि धर्म ध्यान का नाम है। समाधि समता भाव का नाम है, हम संघ में हैं साधना के लिये हैं, संघ साधन है लेकिन वस्तुतः समाधि तो तुम्हें स्वयं ही करना पड़ेगी।

अमृत सागर की समाधि मैं नहीं करा सकता, मैं निमित्त बन सकता हूँ। लेकिन जब उनके स्वयं के परिणाम निर्मल होंगे तभी समाधि होगी। और समाधि अपनी प्रतिदिन देखना चाहिये। दिन में तीन बार समाधि देखना चाहिये। सामायिक का समय समाधि का समय है। प्रतिक्रमण का समय समाधि का समय है, स्वाध्याय का समय समाधि का समय है। समाधि ऐसे नहीं होती। होती है जो समाधि करता है उत्कृष्ट समाधि करने वाला दो-तीन भव के अंदर मोक्ष चला जाता है, जघन्य समाधि करने वाला सात-आठ भव के अंदर मोक्ष चला जाता है। समाधि जैसी कोई चीज है ही

नहीं। मैं यही सोचता हूँ कल की समाधि का मुझे पता नहीं, आज की समाधि कैसी हुयी ? वर्तमान के परिणाम सुधरे हैं सम्हले हैं, तो भविष्य के परिणाम सुधरे सम्हले रहेंगे। **इसलिये वर्तमान ज्ञान पर्याय को सम्हालना ही समाधि है। द्रव्य जिस समय जैसा परिणमता है, वैसा कहलाता है, धर्म से परिणत आत्मा ही धर्मात्मा है।**

लोहा जिस समय गरम है उस समय ऊष्ण कहलाता है। और जिस समय ठंडा है उस समय ठंडा लोहा है। आत्मा तुम हर समय हो, लोहा हर समय है, लेकिन लोहा ठंडा और गरम हर समय है क्या ? नहीं है। जिस समय अग्नि में पड़ा है अग्नि उसमें प्रवेश कर गयी है ज्ञानी! लोहा अग्नि में प्रवेश किया है अग्नि लोहे में प्रवेश कर गयी। उसी तरह से तुम मंदिर में प्रवेश करो मंदिर तुम में प्रवेश कर जायेगा, तुम धर्मायतन में प्रवेश करो, धर्मायतन तुम में प्रवेश कर जाये, हम ज्ञान शाला में प्रवेश करें, ज्ञान मुझमें प्रवेश कर जाये, तभी भाव परिणमन कहलायेगा। लोहा-लोहा है। लेकिन लोहा गरम तभी है जबकि अग्नि उसमें प्रविष्ट है अग्नि उसमें से निकल गयी लोहा ठंडा है। उसी तरह से जिस काल में जिस समय में, जिस सेकेंड में, मैं धर्म परिणाम कर रहा हूँ उसी समय मैं धर्मात्मा हूँ। रत्नत्रय का पालन कर रहा हूँ उसी समय साधु हूँ। शेष समय साधु नहीं हूँ। यह यथार्थ तत्व बोध साथ में रखना यह मत समझ लेना कि हम जैन कुल में पैदा हो गये तो सदा जैन हो गये। नहीं जिस समय तू कषायों इन्द्रियों को जीतता है अष्ट मूलगुणों का पालन करता है उस समय तो तू जैन है जिस समय अष्ट मूलगुण पालन नहीं करता है। जिनेन्द्र की उपासना नहीं करता है, उस समय जैन नहीं है।

भाव निक्षेप में जियो एवंभूत नय में जियो समभिरूढ़ नय से तू जैन है लेकिन एवंभूत नय यहाँ लगाओ वर्तमान अवस्था निहारो! ओहो! आपको मालूम है श्वेताम्बर मत प्रवर्तन कैसे हो गया ? मात्र भद्रबाहु के गुरु के जिन शिष्यों ने गुरु की बात को स्वीकार नहीं किया और श्रेष्ठियों की बात स्वीकार करके ठहर गये लोक पूजा में पड़ गये। एक नये मत का जन्म हो गया। अपने श्रमण पद से च्युत हो गये जिनकल्पी जिनमुद्रा से च्युत हो गये। अतः लोक पूजा समाधि का साधन नहीं हो सकती। हम लोक पूजा में कितना समय दें यह भी ध्यान रखो समाज को दिशा देना है, दिशा बोध देना है, किन्तु अपनी दशा और दिशा को ध्यान में रखके देना है। ऐसा न हो कि सामायिक का समय श्रावकों के लिये दे दो, प्रतिक्रमण का समय श्रावकों के लिये दे दो, नहीं। एक-एक क्षण की कीमत करना सीखो। अच्छे कान खोलकर सुनो, **अन्न का कण और संत का क्षण कभी बर्बाद नहीं करना चाहिये।**

यदि तुम अन्न का कण बर्बाद करते हो तो आगे चल के अंतराय कर्म का बंध होता है। तो भोजन नहीं मिलेगा और संत का क्षण बर्बाद करते हो तो चारित्र मोहनीय कर्म का बंध होगा तो दीक्षा नहीं मिलेगी। इसलिये दोनों में सावधानी आवश्यक है लौकिक पूजा, लोक संगति के विषय आचार्य कहते हैं –

**जनेभ्यो वाक्ततः स्पन्दो, मनसश्चित्तविभ्रमः।**
**भविन्त तस्मात्संसर्गं, जनैर्योगी ततस्त्यजेत्॥71।। स.तं.**

समाधि तंत्र में आचार्य पूज्यपाद स्वामी लिखते हैं – सामान्यजन से बातचीत करने से मन चंचल हो जाता है, चित्त विभ्रम में पड़ जाता है फिर संसर्ग होता है और –

**संसर्ग हानि सकलार्थ हानि**

संसर्ग होने से हानियाँ प्रारम्भ हो जाती है। इसलिये हे योगीराज जल को गरम करने वाला तो पुरुष चाहिये है लेकिन ठंडा करने वाला कोई नहीं चाहिये है। तू अपना स्वभाव कैसा बना ले। जल को गरम करने के लिये अग्नि पर रखना पड़ेगा लेकिन जल को ठंडा करने के लिये जहाँ पर रखा था वहीं रख दे अपने आप ठंडा हो जायेगा। उसी तरह अपने मन को जल की तरह बना ले कोई तुझे कितना भी विकल्पों की अग्नि में डाल दे लेकिन तू जल की तरह फिर से ठंडा हो जो जल अपने आप ठंडा होता है कौन ठंडा करता है। स्वभाव है इतने परिणामों की निर्मलता हमारे अंदर आ जाये कि फिर कोई कुछ भी कह दे हम सह लें। साधना सहने का नाम है। कहने का काम नहीं है। भो ज्ञानी! यदि पीने की दवा मिल जाये तो ज्यादा फायदेमंद होती है, लगाने की वजह। यदि तुझे पानी पीने मिल गया है भोजन करने मिल गया है तो बाहर में लेप लगाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है। भीतर के परिणाम ही सबसे ज्यादा साधते हैं। बाहर के निमित्त बन सकते हैं, लेकिन अपने उपादान को सम्हालने की कला तुझमें है तो सबसे बड़ी चीज है। संसार में अनंत निमित्त हैं तुझे पतित करने के लिये लेकिन सम्हालने वाला तो तू स्वयं ही है। ध्यान देना यात्री तेरी गाड़ी नहीं सम्हालते हैं तुझे स्वयं ही सम्हालना पड़ती है।

**प्रिय आत्मन् !**

मेरे परिणाम मुझे स्वयं ही सम्हालने होंगे, मेरी समाधि मात्र मेरे परिणाम करा सकते हैं। दूसरा कोई नहीं करा सकता है। यद्यपि समाधि के समय अड़तालीस साधु की आवश्यकता बताई है एक समाधि के लिये। अलग-अलग विभाग दिया चार साधु सेवा करें, चार साधु जागरण करें,

चार साधु आहार चर्या करायें, चार साधु नगर में भ्रमण करें, चार साधु नगर के विशिष्ट व्यक्तियों से वार्तालाप करें। इस तरह का वर्गीकरण किया है लेकिन इतने होने पर भी यदि समाधि करने वाला क्षपक अपने परिणाम न सम्हाल पाये तो अड़तालीस की मेहनत बेकार हो जाती है। ध्यान देना– कितना भी परिश्रम पिता कर ले बचपन से लेकर पचपन तक लेकिन पुत्र उस परिश्रम का मूल्यांकन न करें तो उसकी सफलता नहीं है। पिता ने तो कमा के रख दिया और फिर बंटवारा के समय बंटवारा भी कर दिया लेकिन पुत्र उसका सदुपयोग न करे तो पूरी सम्पत्ति बेकार है। उसी तरह से समाधि तप का फल है। ऊपर से कह देना अलग बात है भीतर में होना अलग बात है। ध्यान देना कपड़े का रूपरंग जैसे तन के रंग को नहीं बताता है वैसे ही तन की स्थिति चेतनाकी स्थिति भिन्न होती है।

**प्रिय आत्मन् !**

समाधि लोक पूजा से परे है। लौकिक संगति लोक व्यवहार में डाल देती है। कितना बाहर–बाहर जाना पड़ता है। कौन आ रहा है? कौन जा रहा है? किसका ध्यान रख पाये? किसका ध्यान नहीं रख पाये? ओहो! ज्ञानी पुरुष तू किसके लिये साधु बना था? यदि इतना सब ध्यान रखना था यह तो घर वालों का काम है। कि आहार को पूँछले, कि भोजन को पूँछ ले, कि ठहरने को पूँछ ले। ओहो! यह साधु की क्रिया कर्म नहीं हैं।

यदि आज का श्रावक साधु के पास जाता है, तो चाहता है कि साधु मुझसे कहे कि तुमने भोजन किया क्या? ओहो! जो स्वयं एक समय भोजन करते हैं वह साधु तुमसे पूछें कि तुमने भोजन किया क्या? जो स्वयं भोजन का त्याग कर चुका है वह आपसे पूँछे कि भोजन किया क्या नहीं? हे दिगम्बर श्रमण तू किसी के भोजन की व्यवस्था मत बनाना। यह लोक व्यवहार है जब तू स्वयं शुद्ध सोले का भोजन करता है तो दूसरे के लिये भोजन की कह भी कैसे सकता है। कह भी नहीं सकता है।

समाधि की साधना आसान नहीं है। और सबसे आसान है यदि अपने भीतर रहो तो सब आसान है। और भीतर से बाहर चले गये तो सब कठिन है। बाहर रहने वाले को कठिन है और भीतर रहने वाले को सरल है। बड़े–बड़े संघ भी समाधि के कारण नहीं बन पाते हैं। आदिनाथ का इतना बड़ा समोशरण लगा और मारीचि वहाँ से निकल गया। कौन ने निकाला? क्या दूसरे ने निकाला? नहीं। मरीचि कुमार तेरे स्वयं के परिणाम ने तुझे समोशरण से निकाला है। यदि तेरे

परिणाम भले होते तो तुझे कोई निकालने वाला नहीं था। समाधि का साधन संघ का सम्मेलन भी नहीं है। व्यवहार में तू सबको मान ले लेकिन अब दूसरों को दोष देना बंद कर दे। समाधि का साधन संघ का मिलना नहीं। संघ मिला, मिल लिया, मिलाप हो गया।

**प्रिय आत्मन् !**

त्यौहार आते हैं, घरों में कार्यक्रम होते हैं लोग आते हैं जाते हैं लेकिन आना-जाना होता है। लेकिन वस्तुतः उस काल में उतनी साधना नहीं होती है। आप के घर में जब कार्यक्रम होते हैं उस समय विशेष पूजा भी नहीं कर पाते, विशेष जाप का अनुष्ठान नहीं कर पाते क्योंकि मिलन के काल में उतनी विशेषता नहीं है। आत्मा से कितने मिले? इसलिये आचार्य लिखते हैं - आत्मा ही संघ है।

**''संघो गुण संघाओ''**

गुणों के समुदाय को संघ कहते हैं।

रत्नत्रय ही संघ है। और कोई संघ नहीं है इसका तात्पर्य यह नहीं है कि हम संघ रहित हो जायें। नहीं, वह बहिरंग साधन है यह अंतरंग साधन है। आचार्य उपदेश दे रहे हैं आत्मा पर। यदि कहा जाये कि घी लाओ तो बिना बर्तन के घी नहीं ला सकते हैं। साधन है किन्तु साध्य पर दृष्टि है कि नहीं, थाली की कीमत जब ही है जब थाली में भोजन हो। उसी तरह जब आत्मा में शुद्ध भाव न भरे हो उस आत्मा को समाधि कैसे कहें। शुद्ध भावों का परोसना ही तो समाधि है।

**प्रिय आत्मन् !**

जिन्होंने आत्मा को जाना है, जिन्होंने आत्मा को पाया है,जो आत्मा को पाने के अभ्यासी है उनकी संगति करने से आत्मा को पाया जा सकता है। यदि हम उनकी संगति न करें तो फिर आचार्य कहते हैं भो ज्ञानी! कहीं आत्मा को पाने के लक्ष्य में तू एकल नहीं हो जाना। संघ में रहेगा तो तेरा कल्याण होगा, बिना संघ के कोई मेरा शत्रु भी हो तो भी अकेला न रहे। अकेला रहेगा तो अपना विनाश करेगा, भगवान महावीर के शासन का विनाश करेगा, तीर्थंकर की आज्ञा तथा शास्त्रों को नष्ट कर देगा इसलिये कभीअकेले मत रहना। समूह में रहते हुये अपने में रहना एकांत है। आत्म धर्म में रहना, समूह का त्याग करना नहीं और अपने में डूबे रहने का नाम है साधना। तुम सोचो कि मैं समूह का त्याग कर दूँ ? नहीं। समूह का त्याग नहीं करना, समूह का त्याग करोगे तो विनाश का काल शीघ्र आ जाता है इसलिये -

## ''संघे शक्ति कलौ युगे''

इस काल में संघ मैं ही शक्ति है। व्यवहार पक्ष को भी स्वीकारना और निश्चय पक्ष को भी स्वीकारना। यदि तुम किताब अकेले पड़ते तो एक ही पक्ष मिलता लेकिन गुरु से सुन रहे हो तो दोनों पक्ष को रख रहा हूँ कि संघ में ही शक्ति है अन्यथा कलिकाल है यह न जाने तुम्हारी साधना को कौन से जीव कैसे कब हानि पहुँचा दें और आत्मा के परिणाम सदा एक से नहीं रहते कब कौन से कर्म का उदय आ जाये और उस उदय के काल में परिणाम कितने चंचल हो बैठे कौन से निमित्त उस क्षण मिल जायें और तेरी साधना शिथिल हो जाये।

**प्रिय आत्मन् !**

संघ संबल देता है। संघ भय भी देता है। और संघ निर्भयता भी देता है। जब हम संघ में रहते हैं तब भय रहता है कि कहीं मुझसे ऐसा अपराध हो जायेगा तो दूसरे साधु मुझे क्या समझेंगे और दूसरी ओर हम निर्भय भी है हम अपनी चर्या-क्रिया समय पर कर रहे हैं। समूह बहुत गुण देता है। संघ कल्याण कारक होता है। संघ तो समोशरण का प्रतीक है।

**प्रिय आत्मन् !**

आज मैंने कितनी अध्यात्मिक ऊँचाई पायी यह महत्वपूर्ण है। सिंहासन पर बैठना ऊँचाई नहीं है, तखत पर बैठना ऊँचाई नहीं है, अपने परिणामों की उज्ज्वलता ही सच्ची ऊँचाई है। परिणामों में कितना उतार-चढ़ाव आया, कितनी निर्मलता आयी ध्यान देना साढ़े तीन हाथ का जीव मोक्ष चला जाता है और तीन कोश का जीव मोक्ष नहीं जा पाता है। क्योंकि साढ़े तीन हाथ वाले जीव के परिणाम शुक्ल ध्यान के हो जाते हैं। किन्तु तीन कोश वाले जीव के परिणाम शुक्ल ध्यान के नहीं होते हैं। ऊँचाई से कुछ नहीं होता है, लम्बाई से कुछ नहीं होता है परिणामों की ऊँचाई ही सच्ची ऊँचाई है। गुणों की लम्बाई ही सबसे बड़ी लम्बाई है, गुणों में लम्बे बनो, गुणों में ऊँचे बनो यही साधना है।

ओहो! भीतर में रहने वाला बाहर को नहीं देखता है। बाहर में रहो, लक्ष्य भीतर का रहे, भीतर में रहो तो भीतर के रहो। यही साधना और सिद्धि के मंत्र हैं।

संसार में अनंत पदार्थ हैं कुछ चेतन पदार्थ हैं कुछ अचेतन पदार्थ हैं कुछ चेतन-अचेतन पदार्थ हैं। अनंत जड़ द्रव्य अनंत पुद्गल द्रव्य हमारी आँखों के सामने झूल रहे हैं, दिखाई दे रहे हैं यह दृश्यमान अनंतानंत पदार्थ, यह अनंत जीव ओहो! कौन सा उपादेय है।

**''जीवादि वहि तच्चं हेयं''**

कुंद कुंद भगवान समयसार में कहते हैं– जीवादि भी द्रव्य हेय है। दूसरे की आत्मा मेरे लिये उपादेय नहीं है, मेरे लिये मात्र मेरी ही आत्मा उपादेय है। बाहर में सुई से लेकर के हवाई जहाज तक कोई भी पर पदार्थ हो आपका कुछ भी नहीं है। मेरा कुछ भी नहीं है।

**''मम केचन अर्थाः न।''**

बाहर में मेरा कुछ भी नहीं हैं, कितना भी कह लो यह मेरा, यह मेरे, भो ज्ञानी! तू कितने विकल्प कर रहा है तेरा हवाई जहाज गुम गया? ओहो! क्या तेरी सुई गुम गयी? इतने विकल्प ओहो! ऐसे परिणाम को धिक्कार है, धिक्कार है। तेरे आत्मा का जो था वह तेरी आत्मा में है जो तेरा नहीं था वही तो गुमेगा। इस मिथ्यात्व को निकालना पड़ेगा, जड़ो से। ध्यान देना हे चाणक्य! क्या कर रहा है? ओहो! तुम देख नहीं रहे इस कुश ने मेरे पैरों को छील दिया है इसलिये मैं कुश को उखाड़कर के मट्ठा भर रहा हूँ क्यों! ताकि यह कुश पुनः जन्म न ले सकें।

**प्रिय आत्मन् !**

जिस मोह ने तुझे अनादि से जन्म-मरण कराया है। उस मोह को उखाड़कर के एक बार सच्चे वैराग्य का मट्ठा भर दे तो मोह पुनः जन्म नहीं लेगा, एक बार चाणक्य जैसा करके दिखा दे। अपनी हृदय भूमि से मोह की कुश निकालकर, फिर ज्ञान और वैराग्य का मट्ठा भर दे ताकि फिर मोह का जन्म न हो सके।

बाहर में मेरा कोई भी पदार्थ नहीं है, जो टूट जाये, फूट जाये, रूठ जाये, छूट जाये, वह मेरा नहीं। जो-जो सिद्धों के पास है वह-वह मेरा है। जो-जो सिद्धों के पास नहीं वह-वह मेरा नहीं। घर में जाना हर चीज देखना, हर चीज के साथ मिलान करना क्या यह चीज सिद्धों के पास है? इसलिये जो मेरा नहीं है। मैं उसके पीछे संकल्प विकल्प करके आत्मा को नरक-निगोद में नहीं डालूँगा। जिस समय तुम पर वस्तु के कारण विकल्प कर रहे हो ओहो! उसी समय काश आयु का बंध हो गया, एक पुद्गल के कारण तूने आत्मा को तिर्यंच गति में डाल दिया। ओहो! बच्चे से खिलौना फूट गया अब माँ ने पीड़ा दे-दी माँ यदि तू जिस समय पीड़ा दे रही है काश यदि उसी समय तुझे आयु बंध हो जाये तो क्या होगा? समझो.....।

बाहर का कोई पदार्थ मेरा नहीं है। हम संचित करते हैं लेकिन वह संग्रह न रहा है, न रहेगा इसलिये आत्मा के सिवा कोई दूसरा पदार्थ न मेरा था, न मेरा है, न मेरा होगा, न मैं उसका था, न मैं उसका हूँ, न मैं उसका रहूँगा।

**अहमेदं एदमहं, अहमेदस्सेव होमि मम एदं।**
**अण्णं जं परदव्वं, सचित्ताचित्त मिस्सं वा॥ 24॥**
**आसि मम पुव्वमेदं, एदस्स अहंपि आसि पुव्वं हि।**
**होहिदि पुणोवि मज्झं, एयस्स अहंपि होस्सामि॥ 25॥**

यह मेरा था, यह मेरा होगा, मैं इसका था, मैं इसका होऊँगा यह सब मान्यता मिथ्यात्व है। घोर मिथ्यात्व है। इस मिथ्यात्व को तोड़कर ही हम सम्यक्त्व को प्रकाशित कर सकते हैं। साधना सम्यक्त्व के बिना कैसी ? और जब तक यह मोह की ग्रंथियाँ नहीं टूटती हैं तब तक साधना का जन्म नहीं होता है। एक द्रव्य वस्तु के गुमने पर यदि तेरे परिणाम मलिन होते हैं तो भो जीव! कैसे कल्याण करेगा ? अपना सम्यक्त्व गुमा बैठा, अपनी समता गुमा बैठा, जब ही जीव समाधि करके जायेगा, प्राण त्याग के जायेगा, बोलो साथ में क्या ले जायेगा ? कुछ भी नहीं जाता। मात्र तेरी आत्मा के प्रदेश जायेगें और शरीर पुद्गल यहीं का यहीं पड़ा रहेगा।

**प्रिय आत्मन् !**

न मैं उनका होता हूँ। न वह मेरे होते हैं, इन बाह्य पदार्थों को मैं मोह वश मैं क्यों अपना मान लेता हूँ ? क्यों जड़ वैभव को अपना मान बैठता हूँ ? क्यों उस आसन पर बैठ जाता हूँ ? कि यह मेरे हैं। इस प्रकार से विशिष्ट प्रकार से, निश्चय करके, निर्णय करके, परिग्रह छोड़ना बिना निर्णय के नहीं छोड़ना ध्यान रख लेना जब तक पक्का निर्णय न हो जाये तब तक घर मत छोड़ देना।

**प्रिय आत्मन् !**

आचार्य कह रहे हैं जैसे तुम ने मूँगफली खाते समय बक्कल को फेंक दिया और फल को खा लिया उसी तरह बाहर को छोड़ दे और भीतर को प्राप्त कर ले। कहो ज्ञानी! मूँगफली दाने में आनंद है कि बक्कल में आनंद है ? जब तक तूने दाना नहीं पाया है तभी तक बक्कल आवश्यक है और दाना प्राप्त कर लिया तो बक्कल को फैक देते हो। भो ज्ञानी! दोना में मिठाई है, दोना के लिये मिठाई नहीं है आत्मा शरीर में है पर आत्मा शरीर के लिये नहीं है।

जैसे हम मिठाई खाने के बाद दोना को छोड़ देते हैं उसी तरह बाह्य पदार्थ को छोड़ देना चाहिये। क्योंकि मिठाई रूपी अंतरंग पदार्थ जब हमने प्राप्त कर लिया है तो फिर दोना की आवश्यकता नहीं रहती है। जैसे भोजन करने के बाद आप थाली को छोड़ देते हो उसी तरह बाहर को छोड़ो और आत्मा को प्राप्त करो।

****

# आत्माकला का लाभ समाधि

**आत्मानमात्मन्यवलोकमानः, त्वं दर्शनज्ञानमयो विशुद्ध।**

**एकाग्रचित्तः खलु यत्र तत्र, स्थितोपि साधुर्लभते समाधिम्॥ 25॥**

**भावार्थ** – हे आत्मन्! तू अपनी आत्मा में अपने आप का अवलोकन कर, क्योंकि अनन्त दर्शन ज्ञानमयी और विशुद्ध स्वभाव वाली आत्मा में एकाग्रचित होकर साधु जन जहाँ कहीं भी स्थित होकर समाधि को प्राप्त कर लेते हैं।

**एकः सदा शाश्वतिको ममात्मा, विनिर्मलः साधिगम स्वभावः।**

**बहिर्भवाः सन्त्यपरे समस्ता, न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः॥ 26॥**

**भावार्थ** – मेरी आत्मा सदा एक और नित्य स्वरूप है कर्म मलों से रहित और ज्ञान स्वभावी है और इसके अलावा जितने भी बाहरी पदार्थ तथा राग–द्वेषादि हैं वे सब कर्मजनित हैं एवं अशाश्वत हैं।

**प्रिय आत्मन् !**

सामायिक पाठ की मंगलमयी आराधना, आत्मकला का अपूर्व आनन्द, आत्म लाभ की पावन पराकाष्ठा को लिये हुये निजानंद, चिदानंद, चिद् चमत्कार, चिद् ज्योति स्वरूप अपनी भगवती आराधना का दर्शन कराने वाला अपूर्व ग्रंथराज सामायिक पाठ। ओहो! कैसा आनंदकारी ग्रंथ है? जिस सामायिक की बेला में योगी पुरुष आत्मा का ध्यान करते हैं उसी बेला में इस ग्रंथ का पाठ किया करते हैं।

हे ज्ञानी! पुरुषो ध्यान देना आप जिस ग्रंथ को सीख रहे हैं, भारत का ऐसा कोई दिगम्बर मुनि न होगा जो इस ग्रंथ का पालन न करता हो, यह सुख में सुख देता है। दुख में सुख देता है। यह ग्रंथ समता का खजाना है, शांति का खजाना है, इस ग्रंथ की विशेषता है कि किसी भी काव्य को

पढ़लो समता का निर्माण हो जायेगा, शक्कर की बोरी में जहाँ से भी परखी डालोगे मीठी ही मीठी निकलेगी। सामायिक पाठ का कोई भी काव्य पढ़ लीजिये जो भी पेज निकल आये वहीं से समता रस का प्रवाह शुरू हो जाता है। यह समयसार सुधारसवाहिनी, यह सामायिक पाठ समयसार सुधारस कौमुदी, यह सामायिक पाठ समयसार सुधाकर मंजरी, धन्य है जयवंत रहे। जो सामायिक पाठ समता का निर्माण कर देता है, जो सामायिक पाठ अंतर के कालुष को धो देता है, जो सामायिक पाठ अशांति में शांति का निर्माण करता है, जो सामायिक पाठ कषाय को चारित्र में बदल देता है, जो सामायिक पाठ अज्ञान को ज्ञान में बदल देता है, जो सामायिक पाठ पाप को पुण्य में बदल देता है, जो सामायिक पाठ ताप को तपस्या में बदल देता है। जो सामायिक पाठ राग को विराग में बदल देता है। ऐसे अभूत पूर्व परिणामों की उत्पत्ति का केन्द्र यह ग्रंथ है। शब्दों में शक्तियाँ होती हैं वही शब्द ब्रह्म कहलाता है। जो आत्मा की आराधना से निकलता है। और आत्मा तक पहुँचा देता है। वह शब्दब्रह्म परमब्रह्म की आराधना का कारण बन जाता है। इसलिये शब्द को ब्रह्म की संज्ञा दी गयी।

**प्रिय आत्मन् !**

अमितगति आचार्य इस ग्रंथ के रचयिता हैं। जिनका ज्ञान अमर है क्योंकि जिन्होंने यह लघु ग्रंथ लिखा है इससे यह तात्पर्य नहीं कि इनके पास प्रज्ञा अल्प होगी? नहीं लघु ग्रंथ लिखने के लिये महान प्रज्ञा चाहिये पड़ती है। क्योंकि इनका महान ग्रंथ मरण कणिका भी है जिसमें लगभग तीन हजार श्लोक के माध्यम से वर्णन किया गया है और उनका यह मंगलमयी आशीष तीन हजार श्लोकों का सार मात्र बत्तीस पदों में भर दिया। मंगल आशीर्वाद पहला आशीर्वाद और दूसरा आशीर्वाद देखिए –

**अध्यात्मरतः भव।**

**स्वस्थं सदा त्वं भव भद्र मुक्त्यै।**

आप सदा स्वस्थ रहो मुक्ति के लिए। यह दूसरा आशीर्वाद है, पहला आशीर्वाद है यदि अध्यात्म में लीन रहोगे तो स्वस्थ रहोगे। खिलौने टूट जाने पर बालक रो देता है और ज्ञानी मुस्कराता है। कहो क्या परिणति है? यदि अज्ञानी जीव की कोई वस्तु गुम जाती है तो वह विकल्प करता है और ज्ञानी जानता है जो मेरा था, मेरा है, मेरा रहेगा, मैं जिसे पाने आया था वह मुझे मिल गया अब मैं क्यों संकल्प – विकल्प करूँ?

कहो ज्ञानियो! एक व्यक्ति वह होता है जो जड़ पदार्थ के गुमने पर, टूटने पर, फूटने पर, विकल्प कर रहा है। एक व्यक्ति वह है जो यह विचारता है कि मेरे अंतराय कर्म का उदय था पदार्थ चला गया इतना ही उस पदार्थ के साथ भोग उपभोग का संबंध था। पदार्थ छूट गया। लेकिन ज्ञानी! जीव रोता नहीं है; बिलखता नहीं है, ओहो! जानता है यदि मैं इस पदार्थ के कारण विकल्प करूँगा तो पदार्थ तो जहाँ गया सो गया लेकिन इस विकल्प के साथ मुझे गति बंध हो जायेगा, आयु बंध हो जायेगा तो पदार्थ तो कहीं नहीं गया लेकिन मैं तो तिर्यंच गति चला जाऊँगा। इसलिये पदार्थ के टूटने पर फूटने पर कभी आँसू नहीं बहाना, जड़ के कारण चेतन आँसू बहाये ओहो! वह चेतन भी जड़ है।

ज्ञानी! जीव जड़ मत बनो। जड़ के कारण जड़ मत बनो। अध्यात्म में लीन हो जाओ क्या मेरा द्रव्य कोई ले सकता है? क्या कोई मुझे द्रव्य दे सकता है? ओहो! मैंने संसार से उठाया था संसार को दे दिया। जब तक मेरे भाग्य में था, तब तक मेरा था। मैंने भोगा और मेरे भाग्य में नहीं है तो चला गया और भाग्य में होगा तो मिल भी जायेगा।

**प्रिय आत्मन् !**

अच्छा भाग्य होगा तो उससे भी कई गुना अच्छा मिलेगा। यह है आत्म तत्त्व का ज्ञान। ज्ञानी! पुरुष हर परिस्थिति में समता धारण करता है। और अज्ञानी विषमता धर लेता है ज्ञान पुस्तकें पढ़ने का नाम नहीं है। ज्ञान परिणामों को निर्मल करने का नाम है। भावों की निर्मलता ही ज्ञान की सफलता है। ज्ञान बहुत हो और भाव उज्जवल न हों तो क्या लाभ? जब मेरा चातुर्मास द्रौणगिरि में था, इधर काटन नदी वह रही है उधर श्यामरी नदी बह रही है दोनों ओर से दो नदियों में बहुत तेज पानी आया है दोनों नदियाँ उफान पर चल रही है दोनों नदियों में ज्यादा पानी आया है लेकिन पानी गंदा है। ओहो! पानी ज्यादा है, गंदा है इसलिये नदी का पानी कोई नहीं पी रहा लेकिन अपने क्षेत्र पर कुँए का पानी भरने लोग आ रहे नदी पार करके, कुँए पर पानी लेने आ रहे हैं क्योंकि नदी में पानी अधिक तो है पर गंदा है। कुँए में पानी थोड़ा है, पर निर्मल है। यही समझ है कि ज्ञान बहुत नहीं, थोड़ा हो पर निर्मल हो, हमारे जीवन में धर्म का ज्ञान थोड़ा भी है तो भी वह कल्याण करता है। धर्म का ज्ञान होगा तो कल्याण करेगा।

**प्रिय आत्मन् !**

अपने में डूबना स्वस्थ होने का तरीका है। आत्म द्रव्य का त्याग करके पर द्रव्य में जाना अस्वस्थता है और पर द्रव्यों को त्याग करके आत्म द्रव्य में आ जाना स्वस्थता है। अपने स्वरूप का

लाभ होना स्वस्थ लाभ है। और पर स्वरूप में चले जाना अस्वस्थ है। आचार्य देव हमें मार्ग दे रहे हैं यह आत्मा समाधि कब पाता है? जीवन के अंत में समाधि पाता है? कि जीवन के प्रारम्भ में समाधि पाता है कि जीवन के मध्य में समाधि पाता है?

**प्रिय आत्मन् !**

समाधि का संबंध यहाँ प्रारम्भ से है, न मध्य से है, न अंत से हैं, विद्यार्थी ज्ञान कब पाता है, जुलाई के महीने में पाता है कि दिसम्बर में पाता है कि फरवरी में पाता है ज्ञानी! वस्तु स्थिति यह है कि विद्यार्थी ने पहले ही दिन स्कूल में जाना प्रारम्भ किया है तभी से उसने ज्ञान पाना प्रारम्भ किया है। उसी तरह से जिस दिन से मैंने साधना के पथ में कदम रखे हैं उसी दिन से समाधि करना प्रारम्भ कर दिया है। आत्मा जिस समय से अपनी आत्मा में पहुँच गया उसी समय से समाधि होना प्रारम्भ हो गया, पर द्रव्य, पर क्षेत्र, पर काल, पर भाव, में प्रवेश करने से असमाधि होती है। और स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव में प्रवेश करने से समाधि होती है। स्वयं के भाव को समाधि कहते हैं। अपने निजी भाव को स्वभाव कहते हैं, मैं दर्शन स्वभावी हूँ, मैं ज्ञान स्वभावी हूँ, आत्मा में ठहरकर के जब मैं ऐसा होऊँ दर्शन स्वभावी, ज्ञाता दृष्टा स्वभावी हूँ, मैं राग-द्वेष स्वभावी नहीं हूँ। कुछ क्षण मात्र मुझे देखना चाहिये क्या हो रहा है? जब वीतराग सारे संसार को देखकर विकल्प नहीं करते हैं। तो हम पर को देखकर विकल्प क्यों करें। मैं दर्शन ज्ञान स्वभावी हूँ ज्ञान मेरा स्वभाव है।

**आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं,**
**ज्ञानादन्यत् करोति किं।**
**पर भावस्य कर्तात्मा,**
**मोहोऽयं व्यवहारिणाम्।**

आचार्य अमृतचंद्र देव समयसार कलश में लिखते हैं आत्मा क्या है ज्ञान है, ज्ञान के अलावा आत्मा करता ही क्या है? भो ज्ञानी! आत्मा ज्ञान को ही कर्ता है। चाहे ज्ञान अच्छा कर लेता है तो सब अच्छा हो जाता है, ज्ञान बुरा कर लेता है तो सब बुरा हो जाता है।

**प्रिय आत्मन् !**

आत्मा ज्ञानमय है, स्वयं ज्ञान ही है, ज्ञान से भिन्न आत्मा क्या करता है ? यह मेरी भूल है कि मैं यह कर रहा हूँ। मात्र मैं ज्ञान कर रहा हूँ। ज्ञान के सिवा तुम कुछ नहीं करते हो वह तो हो जाता

है। चाहे ज्ञान को अच्छा बना लो, चाहे ज्ञान को बुरा बना लो, मैं पर भावों का कर्ता हूँ। ओहो! मैं पुत्र का पालनहार हूँ, मैं घर का संचालक हूँ, मैं संघ का व्यवस्थापक हूँ।

**''अयं मोहो।''**

यह मोह है व्यवहारी जन का। भो ज्ञानी! इस मोह का त्याग कर मात्र यह कर कि मैं तो मात्र ज्ञान स्वभाव का कर्ता हूँ। पर भावों का कर्ता नहीं हूँ। जैन दर्शन कर्तावादी दर्शन नहीं है, जैन दर्शन भोक्तावादी दर्शन नहीं है, जैन दर्शन ज्ञाता दृष्टा दर्शन है। ध्यान देना जिस दिन ज्ञाता दृष्टा आ जायेगा उसी दिन अध्यात्म की दशा प्रकट होगी जिस दिन अध्यात्म की दशा प्रकट होगी उसी दिन ज्ञाता, दृष्टापना आ जायेगा। आचार्य देव कहते हैं-

**यथा-यथा समायाति, सम्वित्तौ तत्त्वमुत्तमम्।**
**तथा-तथा न रोचन्ते, विषयाः सुलभा अपि।।३७।। इष्टोपदेश**

जैसे-जैसे आत्म तत्त्व का संवेदन आता है। वैसे-वैसे सुलभ विषय भी रुचिकर नहीं लगते हैं। जिसको आत्म तत्त्व की उपलब्धि हुयी है उससे कहो भाई यह पदार्थ ले लो, नहीं भैया मुझे नहीं चाहिये। मेरे पास पर्याप्त है। पहले आप जिस वस्तु की याचना करते थे और जब आत्मा की सम्वित्ति हो गयी तो उसी वस्तु को त्यागने लगे। ध्यान देना - जैसे-जैसे आत्मा का संवेदन होगा वैसे-वैसे पर पदार्थों से रुचि घटेगी और जैसे-जैसे पर पदार्थों से रुचि घटेगी वैसे-वैसे आत्मा का संवेदन होगा। हमें दोनों दृष्टि से देखना है जैसे-जैसे सूर्य उगेगा वैसे-वैसे पदार्थ दिखेगा और जैसे-जैसे पदार्थ दिखता जा रहा है इसका तात्पर्य सूर्य का प्रकाश होता जा रहा है।

**प्रिय आत्मन् !**

भो चक्रवर्ती भरत! तुम छियानवें हजार रानियों के मध्य में वैरागी कैसे रहे? ओहो! आओ मेरे भाई! चक्रवर्ती भरत ने उसके लिये कटोरा दे दिया कटोरा में तेल भरा हुआ है कह दिया जाओ तुम छियानवें हजार रानियों को देखकर आओ लेकिन ध्यान रखना कटोरे में से एक भी तेल की बूंद नीचे गिर गयी तो पहरेदार साथ में चल रहा है जहाँ तेल की बूंद गिरेगी वहीं तेरी गर्दन गिरेगी ओहो! व्यक्ति देख रहा है कटोरा हाथ में लिये है चक्रवर्ती की आज्ञा है तो जाना पड़ेगा ओहो! जो रानियाँ सामने आ गयी हैं देख रहा है लेकिन सत्य स्थिति यह है देख के लौट के आया चक्रवर्ती ने पूछा आपने मेरी रानियों को देख लिया। स्वामी पहले आप अपना कटोरा सम्भाल लो क्या बात है।

अहो! ज्ञानी! प्रभु मुझे रानी नहीं दिख रहीं मुझे तो अपनी मौत दिख रही थी। कहीं यदि एक भी बूंद गिर जाती तो मेरे प्राणों का अंत हो जाता। जैसे तुझे इस समय प्राणों का अंत दिख रहा है उसी तरह मुझे भी दिख रहा है कि यह जो पल गुजर गया यह पल दुबारा आने वाला नहीं है। चाहे रोके गुजार दे, चाहे हँस के गुजार दे। चाहे साधना में गुजार दे, चाहे विराधना में गुजार दे, चाहे पाप में गुजार दे, चाहे पुण्य में गुजार दे, चाहे राग में गुजार दे, चाहे वैराग्य में गुजार दे। ध्यान देना यह पल लौट के आने वाला नहीं है। चक्रवर्ती जान रहा है कि **जो दिख रहा है वह जड़ है जो देख रहा है वह चेतन है, चेतन जड़ को देख** रहा है लेकिन जड़ चेतन को नहीं देखता जो मुझे देखता नहीं है मैं उसको क्यों देखता रहूँ? जो मुझे नहीं देखता उसे मैं क्यों देखता हूँ?

**प्रिय आत्मन् !**

भरत चक्रवर्ती इस तरह से वैरागी रहा और यही कारण है कि अंतर्मुहूर्त में केवल ज्ञानी हो गया। एक हथिनी का बच्चा जंगल में हाथियों के झुंड के साथ घूमने जा रहा है। जब वे हाथी सरोवर में स्नान करते हैं तो वह भी आनंद के साथ स्नान करता है। जब वे हाथी वृक्षों के पत्ते डालियों को तोड़कर खाते हैं तो वह भी खाता है नाना प्रकार की क्रीडा करते हुये आनंद मना रहा है। ध्यान देना हाथी आनंद मना रहे हैं वह हाथी का बच्चा भी आनंद मना रहा है। पर ध्यान रखना हाथी का जो बच्चा है वह कितना भी आनंद मना ले लेकिन उस आनंद में एक लहर है कि मुझे माँ के पास जाना है। सम्यक् दृष्टि की यही स्थिति है जैसे हाथियों के बीच में वह छोटा सा हथिनी का बच्चा दिख रहा है कि आनंद मना रहा है दिख रहा है कि यह स्नान कर रहा है लेकिन बात तो सच यह है कि भीतर में तो एक ही धुन सवार है कि कब वापिस जाये और मैं अपनी माँ के पास जाकर के मिलूँ। सम्यक् दृष्टि की यही स्थिति है कि बाहर में व्यापार भी करता है, परिवार को भी सम्हालता है लेकिन भीतर में एक धुन है कब में जाकर जिनेन्द्र भगवान के चरणों में पहुँच जाऊँ? कब मैं आत्म-स्वरूप में लीन हो जाऊँ? कब मैं निज मैं लवलीन हो जाऊँ? एक धुन होती है **जो कर रहा है वह नहीं कर रहा है जो नहीं कर रहा है वह कर रहा है।** यह हैं सम्यक्त्व के चिन्ह, यह हैं भव्यत्व के चिन्ह, यह हैं आत्म कल्याण की निकटता के चिन्ह, यह हैं भव्यत्व के लक्षण।

**प्रिय आत्मन् !**

हम जो देख रहे हैं वह सच नहीं है, जो सच है उसे हम देख नहीं रहें हैं। क्योंकि सम्यक् दृष्टि की अंतर दशा में गटागटी है, भीतर ही भीतर आनंद मनाता है बाहर में एक ओर तड़फता भी है मैं

क्यों इस विकल्पों के जाल में फँस गया हूँ? लेकिन भीतर में ओहो! मेरा सौभाग्य अच्छा है इतना होने के बाद भी जिनेन्द्र देव की शरण में आ गया।

**प्रिय आत्मन् !**

देखना है तो पर में मत देखो आत्मा में आत्मा को देखो। दर्पण में देखते-देखते बहुत समय बीत गया अब तो जाके अपने आप में देख लो।

**स्वः स्वं स्वेन स्थितं स्वस्मै, स्वस्मात्स्वस्याविनश्वरम्।**

**स्वस्मिन् ध्यात्वा लभेत् स्वोत्थ, मानन्दममृतं पदम्॥ 25॥ स्व.संबो.**

आचार्य देव अकलंक स्वामी स्वरूप संबोधन की पच्चीस नंबर की कारिका में कहते हैं- आनंद बाहर में नहीं है भीतर में है। ज्ञान का आनंद ही तो आनंद है। जहाँ पंचेन्द्रियों के कोई भी विषय नहीं हैं और फिर भी आनंद आ रहा है यही सच्चा आनंद है। मेरा स्वभाव पर में जाना नहीं है, राग-द्वेष नहीं है, मेरा स्वभाव दर्शन और ज्ञान है। दर्शन संवेदन है, ज्ञान जानना है यह मेरा स्वभाव है।

"स्वाध्याय से बुद्धि
प्रतिक्रमण से शुद्धि
सामायिक से विशुद्धि
रत्नत्रय से सिद्धि होती है।"

**प्रिय आत्मन् !**

पूज्यपाद देव लिखते हैं -

**मुक्तिरेकान्तिकी तस्य, चित्ते यस्याचला धृतिः।**

**तस्य नैकान्तिकी मुक्तिर्यस्य, नास्त्यचला धृतिः॥71॥ स.तं.**

जिसका चित्त अचल है उसकी मुक्ति नियामक है। और जिसका चित्त चंचल है उसकी मुक्ति नहीं होगी क्योंकि मुक्ति के लिये चित्त अचल चाहिये। चंचल चित्त वालों को विद्या सिद्ध नहीं होती है। जिसका चित्त अचल होता है उसी के लिये ज्ञान और ध्यान की सिद्धि होती है।

**प्रिय आत्मन् !**

जिनके चित्त चंचल होते हैं वे आगे के लक्ष्य को नहीं पा पाते हैं। लक्ष्य के लिये लक्ष्य के प्रति समर्पण और कार्य के प्रति एकाग्रता अनिवार्य होती है। जो अपने लक्ष्य के प्रति पूर्ण समर्पित होते हैं और निरन्तर पुरुषार्थ करते हैं वे सफलता को पाते हैं।

**प्रिय आत्मन् !**

जहाँ अपनी आत्मा में लीन हो जायेगा, तो वहीं पर समाधि शुरु हो जायेगी। समाधि का तात्पर्य है धर्म-ध्यान, आत्मा का विशुद्ध परिणाम ही समाधि है, भावों की निर्मलता ही समाधि है। मन के विचार को आधि कहते हैं, तनके विकार को व्याधि कहते हैं, मूर्छा ममत्व परिणाम को उपाधि कहते हैं और तीनों से रहित भाव को समाधि कहते हैं।

**प्रिय आत्मन् !**

भो ! सुदर्शन तू श्रावक होकर के भी शमसान में बैठे गया समाधि होना शुरू हो गयी। ज्ञानी ! जीव जहाँ परिणाम निर्मल हो गये जहाँ जीव को मिले शांति वही तीर्थ स्थान है। जहाँ अपनी आत्मा का संवेदन प्रारम्भ हो गया वहीं समाधि हो गयी। क्योंकि समाधि बाहर के क्षेत्र में नहीं होना है समाधि आत्मा के प्रदेशों में होना है। समाधि बाहर का द्रव्य नहीं करायेगा समाधि मेरी आत्म-द्रव्य का परिणमन करायेगा।

**प्रिय आत्मन् !**

कभी-कभी कर्मों का संस्कार इतना तीव्र रहता है कि व्यक्ति कहीं भी चला जाये वह संक्लेश ही करेगा और कोई-कोई व्यक्ति ऐसे होते हैं वे कहीं भी चले जायें वहाँ विशुद्धि ही प्राप्त करेंगे। संस्कार है धर्मात्मा-धर्मात्मा की खोज कर लेता है। व्यापारी-व्यापारी की खोज कर लेता है। विद्वान-विद्वान की खोज कर लेता है। साधु-साधु की खोज कर लेगा। जिसके लिये जिसकी प्यास होती है उसके लिये वह चीज मिल जाती है।

समतामयी मन ही तो समाधि है। शुभ भावों का व्यापार ही तो समाधि है, शुद्ध भावों का संचार ही तो समाधि है। करना क्या है समाधि के लिये ? समाधि में होता क्या है ?

आज समाधि मेरे आधीन है। मैं स्वस्थ हूँ, निरोग हूँ, आज का भला तो मैं कर सकता हूँ। कल की मृत्यु किसने देखी ? जिसका वर्तमान अच्छा होता है उसका भविष्य भी अच्छा होता है और भूत भी अच्छा था, भविष्य भी महान है अगर सुधारा उसे, जो आज वर्तमान है।।

जहाँ कहाँ भी ठहरो, वहीं समाधि मिलेगी। मात्र विशेषता है कि आत्मा में लीन हो जाना। भो ज्ञानी! विकल्प मत करना कि इतना अच्छा मकान मिल गया कि टूटा-फूटा मकान मिल गया। ज्ञानी! मुझे मकान में रहना कि महल मैं रहना? न मकान में रहना, न महल में रहना, रहना है तुझे आत्मा में! आत्मा के बाहर रहा तो क्या रहा। जाके तो मिट्टी पर रह रहा है, सीमेंट पर रह रहा है, पत्थर पर रह रहा है नहीं ज्ञानी! तेरा उपयोग में जिस समय जो आया तू उसमें रह रहा है। उपयोग में ज्ञान आ गया तो ज्ञान में रह रहा है और उपयोग में धर्म का आ गया तो धर्म में रह रहा है मात्र उपयोग की स्थिति है।

**अहमिक्को खलु सुद्धो, दंसण णाण मइयो सदारूवी।**

**णवि अत्थि मज्झ किंचिवि, अण्णं परमाणु मित्तंपि॥ 43॥ स.सा.**

आत्मा एक है, अनेक नहीं। एक था, एक है, एक रहेगा। हम दो हमारे दो सूत्र तुम्हारी, सरकार का हो सकता है। लेकिन शास्त्रकार का नहीं हो सकता। सर्वज्ञ का सूत्र नहीं है, सर्वज्ञ का सूत्र है एक: मैं एक हूँ, सदा एक हूँ, सदा से एक हूँ। दो आत्मायें मिलकर कभी एक नहीं होती है यह लोक भाषा है शरीर तो दो हैं आत्मा एक है। ज्ञानी! शरीर दो होंगे आत्मा दो ही होगी। ऐसा नहीं होगा कि शरीर दो हों आत्मा एक हो। नहीं ज्ञानी! ध्यान देना-दो आत्मा मिलकर तीन काल में एक नहीं हो सकती है इसलिये तू राग में बहकर के सर्वज्ञ की वाणी को झूठा मत कहना कि शरीर तो दो हैं आत्मा एक है ज्ञानी! ऐसा नहीं होता यह कितना ही तू राग वश कह दे मेरी आत्मा तेरी आत्मा एक है लेकिन ना थी, ना होगी, ना है।

हे! राम! तू जिस सीता के पीछे वन-वन भटकता रहा समुद्र को पार करके युद्ध लड़ता रहा लेकिन वह सीता तेरे साथ नहीं गयी ओहो! राम अलग मोक्ष चले गये, सीता स्वर्ग में हैं। इसलिये ध्यान देना-

**आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय।**

**यो कबहूँ इस जीव को, साथी सगा न कोय॥**

एकत्व भावना का चिंतन करो जितना-जितना एकत्व भावना का चिंतन होगा उतना-उतना राग-द्वेष टूटेगा, उतने रिश्ते-नाते खत्म होंगे, मोह कम होगा। मैं नाशवान नहीं हूँ, कोई भी कुछ भी कहता रहे, तेरा यह हो जायेगा ज्ञानी! तेरे करने से मेरा कुछ नहीं होगा, मेरे परिणाम से मेरा सब कुछ होगा। मैं शाश्वत हूँ, अजर हूँ, अमर हूँ, अविनाशी हूँ, मेरा जो भी होगा, मेरे स्वयं के परिणाम से

होगा, तेरे परिणाम मेरे लिये आस्रव बंध नहीं करा सकते, मेरे परिणाम तेरे लिये आस्रव बंध नहीं करा सकते, मेरे भाव मुझे आस्रव बंध करायेंगे संवर निर्जरा करायेंगे, मोक्ष तक ले जायेंगे ओहो! दूसरे के भाव मुझे कुछ नहीं कर सकते। और मेरे भाव दूसरे का कुछ नहीं कर सकते। मेरे भावों के अनुरूप तुम भाव बना रहे होगे प्रवचन के काल में तो तुम्हारा भला हो जायेगा। नहीं बना रहे होंगे तो तुम्हारा तुम जानो।

मेरा आत्मा एक है, सदा है, शाश्वत है, अत्यंत निर्मल है निश्चय नय को देखो। व्यवहार-व्यवहार में इतने लीन मत हो जाओ ज्ञानी! मोटा वस्त्र पहन लेने से शरीर मोटा नहीं हो जाता उसी तरह शरीर के मोटे होने से आत्मा मोटी नहीं होती है शरीर के पतले होने से आत्मा पतली नहीं हो जाती हैं। ध्यान देना-आत्मा असंख्यात प्रदेशी है।

यदि सोने की अंगूठी कीचड़ में भी गिर गयी है ऊपर से तो कीचड़ है लेकिन भीतर में कीचड़ नहीं है उसी तरह मेरा आत्मा संसार में है स्वभाव से तो निर्मल ही है, शक्ति रूप से तो निर्मल ही है भले ही आज राग-द्वेष परिणामों से मलिन हो रहा है लेकिन वस्तुतः मेरा स्वभाव भिन्न है। अंगूठी में ऊपर कीचड़ है लेकिन सोने में कीचड़ नहीं है। मेरा आत्मा शुद्ध ही है, मैं निर्मल स्वभावी सोने की तरह हूँ।

ज्ञानी! जो कर्मों से उत्पन्न हुआ है वह शाश्वत नहीं है। जो अपना नहीं है वह सदा नहीं रहेगा यह चिंतन मोह को तोड़ेगा जैसे शिल्पी छेनी के माध्यम से पाषाण खण्ड को तराशता है ऐसे ही ज्ञानी जीव प्रज्ञा की छेनी से मोह को खण्ड-खण्ड कर देता है और अपने परमात्मा को प्रकट कर लेता है।

**प्रिय आत्मन् !**

मेरा आत्मा एक है, सदा है, शाश्वत है, निर्मल है, ज्ञान स्वभावी है, और शेष जो भाव हैं वे शाश्वत नहीं हैं कर्म से उत्पन्न हुये हैं इसलिये वे अपने नहीं हैं।

****

# संयोग से दुःख

**यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि सार्द्धं, तस्यास्ति किं पुत्रकलत्रमित्रैः।**
**पृथक्कृते चर्मणि रोमकूपाः, कुतोहि तिष्ठन्ति शरीरमध्ये॥ 27॥**

**भावार्थ** – जिसकी शरीर के साथ भी ऐक्यता नहीं है फिर उसका पुत्र, स्त्री और मित्रों के साथ ऐक्य कैसे संभव है। चर्म के पृथक् कर देने पर फिर उससे सम्बन्धित रोम कूप पृथक् ही हो जाते हैं वे माँसादि से लगे नहीं रहते क्योंकि वे चर्म में ही होते हैं।

**संयोगतो दुःखमनेक भेदं, यतोऽश्नुते जन्मवने शरीरी।**
**ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो, यियासुना निर्वृतिमात्मनीनाम्॥ 28॥**

**भावार्थ** – बाह्य पदार्थों के संयोग से अर्थात् उनमें ममत्व भाव स्थापित करने से ही प्राणी भव वन में अनेक प्रकार के दु:खों को प्राप्त होता है। इसलिए मुक्ति के इच्छुक भव्यों को वह संयोग मन, वचन, काय से अवश्य ही छोड़ देना चाहिए।

**प्रिय आत्मन् !**

सामायिक पाठ की पावन मंदाकिनी में अवगाहन करते हुये जैन दर्शन के मौलिक सिद्धान्त, जैसे दर्शन की तत्त्व मीमांसा एवं गूढ रहस्यों को उद्घाटित करते हुये चेतना की समृद्धि, आत्मा के स्वतंत्र्य को दृढ़ता से पहचानते हुये द्रव्य की द्रव्यता अखण्ड होती है। एक द्रव्य में अनंत गुण होते हैं एक गुण की अनंत पर्यायें होती है इस तरह प्रत्येक द्रव्य में अनंत गुण हैं एक-एक गुण की अनंत-अनंत पर्याय हैं।

**अण्णोण्णं पविसंता, देंता ओगासमण्णमण्णस्स।**
**मेलता विय णिच्चं, सगं सभावं ण विजहंति॥7॥ पं.का.**

पंचास्तिकाय जैन दर्शन का रसायन शास्त्र है। जिसमें यह बताया है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में प्रवेश करता है, एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को ठहरने का अवकाश देता है और हमेशा एक द्रव्य दूसरे द्रव्य से मिलता भी है किन्तु अपने-अपने स्वभाव को कोई द्रव्य नहीं छोड़ता है पुद्‌गल द्रव्यरूप शरीर में चेतन आत्मा अनादि से रह रहा है न तो पुद्‌गल ने अपना स्वभाव छोड़ा है, न आत्मा ने अपना स्वभाव छोड़ा है। अपना स्वभाव कौन छोड़ता है? स्वभाव छूटता कब है? जो छूट जाये, वह स्वभाव नहीं।

**प्रिय आत्मन् !**

वस्तु की सत्ता ही उसका स्वभाव है।

**"द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः।"5/41 त.सू.**

गुण द्रव्य के आश्रय से होते हैं किन्तु गुणों का कोई गुण नहीं होता है। यह दीवाल है। दीवाल सफेद है ज्ञानी! पर सफेद क्या है?

जैसे गुण द्रव्य के आश्रय सदा रहते हैं अग्नि में उष्णता गुण है, जल में शीतलता गुण है, आत्मा में ज्ञान गुण है।

**पज्जय विजुदं दव्वं, दव्व विजुत्ता य पज्जया णत्थि।**

**दोण्हं अणण्णभूदं, भावं समणा परूविंति ॥१२॥ पं. का.**

पर्याय को छोड़कर द्रव्य नहीं होता, द्रव्य को छोड़कर पर्याय नहीं होती, गुणों को छोड़कर द्रव्य नहीं होता, द्रव्य को छोड़कर गुण नहीं होते। ऐसा भाव श्रमण प्ररूपण करते हैं।

**प्रिय आत्मन् !**

जैन दर्शन का सबसे महान सिद्धान्त है।

**"गुण-पर्ययवद् द्रव्यम्।" 5/38 त.सू.**

संसार में आप जो भी पदार्थ देख रहे हैं वह या तो द्रव्य होगा या गुण होगा या पर्याय होगा इसके अलावा संसार में कुछ है ही नहीं। इस विश्व के अंदर जो भी दृश्यमान-अदृश्यमान कुछ भी है वह सब तीन के बाहर नहीं है या तो द्रव्य या गुण या पर्याय। आप जिसे पाना चाहते हैं वह द्रव्य होगा या गुण होगा या पर्याय होगी आपने जिसे छोड़ा है वह द्रव्य होगा या गुण होगा या पर्याय होगी।

**प्रिय आत्मन् !**

प्रत्येक वस्तु में अनेक गुण होते हैं। ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसमें अनंत गुण न पाये जायें। पुद्गल का एक कंकड़ भी उठा लिया जाये तो उसमें भी अनंत गुण हैं। चावल के एक दाने में अनंत गुण हैं और एक-एक गुण की अनंत-अनंत पर्याय हैं। प्रिय आत्मन् ! उसी तरह मैं जीव द्रव्य हूँ। मुझ जीव द्रव्य के अंदर भी अनंत गुण हैं। और एक-एक गुण की अनंत-अनंत पर्याय हैं। गुण शक्ति रूप में है या अभिव्यक्ति रूप में हैं? अभी में संसारी जीव हूँ। मेरे गुण मुझमें शक्ति रूप हैं। अरहंत, सिद्धों के गुण अभिव्यक्ति रूप हैं। प्रकट दशा का नाम अभिव्यक्ति है। अप्रकट दशा का नाम शक्ति है। बीज में वृक्ष शक्ति रूप है, ईंधन में आग शक्तिरूप है, तिल में तेल शक्तिरूप है, पाषाण में प्रतिमा शक्तिरूप है लेकिन जो प्रतिमा मंदिर में है वह अभिव्यक्ति रूप, तेल अभिव्यक्ति रूप, घी अभिव्यक्ति रूप, आग अभिव्यक्ति रूप बस यही जानना है। मुझमें और मेरे देव में क्या अंतर है? मुझमें मेरे ईश्वर में क्या अंतर है? मेरी चेतना में और अरहंतों की चेतना में क्या अंतर है? मेरी आत्मा में और सिद्धों की आत्मा में क्या अंतर है? इस अंतर को जानने के बाद अंतर को समाप्त करने की कला की ओर बढ़ेंगे। अंतर कहाँ है? अंतर है गुणों में, अंतर है पर्यायों में और जहाँ गुण शुद्ध होते वहाँ पर्याय शुद्ध होती है जहाँ गुण अशुद्ध होते हैं वहाँ पर्याय अशुद्ध होती हैं। द्रव्य की शुद्धि गुणों और पर्याय पर निर्भर होती है, पर्याय की शुद्धि गुण और द्रव्य पर निर्भर होती है।

द्रव्य शुद्ध होगा तो नियम से गुण पर्यायें शुद्ध होगी, गुण शुद्ध होगा तो द्रव्य भी शुद्ध होगा और पर्याय भी शुद्ध होगी। पर्याय शुद्ध होगी तो गुण और द्रव्य भी शुद्ध होगा यह तीनों का ऐसा समावेश कि जैसे : एक तार है तार में इस छोर से उस छोर तक करेंट प्रवाहमान है, तो वह करेंट (विद्युत) सर्वत्र होता है इसी तरह अशुद्धि होती है तो सर्वत्र होती है। शुद्धि होती है सम्पूर्ण द्रव्य में होती है।

संसार में छः द्रव्य होते हैं। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल इन छः द्रव्यों में धर्म-अधर्म, आकश-काल यह चार द्रव्य शाश्वत शुद्ध द्रव्य हैं। इनमें कभी भी अशुद्धि नहीं आती है यह सदा शुद्ध रहते हैं जैसे - तुम कितनी भी धूल फैंकों आकाश निर्मल ही रहेगा इस आकाश में कुछ भी होता रहे आकाश शुद्ध है। दो द्रव्य शुद्ध भी होते हैं अशुद्ध भी होते हैं वह जीव और पुद्गल हैं। हम यह जानते हैं कि पुद्गल द्रव्य स्कंध अवस्था में जब होता है तो अशुद्ध होता है, अणु रूप में जब होता है तो शुद्ध होता है। दो या दो से अधिक परमाणुओं से मिलकर जो संरचना हुयी है वह

स्कंध कहलायेगी और एक परमाणु का होना अणु है यही शुद्धता है, जब दो परमाणु मिल गये तो अशुद्ध हो गये। आत्म द्रव्य अकेला है तो स्वतंत्र है और आत्म द्रव्य में दूसरे का विचार भी आ गया तो परतंत्र हो गया वह स्वाधीन नहीं रहा जैसे काल द्रव्य की इकाई का नाम समय है वैसे ही पुद्गल द्रव्य की इकाई का नाम परमाणु है। जीव द्रव्य की शुद्धता-अशुद्धता को जाने। हम पुद्गल द्रव्य की शुद्धता-अशुद्धता पर प्रकाश डालें तो उसका परमाणु रूप होना शुद्धता है। और स्कंध रूप होना अशुद्धता है। लेकिन यह जानते हैं कि परमाणु अनेकों बार स्कंध रूप बन जाता है और स्कंध को भेद करने से परमाणु बन जाता है। जैसा कि आचार्य उमास्वामी कहते हैं -

**"भेदादणुः" 5/27 त.सू.**

भेद से अणु की उत्पत्ति होती है। भेद और संघात से स्कंध की उत्पत्ति होती है। इस पुद्गल द्रव्य को तुम कितनी भी बार शुद्ध कर लो पुनः पुनः अशुद्ध हो जाता है इसलिये पुद्गल की चर्चा नहीं करेंगे जो शुद्ध होने के बाद अशुद्ध हो जाये उसकी क्या चर्चा ? हम चर्चा करेंगे जो द्रव्य एक बार शुद्ध होने के बाद भविष्य में अशुद्ध न हो।

जैसे-दूध एक बार तप करके घी बन जाता है तो पुनः दूध नहीं बनता है। बीज एक बार जलकर राख बन जाता है तो पुनः बीज नहीं बनता। धान में से चावल एक बार निकल जाता है तो पुनः नहीं उत्पन्न होता वैसे ही एक बार जो आत्मा शुद्ध हो जाती है वह पुनः संसार में जन्म नहीं लेता है। मरण नहीं करता है। भ्रमण नहीं करता है। संसार में भ्रमण चक्र से मुक्त होने के लिये हमें अपने गुणों की स्वतंत्रता का बोध अनिवार्य है। मेरे पास अनंत गुण शक्तिरूप होने पर भी मैं परतंत्र बना हूँ यह गुण मुझ में पूर्ण रूप में कब प्रकट होंगे ? कैसे प्रकट होंगे ? यह ध्यान देने योग्य है - कभी दो द्रव्यों के गुण एक द्रव्य के नहीं होते हैं, कभी एक द्रव्य के गुण दो द्रव्यों में नहीं रहते हैं एक द्रव्य अपने गुण दूसरे को नहीं देता।

पिताजी ने चारों बेटों के लिये संपत्ति का बंटवारा किया पिताजी कहते हैं - मैंने बेटे को सब कुछ दे दिया हैं किन्तु जैन दर्शन कहता है हे पिता ! तूने अपनी आत्मा का कौन सा प्रदेश दे दिया है ? आत्मा के असंख्यात प्रदेश में से एक भी प्रदेश तुमने बेटे को नहीं दिया। तुमने अपनी आत्मा में से एक भी गुण निकालकर के अपने बेटे को नहीं दिया है। एक गुण की अनंत पर्यायों में से एक भी पर्याय अपने बेटे को नहीं दी यह है तत्त्वज्ञान। एक द्रव्य अपना गुण दूसरे द्रव्य को देता ही नहीं है। पिता पुत्र को कुछ देता ही नहीं हैं। पुत्र-पिता से कुछ लेता ही नहीं है। अपना-अपने पास रहता है।

अपना हम दे ही नहीं सकते। अपना हम त्याग ही नहीं सकते। दूसरा अपना ले ही नहीं सकता। क्योंकि यह प्रकृति है। प्रत्येक द्रव्य अपने गुणों से भरा हुआ है उसमें दूसरे के गुण ग्रहण की क्षमता नहीं है। अपने ही गुण तुम चाहे जितने प्रकट कर लो लेकिन दूसरे के नहीं ले सकते। दूसरे का एक भी गुण नहीं ले सकते अपने ज्ञान को जितना चाहे बढ़ा लो लेकिन गुरु का ज्ञान तुम नहीं ले सकते।

ज्ञानी जीवो! अपने ज्ञान को चाहे जितना बढ़ा लो लेकिन गुरु का ज्ञान नहीं ले सकते। गुरु का ज्ञान गुरु के पास ही रहता है शिष्य का ज्ञान शिष्य के पास रहता है। देने से गुरु का ज्ञान घटता नहीं है लेने से शिष्य का ज्ञान बढ़ता नहीं है क्योंकि कोई किसी का ले ही नहीं सकता है। कोई किसी को दे नहीं सकता है। तुमने अपने भीतर से प्रकट किया है उस निमित्त को पाकर के यह तो जैनदर्शन की मूलभूत आधार शिला है।

**नाज्ञो विज्ञत्वमायाति, विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति।**
**निमित्तमात्रमन्यस्तु, गतेर्धर्मास्तिकायवत्॥ 35॥** इष्टोपदेश

ओहो! रेल पटरी पर चल रही है। पटरी रेल को नहीं ले जा रही है देखने वाला देख रहा है कि रेल पटरी पर चल रही है। ज्ञानी जीव! गुरु उपदेश दे रहे हैं शिष्य ग्रहण कर रहा है लेकिन वस्तुत: जिस शिष्य के पास स्वयं का क्षयोपशम नहीं है उसे क्या गुरु देंगे गुरु यदि देते तो सबको एक समान मिलना चाहिये किन्तु नहीं मिलता।

**यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा, शास्त्रं तस्य करोति किं।**
**लोचनाभ्याम् विहीनस्य, दर्पणं किं करिष्यति।।**

जिसके पास स्वयं की प्रज्ञा नहीं होती उसे शास्त्र भी क्या करेंगे?
जो नेत्रों से हीन उसे दर्पण क्या करेगा?

**प्रिय आत्मन् !**

यह ध्यान दो मुझे गुरु के गुण देखना है। मुझे प्रभु के गुण देखना है। प्रभु के गुण प्रभु में रहेंगे गुरु के गुण गुरु में रहेंगे मुझे वैसे गुण अपने भीतर जो छुपे पड़े हैं उन गुणों को जागृत और प्रकट करना है। यहाँ लेन-देन नहीं चलता। यहाँ व्यापार नहीं चलता।

भगवान महावीर गौतम को कुछ नहीं दे पाये। गौतम ने दर्शन करके अपने भीतर ज्ञान को प्रकट किया है आपके द्वारे कोई आता है आप पानी पिला देते हो भोजन करा देते हो यह तो लेन-देन हो जायेगा। पुद्गल द्रव्य में। लेकिन जीव के चेतन गुणों का लेन-देन नहीं होता है।

## निज के गुण निज में है चेतन,
## तू पर मैं क्यों भरमाता है।

मेरे गुण मुझ मैं हैं। जो–जो मेरा है वह–वह मेरे पास है। जो–जो मेरा नहीं वह–वह मेरे पास नहीं। जो रूठ जाये, टूट जाये, फूट जाये, छूट जाये वह मेरा नहीं। जो मेरा है वह ना रूठेगा, ना टूटेगा, ना छूटेगा, ना फूटेगा जो मेरा था, मेरा है, मेरा रहेगा, किन्तु जो मेरा था नहीं, है नहीं, होगा नहीं।

मेरी आत्मा के गुण ही मेरे हैं। दूसरे के गुण मेरे नहीं है। अपना–अपना होता है। आत्मा ही अपना है अपनी आत्मा के गुण ही अपने हैं। परायी आत्मा के गुण अपने नहीं हो सकते।

**प्रिय आत्मन् !**

गुणों को प्रकट करने के लिये हम प्रभु को देखते हैं कि हे प्रभु! आपने अपने गुण कैसे प्रकट किये हैं। जिस सम्यक् दर्शन को आपने प्रकट किया है, जिस सम्यक् ज्ञान को आपने प्रकट किया है, जिस सम्यक् चारित्र को आपने प्रकट किया है, जिस तप को आपने स्वीकार किया है उसी रत्नत्रय का क्रमिक विकास मैं भी कर सकता हूँ जब आपने शेर की पर्याय से क्रमिक विकास किया और एक दिन दस भव के अंदर महावीर भगवान बन गये। आपने हाथी की पर्याय से अपनी विकास यात्रा प्रारम्भ की और आप पारसनाथ भगवान बन गये। फिर मैं भी अपने गुणों को इस भव से प्रकट करना शुरू करता हूँ और एक न एक दिन इस विकास यात्रा पर चलते–चलते एक दिन यह यात्रा पूर्ण होगी और जिस दिन पूर्ण होगी उसी दिन मेरी मंजिल का नाम मोक्ष मंजिल होगा उस दिन मैं अनंत गुणों का स्वामी हो जाऊँगा।

**प्रिय आत्मन् !**

यदि मैं आज सम्यक् दर्शन का स्वामी बन गया, यदि मैं आज सम्यक् ज्ञान का स्वामी बन गया, यदि मैं आज चारित्र का स्वामी बन गया, यदि मैं आज संयम का स्वामी बन गया, यदि आज नियम का स्वामी बन गया जब चार पांच गुणों के स्वामी जब अभी बन रहे हैं तो फिर अनंत गुणों के स्वामी भी बन जायेंगे।

**प्रिय आत्मन् !**

विश्वास स्वयं का होना चाहिये। साथ में एक संकल्प भी होना चाहिये। आप यह तो रोज बोलते हैं ''मोक्ष फल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा'' परन्तु मैं कहूँगा कि आपका एक संकल्प होना चाहिये कि ''**मुझे भगवान बनना है।**''

**प्रिय आत्मन् !**

शेर की पर्याय में महावीर ने संकल्प किया था, हाथी की पर्याय में पारसनाथ ने संकल्प किया था और तुम क्या मनुष्य की पर्याय में संकल्प नहीं कर सकते हो कि **मुझे भगवान बनना है।** यदि जो संकल्प न कर पाया तो फल भी कैसे पायेगा मैं यह नहीं कहता आज बनो, कल बनो, अरे! संकल्प तो करो इस भव में नहीं, दस भव में नहीं, पचास भव में नहीं, हजार भव में कभी तो बनोगे।

**मुझे भगवान बनना है और मैं भगवान बनकर रहूँगा**, जब भगवान बनकर रहूँगा यह दृढ़ संकल्प है तो भगवान बनने के उपाय क्या-क्या हैं? सबसे पहला उपाय सम्यक् दर्शन है। दूसरा उपाय सम्यक् ज्ञान है। तीसरा उपाय सम्यक् चारित्र है और यह उपाय यहीं से प्रारम्भ होते हैं हम आपको सम्यक् ज्ञान में लगाये है यह भगवान बनने का उपाय है क्या सिखा रहा हूँ भगवान बनने की कला। तुम सोच रहे हो मैं भक्तामर सुना रहा हूँ, तुम सोच रहे मैं प्रवचन सिखा रहा हूँ, तुम सोच रहे हो मुझे महाराज कुछ सिखा, पढ़ा रहे हैं।

**प्रिय आत्मन् !**

मैं कुछ नहीं सिखाता हूँ, कुछ नहीं पढ़ाता हूँ मैं तो तुम्हें भगवान बनने की कला सिखा रहा हूँ। यह भगवान बनने की कला है एक ना एक दिन भगवान बनोगे नियम से बनोगे क्योंकि आप गुरु के पास आये हैं जो गुरु के पास आता है और आत्मा की बात रूचिपूर्वक सुनता है। वह निकट भव्य होता है।

**प्रिय आत्मन् !**

यह प्रवचन के संस्कार एक पर्याय के लिये नहीं है यह अनंत पर्याय तक साथ जाने वाले हैं। आज का प्रवचन मात्र आज के लिये नहीं है अपितु अनंतकाल के लिए है। प्रवचन भव भव तक साथ जाते हैं।

**प्रिय आत्मन् !**

देशनालब्धि नरकों में तक सम्यक् दर्शन पैदा करा देती है मुझे तो अपने प्रवचन पर विश्वास है यदि मेरा प्रवचन जिसने भी श्रद्धा से सुना है वह नरक नहीं पहुँचेगा यदि पहुँच जायेगा तो भी वहाँ पर सम्यक् दर्शन पा लेगा। यदि किसी ने पहले नरकायु भी बांध ली हो और बाद में भी मेरा प्रवचन सुन ले तब भी वहाँ सम्यक् दर्शन को पा जायेगा वह नरक में भी सुखी रहेगा। यदि

किसी ने प्रवचन सुनने के पहले नरक आयु बांध ली नहीं सुन पाया कभी और बाद में आकर प्रवचन सुना है तो भी मुझे विश्वास है कि मेरा प्रवचन उस जीव के लिये नरक में भी सुख देगा, तिर्यंच गति में सुख देगा, मनुष्य गति में तो सुख दे ही रहा है, देव गति में भी सुख देगा। सुख ही नहीं देगा सम्यक् दर्शन देगा, सम्यक् ज्ञान देगा और सम्यक् चारित्र देगा।

**प्रिय आत्मन् !**

यह धर्म श्रवण है देखो आत्म गुणों की स्वतंत्रता–तुम्हारे गुण तुम्हारे पास हैं। तुम्हारे गुण कोई छीन नहीं सकता है। कभी यह मत कह देना कि चोरी हो गयी यह मत कह लेना कि मेरे बेटे ने मेरा मुझ से ले लिया, मेरे पिता ने ले लिया। नहीं ज्ञानी! तेरा तुझसे कोई नहीं ले सकता, तेरा सब कुछ तेरे पास है, तू निर्धन है ही कब? तू दरिद्र हुआ ही कब है? अपने को पहचाना नहीं इसलिये दरिद्र है।

**प्रिय आत्मन् !**

एक परिवार ने अपराध किया। छोटा सा शिशु गोद में खेल रहा था उस माँ के परिवार को सजा हुयी शिशु भी जेल पहुँच गया जेल में बड़ा हुआ। एक बार रिश्तेदार आये बोले बेटा! तुझे सजा नहीं मिली है। तू चल अपने महल में रहना लेकिन वह तैयार नहीं होता है कहता है–नहीं मेरा घर तो यही है बस यही हालत हमारी है कि मैं जहाँ रहता हूँ वहीं रम जाता हूँ फिर वहाँ से अन्यत्र जाना नहीं चाहता हूँ।

**प्रिय आत्मन् !**

तन में रमते–रमते इतना समय हो गया है कि चेतन में रमने को जी नहीं चाहता है। चेतन में प्रवेश नहीं कर पाता हूँ एक बार चेतना में प्रवेश हो जाये फिर तन में प्रवेश नहीं करेंगे।

ज्ञानी की संगति करोगे ज्ञान मिलेगा अज्ञानी की संगति करोगे अज्ञान मिलेगा। गुणों ने भगवान की संगति की है इसलिये भगवान जहाँ गये उनके गुण भी उनके साथ सिद्धालय तक चले गये।

****

# विकल्प छोड़ो, सुख से जियो

**सर्वं निराकृत्य विकल्पजालं, संसारकान्तारनिपात हेतुम्।**
**विविक्त मात्मानमवेक्षमाणो, निलीयसे त्वं परमात्मतत्वे।। 29।।**

**भावार्थ** – भव वन में भ्रमण करने वाले सर्व विकल्प जाल को दूर करके एक मात्र सबसे भिन्न अपनी आत्मा को देखते हुए हे आत्मन्! तुम परमात्म तत्त्व में लीन रहो।

**स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।**
**परेणदत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा।। 30।।**

**भावार्थ** – हे भगवान! जिस जीव ने जैसे पूर्व काल में अच्छे या बुरे कर्म स्वयं उपार्जित किये हैं वह उसी प्रकार के अच्छे या बुरे फल को प्राप्त होता है। यदि कोई दूसरों के द्वारा दिये गये शुभ या अशुभ फल को प्राप्त होने लगे तो फिर अपने किये कर्म निरर्थक हो जावेंगे, किन्तु ऐसा कभी होता नहीं है।

**प्रिय आत्मन् !**

माँ जिनवाणी, जगकल्याणी, अरिहंत भाषित, सिद्ध सिद्धित, आचार्य आचरित, उपाध्याय उपासित, सर्व साधु साधित, माँ जिनवाणी की मंगलमयी आराधना आत्मा की आराधना है। सामायिक पाठ के माध्यम से हम सभी भव्य प्राणी अंतर आत्मा को पावन पुनीत बनाने का निरंतर प्रयत्न कर रहे हैं।

**प्रिय आत्मन् !**

यह संसार असार है। जिस वन में मोह का अंधकार है। जिस वन में पंचेन्द्रियों के पंचानन हैं। जिस वन में चार कषायों के चतुष्पद जानवर हैं। जिस वन में आठ मद के अष्टापद हैं। जिस वन

में विकराल पंच पाप के पंचानन मुँह बाये खड़े हैं। ज्ञान रूपी सूर्य की किरण जिस वन में नहीं पड़ती है। जिस वन में निगोद का अजगर बैठा है। जिस वन में चार संज्ञाओं के चार सांप बैठे हैं। जिस वन में चित्त को चलायमान करने वाले चलचित्र के चीते बैठे हैं। ऐसा यह संसार वन है।

**प्रिय आत्मन् !**

यह कैसा वन है? इसमें जाने का रास्ता मिलता है, निकलने का रास्ता नहीं मिलता। सतपुड़ा के घने जंगलों में तो कहीं रास्ता मिल भी जाता लेकिन यह संसार ऐसा जंगल है जिस जंगल में हम पथ भूले हुये हैं। याद रहे अनंगसरा अपने ही महल में केश सुखा रही थी एक विद्याधर ने मोहित होकर के उसे हर लिया किन्तु उसे जंगल में छोड़ गया।

**प्रिय आत्मन् !**

बाहर का जंगल तो फिर भी भला कर देगा लेकिन हमारे भीतर एक ऐसा मोह जंगल है जो जंगल हमें मंगल होने से बचाता है। जो जंगल-मंगल नहीं होने देता है। जिसमें विषय कषायों के बड़े-बड़े सघन वृक्ष खड़े हैं। जिसमें निरन्तर पंचेन्द्रिय रूपी पंचानन की दहाड़े आती हैं। जिसमें यमराज का काला हाथी चिंघाड़ रहा है। ऐसे जंगल में हमें कोई रास्ता नहीं सूझता है। मैं इस जंगल में कहाँ से आ गया हूँ? अनंगसरा को तो जंगल में ही मंगल हो गया, सीता को राम ने जंगल में छोड़ा उसे जंगल में मंगल हो गया, राम दशरथ की आज्ञा पालकर जंगल गये उनका जंगल में मंगल हो गया, महावीर वन में गये वे भगवन् बने गये। लेकिन मैं अपने ही भीतर एक ऐसा जंगल बना चुका हूँ जिस जंगल से जिस अंधकार वन से, जिस भयानक अटवी से मुझे निकलने का मार्ग नहीं मिल रहा है। उस वन का नाम संसार वन है। इस संसार वन में मुझे किसने डाला है? अनंगसरा को तो विद्याधर ने डाला था, अनंतमती को किसी विद्याधर ने जंगल में डाला था। लेकिन हे आत्मन् तुझे इस भव वन में किसने डाल दिया है? किसने डाला है? किसने हरण किया है? कौन हरके ले आया? रावण सीता को हर के ले गया, कोई अनंगसरा को हरके ले गया, कोई अनंतमती को हरके ले गया, कोई प्रद्युम्न को हर के ले गया। भो ज्ञानी! भव्य जीव तुझे किसने हरा है? तुझे हरने वाला कौन है? कब अपहरण किया है?

अहो! आत्मन्! संसार कान्तार निपात हेतु क्या है? संसार में डालने वाला कारण क्या है? संसार वन में पटकने वाला कौन है? विकल्पों का समुदाय ही संसार वन में डालता है। मोहरूपी जादूगर की दो संतान हैं।

1. संकल्प

2. विकल्प

**''अहमेदं इति संकल्पं।**

**ममेदं इति विकल्पं॥''**

मैं यह हूँ इसका नाम संकल्प है। यह मेरा है इसका नाम विकल्प है। मैं चाचा हूँ, यह मेरा भतीजा है। मैं मामा हूँ संकल्प, यह मेरा भान्जा है विकल्प। मैं मालिक हूँ संकल्प, यह मेरा मकान है विकल्प। मैं दुकानदार हूँ संकल्प, यह मेरी दुकान है विकल्प। मैं गुरु हूँ संकल्प, यह मेरा शिष्य है विकल्प।

**प्रिय आत्मन् !**

मैं संकल्प, मेरा विकल्प। मैं और मेरे इन दो का ओर-छोर दिखाई नहीं देता। अनादि से आज तक इन दो में ही चित्त उलझा है। मैं और मेरा।

**''णाहं होमि परेसिं''**

ओहो! मेरा कुछ नहीं है, मैं किसी का नहीं, कोई मेरा नहीं, यह आकिंचन्य भाव जब जीव में जन्म ले लेता है। तब साधना प्रारम्भ होती है। मैं और मेरा यह मोहनीय कर्म की स्थिति है। दर्शन मोहनीय में यह स्थिति तीव्र बनती है। और चारित्र मोह में भी यह स्थिति बनती है। दर्शन मोह में जीव परद्रव्य को आत्मद्रव्य रूप मान लेता है। और चारित्र मोह में परद्रव्य को आत्मद्रव्य रूप तो नहीं मानता है किन्तु पर को पर मानकर भी मोह करता है। मानता तो पर को पर ही है- किन्तु मोह करता है यह चारित्र मोह है। किन्तु दर्शन मोह में पर को अपने रूप मान लेता है और दुखी होता है।

**प्रिय आत्मन् !**

मुझे इस संसार में भ्रमण कराने वाला कोई दूसरा नहीं है। भो ज्ञानी! यात्रा पर जायेगा बस मैं बैठेगा, ड्राइवर जहाँ ले जायेगा, वहाँ जायेगा। तब किसी चालक पर निर्भर है। किन्तु इस संसार वन की यात्रा का चालक कोई दूसरा नहीं है। इस यात्रा का चालक मैं स्वयं हूँ। मेरी विभाव परिणति है, मेरा संकल्प और विकल्प ही इसके चालक हैं। विकल्प जाल क्या है? ओहो ज्ञानी! आपने जाल देखा है? देख लेना घर के किसी कोने में जाल लगा होगा। दूर मत जाना कहीं मकड़ी का जाल

दिख जाये तो देख लेना भो ज्ञानी! मकड़ी जाल बुनती है, अपने ही थूक से वह जाल बुनती है किस लिये बुनती है? कि इस जाल में दूसरे कीड़े आयेंगे, रुकेंगे, फसेंगे और मकड़ी उसको पकड़ लेती है? चूस लेती है।

**प्रिय आत्मन् !**

मकड़ी जाल बनाती है। और उस जाल में कीड़े आकर फसने लगते हैं। मच्छर ने समझा कि यह मेरे बैठने का स्थान है जबकि वह बैठने का स्थान नहीं था। जाल बैठने का स्थान नहीं था लेकिन मच्छर-मक्खी, कीड़े यह समझ बैठते हैं कि यह जाल मेरे बैठने का स्थान हैं और ज्यों ही जाल पर वह बैठते हैं मकड़ी आकर के उसको पकड़ लेती है और उसके पूरे शरीर का रस तत्व चूस लेती है।

**प्रिय आत्मन् !**

विकल्प जाल है। जाल पर तू बैठेगा और विकल्प तुझे चूस लेगा, विकल्प की मकड़ी तुझे चूस लेगी ध्यान देना।

**चिंता चितासमाख्याता, बिन्दु मात्र विशेषता।**

**चिता दहति निर्जीवं, चिंता दहति सजीवकम्॥**

चिंता और चिता दोनों समान हैं बिन्दु मात्र की विशेषता है। अंतर इतना है चिता निर्जीव को जलाती है किन्तु चिंता सजीव को जलाती है। मृत्यु के बाद जो जलती है वह चिता होती है और जीवन भर जो जलती है वह चिंता होती है। अर्थात् चिंता जलाती है, विकल्प जलाते हैं।

**प्रिय आत्मन् !**

गेहूँ में घुन लग जाये तो क्या होता है? भीतर में कीड़ा लग जाये और जब वह कीड़ा लग जाता है तो भीतर-भीतर से अनाज को खोखला बनाता है। चिंता, टेंसन, संक्लेश, आर्तध्यान, तनाव, रौद्रध्यान जिसके पर्यायवाची हैं, ऐसा वह विकल्पों का जाल, समुदाय एक नहीं अनेक विकल्प क्यों? एक पूरा होता है दूसरा विकल्प आ जाता है। जिसकी विकल्प करने की हैबिट (आदत) होती है वह कहीं से न कहीं से विकल्प खोज लेता है। किसी की विकल्प करने की आदत हो जाती है। तो कहीं से न कहीं से विकल्प खोज ही लेगा।

**प्रिय आत्मन् !**

मकड़ी जाल बुनती है। दूसरे कीड़ों को फसाती है। छोटे-छोटे कीड़े फसते जाते हैं वह अपना भोजन बनाती जाती है। लेकिन अन्ततोगत्वा जाल इतना बड़ा हो जाता है कि एक दिन वही मकड़ी उसी जाल में फस जाती है और समाप्त हो जाती है। वह स्वयं नहीं निकल पाती है उस जाल से, जो जाल मैंने दूसरों के लिये बनाया था जो विकल्प मैंने दूसरों के लिये बनाया है। दूसरों को उस विकल्प में फसाया है। काश ! क्या हम उस विकल्प से छूट पायेंगे ? विकल्पों का जाल संसार रूपी वन में डालने वाला है। विकल्पों का निराकरण करो, यदि विकल्प बने रहे तो भो बाहुवली ! तेरे मन में इतना ही तो विकल्प था मेरे कारण भरत भैया को कष्ट हुआ। जरा से विकल्प के कारण एक वर्ष तक केवलज्ञान नहीं हो पाया और ज्यों ही विकल्प शांत किया और एक मुहूर्त में केवलज्ञान हो गया। कौन रोके था केवलज्ञान होने से ? किसने रोका था ? क्या भरत ने रोका था ? बाहुबली को या आदिनाथ ने रोका था ? ना भरत ने रोका, ना आदिनाथ ने रोका, बाहुबली तेरा स्वयं का विकल्प तुझे केवलज्ञान होने से रोके था।

जब बाहुबली जैसे व्यक्ति जरा से विकल्प में एक साल तक रुके रहे इस संसार में तो कहो ज्ञानियो ! हम तुम विकल्प करेंगे तो कब तक इस संसार में रुके रहेंगे ? जब तुम विद्यार्थी थे परीक्षा में वास्तुनिष्ठ प्रश्न आते थे और चार विकल्प होते थे उन चार विकल्प में से एक विकल्प तो कम से कम सही होता था। ध्यान देना .....

उच्च परीक्षायें माइनस मार्किंग (ऋणात्मक अंक) में होती हैं। जब गलत विकल्प को चुनते हैं तो एक नंबर नहीं दो नंबर कटते हैं। और सही विकल्प चुनते हैं तो एक नंबर मिलता है। गलत विकल्प चुनते हैं तो दो नंबर जाते हैं। यदि हम सही विकल्प चुनते हैं तो एक ही अंक मिलता है। लेकिन गलत विकल्प चुनते हैं तो नंबर जाते हैं। इसलिये विकल्प गलत हो तो नहीं चुनना, राह गलत तो नहीं चुनना। ध्यान देना विकल्प वन में डलने वाले हैं कभी-कभी हजारों, लाखों विकल्पों में एक भी विकल्प सही नहीं होता है। कोटि-कोटि विकल्प उत्पन्न होते हैं और एक भी विकल्प सही नहीं होता है।

भो ज्ञानी ! सुबह से शाम तक सामान बटोरता है यह मेरा है ओहो ! कितना सामान तेरा है ज्ञानी ! इसी का नाम तो विकल्प है कि तूने परद्रव्य को कितना अपना मान लिया है। ज्ञानी ! जीव हम विकल्पों में कितने उलझे रहेंगे ?

**प्रिय आत्मन् !**

सारा खेल विकल्पों का है। कहाँ का विकल्प धोबी के मन का विकल्प राम के मन में आ गया और राम ने सीता को छोड़ दिया। ओहो! कितना बुरा होता है विकल्प। धोबी के मन का विकल्प राम के मन में आ गया। और राम ने विकल्प के कारण सीता को छोड़ दिया। ज्ञानियो! सूर्पनखा का विकल्प रावण के मन में आ गया और रावण युद्ध करने के लिये चल दिया। लक्ष्मण की सुन्दरता का विकल्प चंद्रनखा के मन में आ गया और मृतक पुत्र के सामने ही पुत्र की हत्यारे के प्रति भी प्रेम भाव जाग गया।

ओहो ज्ञानियो! कैसा विकल्प, विकल्प कहाँ डाल दे कोई पता नहीं है। राजद्वार के महल पर खड़ी हुयी कन्या को देखकर के राजकुमारों को विकल्प आ गया। ओहो! अपनी बहिन का स्वरूप ही भूल गये, कहाँ डाल दिया विकल्प ने ? युद्ध में डाल दिया। कैसा होता यह विकल्प? यह मोह से रचा होता है। विकल्प राग से बना होता है। विकल्प, राग की चासनी में पगा होता है। विकल्प मोह से बंधा होता है। राग-रस भरा होता है विकल्प और कभी द्वेष की जलन होती है। कभी राग-रस होता है कभी द्वेष के अंगारों पर सिकता है। तो कभी राग में पकता है यही तो है विकल्प और क्या है?

हे राम! तू कितना प्रज्ञावान पुरुष होने के बाद भी सोने की हिरणी के पीछे दौड़ रहा है? ओहो! तेरे विकल्प ने तेरी सीता को खो दिया।

हे लक्ष्मण! तू भी कैसा प्रज्ञाहीन हो गया जरा से शंखनाद में पहचान भी नहीं पाया राम के स्वरूप को।

**प्रिय आत्मन् !**

कैसे होते हैं विकल्प कोटि सम्पत्ति का स्वामी नदी की बाड़ में एक लकड़ी को पकड़ रहा है। राजा ने देखा और कहा- जाओ उसकी मदद करो। राजन्! मेरे पास सबकुछ है। मात्र मैं एक बैल चाहता हूँ। जाओ मेरे राज्य में से कोई भी बैल ले लो। महाराज्। आपके राज्य में मेरे बैल जैसा बैल नहीं मिलेगा। राजा ने कहा तुम जैसा चाहोगे मेरा वचन है मेरे राज्य में तुम्हे बैल मिल जायेगा। पहले नमूना दिखाया सोने का बैल था। राजा कहता है- धिक्कार हो तेरी तृष्णा को। एक और कहानी सुनिए-

बेटे मैं दूसरे गाँव जा रहा हूँ एक व्यक्ति ने कहा – तुम मजदूरों से सलाईयाँ ले लेना। चल दिया लेकिन बेटे ने लोहे की सलाईयाँ समझकर के महँगी नहीं खरीदी। पिता ने यह नहीं बताया था कि इसमें सोना है। पिता आया क्यों बेटे सिलाई खरीदी ? नहीं। ओहो ज्ञानी ! पिता कहता– यदि यह मेरे पैर न होते तो मैं कहीं नहीं जाता और यह सोचकर उसने पैर तौड़ लिये। आज समस्त संसार विकल्पों में उलझा हुआ है। बचपन से लेकर के वृद्ध जनम से लेकर के मृत्यु शय्या तक विकल्प चल रहा है। गर्भ में शिशु आया है माँ को वहीं से विकल्प लग गया है और मृत्यु तक विकल्प चलता है यह विकल्प हम कहाँ से लेकर आये हैं ? और कहाँ पर विकल्प समाप्त होंगे ?

**प्रिय आत्मन् !**

यदि विकल्प समाप्त नहीं हुये तो निर्विकल्प नहीं होंगे। और निर्विकल्प नहीं होंगे तो आत्मा की साधना नहीं होगी। आत्मा की साधना निर्विकल्प दशा से प्रारम्भ होती है। ज्ञान सविकल्प होता है लेकिन उस सविकल्प में भी अशुभ विकल्प तो न आये। कहीं तुम्हारा देव के प्रति अनुराग हो, शास्त्र के प्रति अनुराग हो, गुरु के प्रति अनुराग हो, मंदिर के प्रति अनुराग हो, पूजा के प्रति अनुराग हो, प्रभु पूजा के प्रति अनुराग हो तो हम मान भी जायेंगे कि यह विकल्प हितकारक है। लेकिन जो विकल्प संसार में डाल दे ऐसा विकल्प मत करना। ज्ञानियो ! सुभौम चक्रवर्ती के विकल्प ने उसे नरक में डाल दिया, रावण को सीता के रूप के विकल्प ने नरक में डाल दिया, कितने जीव ऐसे हैं जिनका पतन हुआ मात्र एक विकल्प के कारण और विकल्प अर्थात् विकृत कल्पना, खोटी कल्पना, हम विकल्पों में जीते आये हैं यह विकल्प हमें क्या लौटायेगें ? क्या देंगे ?

**प्रिय आत्मन् !**

जैसे भौंरा एक लकड़ी के अंदर प्रवेश कर जाता है और लकड़ी को छेद डालता है उसी तरह विकल्प बलवान से भी बलवान पहलवान को शक्तिहीन देता है। ध्यान देना ज्ञानी जीवो ! राजा श्रेणिक ने नंदीग्राम वासियों से कहा जाओ इस बकरी को ले जाओ यह बकरी न मोटी हो, न यह बकरी पतली हो। पर ध्यान रखना इसको दिनभर खिलाया जाये, दिन भर भोजन कराया जाये, न यह पतली हो न मोटी हो ? नंदी ग्राम वासी परेशान ऐसा कैसे होगा ? कि दिनभर खिलाया जाये और कोई मोटा न हो। अभयकुमार उसी गाँव में आया था वह कहता है– अरे तुम चिंता क्यों करते हो ? दिनभर खिलाओगे फिर भी मोटा नहीं होगा। अरे क्या उपाय है ? बोले। पिंजरे में शेर है हम इस बकरी को उसी पिंजरे के सामने वाले स्थान पर बांधेंगे शेर के पिंजरे के सामने रखेंगे इसको दिनभर

खिलायेंगे और वह दिनभर खायेगी भी, लेकिन इसके अंदर विकल्प चलते रहेंगे इसलिये कभी मोटी नहीं होगी।

शेर के सामने बकरी को बांधा गया और एक महीने तक बकरी हरी-हरी घास खाती रही सब प्रकार से दिनभर खाती रही लेकिन रात में ज्यों ही शेर के सामने बांध दिया जाता तो रातभर कांपती रहती उसे पिंजरा दिखाई नहीं देता उसे शेर ही सामने दिखाई देता है और उसे लगता है कि शेर कहीं आक्रमण न कर दे यही स्थिति हमारी है मैं दिनभर में तुम्हें जिनवाणी का ज्ञान कराता हूँ और जो यहाँ जिनवाणी का भोजन खिलाया जाता है और तुम जाकर के मोह के शेर के सामने खड़े हो जाते हो इस कारण वह ज्ञान तुम्हे पुष्ट नहीं कर पा रहा है, वह प्रवचन तुम्हें पुष्ट नहीं कर पा रहा है क्योंकि घर परिवार के मोह का शेर जब सामने खड़ा होता है तो गुरु के प्रवचन का भोजन उस आत्मा को पुष्ट नहीं कर पाता है।

यद्यपि गुरुदेव तुम्हें दिनभर भोजन करा रहे हैं लेकिन इतना करने के बाद भी हम घर परिवार के मोह के शेर के सामने खड़े हो जाते हैं और ज्यों ही वहाँ खड़े हो जाते हैं तो वहाँ वह विकल्प होता है वह विकल्प हमें ज्यों का त्यों रखता है। हम जहाँ थे, वहाँ हैं। जैसे थे, वैसे हैं। एक महीने पहले भी वह बकरी वैसी थी एक महीने बाद भी वैसी है। और हम एक महीने पहले भी वैसे थे एक महीने बाद भी वैसे हैं? मात्र कारण क्या है? क्या बकरी को भोजन नहीं मिला? भोजन तो पूर्ण मिला। क्या खिलाने वाले ने भोजन नहीं कराया? कराने वालें ने तो कराया है। लेकिन उस बकरी के मन में एक विकल्प था। तूने गलत विकल्प लिया शेर तो पिंजरे में कैद था। शेर बकरी को नुकसान पहुँचा ही नहीं सकता था लेकिन बकरी के मन में एक धारणा थी कि मुझे शेर खा जायेगा।

ज्ञानियो! वह द्रव्य अपने स्थान पर है, यह द्रव्य अपने स्थान पर है लेकिन इस द्रव्य के मन में उस द्रव्य को देख देखकर के विकल्प हो रहा है, होता है। बड़े व्यापारी की दुकान को देखकर भी छोटे व्यापारी को विकल्प होने लगता हैं और यही विकल्प उसके व्यापार की हानि कराता है।

यद्यपि मेरी दुकान पर बहुत ग्राहक हैं लेकन सामने वाली दुकान पर थोक ग्राहक चला गया ओहो! विकल्प हो गया।

**प्रिय आत्मन् !**

आचार्य कहते हैं संक्लेश मत करो, आयु कम होती है। जो विकल्प करता है, वह बिना मौत के मरता है। अपने हाथ से अपनी आयु कम करता है इसलिये कभी भी विकल्प नहीं करना चाहिये। विकल्प करने से आयु घटती है, भोजन अपना रस नहीं देता, भोजन अपना फल नहीं देता।

विकल्प को नष्ट करने का उपाय एक ही है– विशेषता में मत जाओ। अंग्रेजी भाषा के अंतिम तीन अक्षर याद रखो।

**X Y Z**

**देखो।**

**जानो।**

**जाने दो।**

**''विकल्प छोड़ो।**

**सुख से जिओ।''**

****

# कर्मबंध एवं कर्मफल

**निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो, न कोऽपि कस्यापि ददाति किंचन।**
**विचारयन्नेवमनन्य मानसः, परो ददातीति विमुश्च शेमुषीम्॥ 31॥**

**भावार्थ** – अपने उपार्जित कर्मों के अलावा कोई भी प्राणी किसी को सुख या दुःख नहीं देता है ऐसा विचार कर, हे आत्मन्! तू एकाग्रचित्त हो और 'दूसरा देता है' इस बुद्धि को छोड़ कर, इस प्रकार विचार करने से किसी के प्रति रागद्वेष नहीं होता है।

**यैः परमात्माऽमितगतिवन्द्य, सर्व विविक्तो भृशमनवद्यः।**
**शश्वदधीतो मनसि लभन्ते, मुक्तिनिकेतं विभववरं ते॥ 32॥**

**भावार्थ** – जो परमात्मा अपरिमित ज्ञानी हैं अथवा अमितगति आचार्य के द्वारा वंदनीय हैं सर्व पदार्थ से भिन्न हैं और पूर्ण निर्दोष हैं उनका जो निरन्तर मन से चिन्तन करते हैं वे भाग्यशाली सर्वश्रेष्ठ वैभव वाले मोक्ष महल को प्राप्त करते हैं।

**प्रिय आत्मन् !**

सामायिक के क्षणों में सामायिक करें। समता धरें। हमारा जीवन सदा समतामयी बन जाये तो फिर कैसा रहे? यदि समता धारण करने से शांति मिलती है तो वह समता अखण्ड बनी रहने के लिये ऐसा क्या उपाय है?

**''मैं विकल्प की कीलों पर,**
**मूर्छाओं के टीलों पर।**
**चिंतातुर हो बैठा हूँ,**
**फिर भी मद में ऐठा हूँ॥**

विकल्प कीलों की तरह चुभा करते हैं, वे विकल्प या तो अज्ञान से आते हैं या मेरे मोह से आते हैं।

**प्रिय आत्मन् !**

अखिल विश्व के दर्शनों में जैन दर्शन एक महत्त्वपूर्ण दर्शन है। जिस जैन दर्शन में कर्म सिद्धांत की गंभीर एवं विशद विवेचना की गयी है। कर्म सिद्धांत को पूर्णतया सत्य मानने वाला यदि कोई दर्शन है तो वह जैन दर्शन है।

प्रिय चैतन्य आत्माओ "**मैं**" इस शब्द के परिचय से आत्मा का बोध हो जाता है। कर्म सिद्धान्त इसमें स्वीकारना पड़ता है कि एक डोली में बैठा है। और दो डोली को ले जा रहे हैं। एक व्यक्ति डोली में बैठा है। और दो व्यक्ति अपने कंधे पर डोली को ले जा रहे हैं। एक व्यक्ति रिक्शा में बैठा है और एक व्यक्ति रिक्शा को चला रहा है। एक व्यक्ति हाथी पर बैठा है और एक महावत बिठा के ले जा रहा है।

**प्रिय आत्मन् !**

कहीं न कहीं, कोई कारण अवश्य होगा। ये अंतर क्यों ? आप शिखर जी की यात्रा पर जाते हैं। डोली वाले डोली लेकर चलते हैं। यात्री डोली में बैठते हैं ये अंतर क्यो ? एक श्रीमान् है, एक निर्धन है, एक उच्च कुल में है, एक निम्न कुल में है, एक जन्म से रोगी है, एक जन्म से निरोगी है,

**प्रिय आत्मन् !**

यह विभिन्नता मात्र कर्म की देन है। कर्म को ही विधि कहो, कर्म को ही विधाता कहो, कर्म को ही ईश्वर कह दो लेकिन वह दूसरा ईश्वर नहीं है। तुम्हारे साथ जो अनुकूल या प्रतिकूल घटता है वह अपने ही द्रव्य कर्म-भाव कर्म की देन हैं। भावकर्म और द्रव्यकर्म क्या है ? पौद्‌गलिक कर्मों में फल दान की शक्ति है उस अज्ञान आदि का नाम भावकर्म हैं।

**प्रिय आत्मन् !**

**कर्म आठ होते हैं।**

1. ज्ञानावरण।
2. दर्शनावरण।
3. वेदनीय।
4. मोहनीय।
5. आयु।
6. नाम।
7. गोत्र।
8. अंतराय।

**''पीड़ा लक्षण परिणामो दुःखम्।''**

कर्म- सुख और दु:ख देना जिसका स्वभाव है उसे कर्म कहते हैं।

अथवा

ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय, मोहनीय, अंतराय ये चार घातिया कर्म कहलाते हैं। क्योंकि ये जीव के श्रद्धा, दर्शन, सम्यक्त्व आदि गुणों का घात करते हैं। वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र ये चार कर्म अघतिया कर्म कहलाते हैं। क्योंकि ये चार कर्म जीव के गुणों का घात नहीं करते हैं। आठ कर्मों में पहला कर्म ज्ञानावरणीय है- जो कर्म आत्मा के ज्ञान गुण को ढकता है, आच्छादित करता है, रोकता है वह ज्ञानावरणीय कर्म है।

जैसे:- प्रतिमा पर आवरण डाल दिया, चित्र पर आवरण डाल दिया वैसे ही जो ज्ञान पर आवरण डालता है उसे ज्ञानावरणीय, कर्म कहते हैं। दर्शनावरणीय कर्म- जो कर्म आत्मा के दर्शन गुण को ढकता है उसे दर्शनावरणीय कर्म कहते हैं। जैसे:- राजा का द्वारपाल राजा का दर्शन नहीं होने देता है, या रोकता है उसी तरह से जो कर्म आत्मा के दर्शन गुण को रोके, ढके उसे दर्शनावरणीय कर्म कहते हैं।

जो सुख और दु:ख का वेदन कराये उसे वेदनीय कर्म कहते हैं। जैसे:- शहद लपेटी तलवार कोई चाटे तो पहले मीठी लगेगी लेकिन जीभ कटेगी ऐसे ही वेदनीय कर्म है जो कभी सुख देता है, तो कभी दु:ख देता है।

जो मोहित करता है, भ्रमित करता है, भुला देता है, आत्म स्वरूप को भुला दे वह मोहनीय कर्म हैं। जैसे:- कोई जीव मदिरा पान कर लेता है तो वह अपने स्वरूप को भूल जाता है वैसे ही मोहनीय कर्म के कारण जीव आत्म-स्वरूप को भूल जाता है। और पर को अपना मान बैठता हैं।

जो कर्म प्राणी को निश्चित समय तक एक भाव में रोके रहे उसे आयु कर्म कहते हैं। जैसे:- सांकल, जंजीर, हथकड़ी व्यक्ति को निश्चित समय तक रोके रहती हैं उसी तरह से आयु कर्म एक भव में निश्चित समय तक रोके रखता हैं।

जो कर्म नाना प्रकार की संरचना करता है वह नाम कर्म है। हमारे शरीर आदि की जो रचना है यह सब नाम कर्म की देन है। भले ही आप कहें यह तन माता-पिता ने रचा है, किन्तु ये भ्रान्ति है। मूल तो नाम कर्म आपका है। यही कारण है कि तन नाम कर्म उदय से रचा। नामकर्म की तेरानवें प्रकृतियाँ होती हैं। जैसे:- चित्रकार नाना प्रकार के चित्र बनाता है। वैसे ही नाम कर्म नाना प्रकार

की संरचनायें कर देता है। कोई काला है, कोई गोरा है, कोई त्रस पर्याय में है, कोई स्थावर पर्याय में है। यह सब नाम कर्म की अवस्थायें हैं।

संतान परम्परा से चले आये आचरण को गोत्र कहते हैं। जहाँ उच्च आचरण होता है उसे उच्च गोत्र कर्म कहते हैं। जहाँ निम्न आचरण होता है उसे निम्न गोत्र कर्म कहते हैं। जैसे:- कुम्भकार अपने हाथों से कोमल मिट्टी के छोटे घड़े बना देता है। बड़े बना देता है। छोटे-बड़े का आकार देता हैं। वैसे ही यह गोत्र कर्म कभी नीचकुल में ले जाता है कभी उच्च कुल में ले जाता हैं।

जो कार्य में विघ्न डालता है, जिस कर्म के उदय से दान, भोग, उपयोग आदि कार्य में विघ्न पड़ता है वह अंतराय कर्म है। यह अंतराय कर्म ठीक वैसा ही है। जैसे:- दाता दान देना चाहता है फिर भी भण्डारी के मन में यह इच्छा होती है कि मेरा भण्डार खाली न हो जाये तो वह दान देने में बाधा उपस्थित करता है।

**प्रिय आत्मन् !**

ज्ञानावरणीय कर्म की पाँच प्रकृतियाँ। दर्शनावरणीय कर्म की नौ प्रकृतियाँ। वेदनीय कर्म की दो प्रकृतियाँ। मोहनीय कर्म की अट्ठाईस प्रकृतियाँ। आयु कर्म की चार प्रकृतियाँ। नाम कर्म की तेरानवें प्रकृतियाँ। गोत्र कर्म की दो प्रकृतियाँ। अंतराय कर्म की पांच प्रकृतियाँ। इस तरह से आठ कर्मो की एक सौ अड़तालीस कर्म प्रकृतियाँ होती है। एक सौ अड़तालीस प्रकार के कर्मों के स्वभाव हैं।

जैसे:- नीम का स्वभाव कड़वा हैं ऐसे ही नाना प्रकार के स्वभाव अपने-अपने नाम के अनुसार भिन्न-भिन्न होते हैं।

**प्रिय आत्मन् !**

जैसे:- ज्योतिष को जानकर के हम जीवन में सुधार कर सकते हैं वैसे ही कर्मो के विषय में जानकर के हमें आगे कैसा कर्म करना हैं वैसे ही कर्मों के विषय में जानकर के हमें आगे कैसा कर्म करना है। उसके विषय में जान सकते हैं। कर्म सिद्धान्त को जानने का फल यह है कि यह कर्म जितना भी मेरे जीवन में जुड़ा है, वह मेरी निजी संपत्ति है। इसमें किसी का हिस्सा-बांट नहीं है। चाहे मेरा सुख हो, चाहे मेरा दुख हो, मेरे सुख-दुख में किसी का कोई हिस्सा बांट नहीं है। मेरे स्वयं के परिणामों की कमाई मेरा कर्म है। जीव जो भाव बनाता है, वह भाव कर्म होता है। भाव कर्म के अनुसार द्रव्यकर्म का आगमन होता है। द्रव्य कर्म कार्माण शरीर में संयुक्त होता जाता है।

जैसे-: आप बेटे को पैसे देते हैं। वह गोलक में डालता जाता है उसी तरह से नाना प्रकार के भावों से आया हुआ द्रव्य कर्म कार्माण शरीर में मिलता जाता है।

**प्रिय आत्मन् !**

जैसे:- आप अपना घर बदलते हैं। तो बेटा भी अपनी गोलक साथ में ले जाता है। वैसे ही यह आत्मा कार्माण शरीर को साथ में ले जाती है। कार्माण शरीर के साथ आत्मा जाती है। और कार्माण शरीर ही शेष शरीरों को उत्पन्न करता है। औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस शरीर कार्माण शरीर कर्म हैं।

**प्रिय आत्मन् !**

कर्म कौन देता है? कौन लेता है? कर्म न कोई देता है, न कोई लेता है। मेरे विभाव परिणाम, मेरा अज्ञान, मिथ्यात्व, अवरति, प्रमाद, कषाय, योग, यह पांच प्रत्यय हैं। इन पांच कारणों से अथवा दो में कहो तो कषाय और योग इन कारणों से जीव स्वयं कर्म का बंध करता है।

शुभ कर्म करने से शुभ फल पाता है। जीव अशुभ कर्म करने से अशुभ फल पाता है। जब व्यक्ति शुभ कर्म करता है तो स्वर्ग की ओर जाता है। जब अशुभ कर्म करता है तो नरक की ओर जाता है। नरक कोई नहीं ले जाता, स्वर्ग कोई नहीं ले जाता है। अपनी ही करनी, अपने ही परिणाम जीव को स्वर्ग नरक ले जाते हैं। इसमें न माता-पिता कुछ कर सकते हैं, न भाई-बन्धु-सखा कुछ कर सकते हैं।

यदि मेरे परिणाम नहीं सुधरते हैं, तो मेरा परिवार मुझे स्वर्ग नहीं ले जा सकता है। और मेरे परिणाम बिगड़ते हैं तो कोई तीर्थ क्षेत्र भी मुझे स्वर्ग नहीं ले जा सकता है। इसलिये यह परम सत्य मानना होगा कि सम्हालना है तो अपने भावों को सम्हालो। भव को सम्हालना है तो अपने भावों को सम्हालों। भावों को सम्हालना ही सर्वोत्कृष्ट साधना है। परिणामों को सम्हालना ही साधना है।

ज्ञानी पुरुष! वे हैं जो राग-द्वेष से परे होकर जीते हैं। और भावों को सम्हालते हैं। हम अधिकांशत: यह सोचते हैं इन्होंने यह दिया? यह नैमित्तिक संबंध हो सकता है। सूरज का उगना और फूल का खिलना यह निमित्त-नैमित्तिक संबंध हो सकता है। आकाश में बादलों का छाना, गरजना और मयूर का नाचना, निमित्त-नैमित्तिक भी हो सकता है। न फूल के पुण्य उदय से सूरज उगा है मात्र निमित्त है उसी तरह कुछ निमित्त ऐसे मिल जाते हैं जिन्हें हम कह सकते हैं कि कर्म का उदय जब स्वयं का अच्छा होता है तो हमें अनुकूल सामग्री हमें बाहर में उपलब्ध होती है। दूसरी बात

यह है कि कर्म के उदय के काल में यदि ज्ञानी जीव है तो अपनी बुद्धि अनुकूल कर लेता है और **''अनुकूल बुद्धि के कारण प्रतिकूल सामग्री भी उसे बाधा नहीं पहुँचा पाती है।''** और अज्ञानी जीव अनुकूल सामग्री मिलने पर भी प्रतिकूल विचार कर लेता है इसलिये वह अनुकूल सामग्री उसे दुख पहुँचाती है।

**प्रिय आत्मन् !**

पुण्य के उदय में भी हम अज्ञान और मोह के वश होकर सुख को नहीं भोग पाते हैं। कर्म मेरी निजी पूँजी है। इसलिये कभी यह मत कहो कि यह कैसे हैं? बेटी तेरा स्वयंवर हुआ, तूने स्वयं ही वर को वरा है। तो फिर क्यों कहती है कि मेरा वर बुरा है? तूने ही वरा है। अब अच्छा हो सो तेरा है, और बुरा हैं सो तेरा है। उसी तरह से हे ज्ञानी पुरुषों! कर्म तूने ही वरा है। संसार के मंडप में आकर के तूने स्वयं कर्म को वरा है।अब क्यों कहता है कि कर्म बुरा है। जो है, उसे समता से भोग ले और कर्म को छोड़ दे।

**प्रिय आत्मन् !**

राजा श्रेणिक ने मुनिराज यशोधर पर उपसर्ग किया तैतीस सागर की आयु का बंध किया उसे बाद में पश्चाताप हुआ मुनिराज को नमस्कार करते हुये निंदा, गर्हा की फलश्रुति यह हुयी कि तेतीस सागर का बाँधा हुआ कर्म मात्र चौरासी हजार वर्ष शेष रह गया, यह है अपकर्षण। बड़ी हुयी राशि को घटा देने का नाम है अपकर्षण। छोटी राशि को बडा देना यह है उत्कर्षण। कभी हम अपराध कम करते हैं लेकिन दण्ड अधिक पा लेते हैं।

एक विद्यार्थी ने स्कूल में अपराध छोटा किया टीचर ने खड़ा किया शांत खड़ा ही रहता तो टीचर बिठा देते हैं लेकिन कहता सर वो भी ऐसा कर रहें हैं। यह नाना प्रकार के विकल्प करके टीचर के मन में संक्लेश पैदा कर देता है और स्वयं संक्लेश के कारण कई गुने दण्ड का पात्र बन जाता है। इसी तरह से उत्कर्षण भी हो जाता है, अपकर्षण हो जाता है। अशुभ भावों से शुभ का अपकर्षण हो जाता है।

इसी भव में परभव को दिखा देने वाला कोई दर्शन है तो जैन दर्शन है। यह जैन दर्शन बता देता है कि जीव जिस परिणाम के साथ मरण करता है, जिस लेश्या के साथ मरण करता है, अग्रिम भव में उसी लेश्या के साथ जन्म को प्राप्त होता है। जिस लेश्या के साथ जन्मा है उस लेश्या के साथ नहीं मरेगा लेकिन जिस लेश्या के साथ मरण करता है उसी लेश्या के साथ जन्मता है। जहाँ जो लेश्या होती है

आप वहाँ पैदा होंगे। यदि मृत्यु के समय हमारी कृष्ण लेश्या है, तो हम कृष्ण लेश्या वाले ही स्थान पर पैदा होंगे। यदि हमारी शुक्ल लेश्या है तो हम शुक्ल लेश्या वाले ही स्थान पर पैदा होंगे।

**प्रिय आत्मन् !**

पुण्य और पाप से लिप्त जीव की कषायों से अनुरक्त प्रवृत्ति लेश्या होती है। कर्म का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि अनादि काल से हम जिसे करते आये हैं और जब तक करते रहेंगे तब संसार में घूमते रहेंगे। यद्यपि कहा जाता है कि कर्म बड़ा बलवान है किन्तु इसे मैं पूर्णतया स्वीकार नहीं करता हूँ क्योंकि –अनंतानंत सिद्ध परमात्मा कर्मों को पराजित कर निष्कर्म बने हैं। जिन्होंने दर्शन मोहनीय को पराजित किया हैं वे मंदिर में बैठे हैं। जिन्होंने अनंतानुबंधी, क्रोध, मान, माया, लोभ को पराजित किया है वे हमारी आँखों के सामने बैठे हैं और जिन्होंने अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान को पराजित किया है हम उनकी आँखों के सामने बैठे हैं।

जिन्होंने अनंतानुबंधी और मिथ्यात्व को जीता है वे श्रावक हमारी आँखों के सामने हैं। और जिन्होंने अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान को जीता है वे साधु हमारे सामने हैं। कर्मों पर जितनी–जितनी विजय प्रकट की जाती है वैसे–वैसे व्यक्ति उच्च अवस्था को प्राप्त होता जाता है। जब चार घातिया कर्मों पर विजय मिलती है तो जीव, पाँच हजार धनुष ऊपर पहुँचता है। और जब आठ कर्मों को जीतता है तो लोक शिखर पर पहुँच जाता है। यदि दूसरे के कर्मों का फल मुझे मिलने लग जाये तो मेरा स्वयं का किया हुआ कर्म निरर्थक हो जायेगा। जो व्यक्ति भोजन करता है पेट उसी का भरता है ऐसा नहीं होता कि भोजन पिताजी करें और पेट पुत्र का भर जाये? भोजन पिता जी करते हैं तो पेट पिताजी का ही भरता है, पुत्र का नहीं। इसी तरह जो कर्म करता है, फल उसी को मिलता है। इसलिये हमें यह देखना चाहिये कि मैंने जो भी किया जाता है, अपने ही पूर्व कर्मों का फल पाया है। यदि आज मैं जैन कुल में आया हूँ, श्रावक कुल में आया हूँ तो यह मेरे उत्तम कर्म का फल है। पुण्य है। आज मैं जितने भी उत्तम कार्य करूँगा। उनका फल अगले भव में मिलेगा। कर्म चक्र चलता रहता है, कर्मों का फल इस भव में मिल सकता है, इसी दिन मिल सकता है, अभी मिल सकता है, एक क्षण बाद भी मिल सकता है, एक समय का भी आबाधा काल हो सकता है और अगले क्षण में भी मिल सकता है।

**प्रिय आत्मन् !**

आपने एक खेल देखा होगा घोड़ा जमाल खाये, पीछे देखे मार खाये, जब भी पीछे देखा पिटाई होगी। यही तो कर्म है तत्काल का तत्काल कर्म फलता है।

**प्रिय आत्मन् !**

जो दीर्घ दुष्कर्म होते हैं। और महान सत्कर्म होते हैं तो उनके फल लम्बे समय के बाद मिलते हैं। जो छोटे कर्म होते हैं जिनकी फल शक्ति कम है कर्म तत्काल फल दे देते हैं। जैसे- किसी मनुष्य ने नरकायु का बंध किया है जब वह मनुष्यायु पूरी व्यतीत कर लेगा तभी तो नरक में जायेगा। लेकिन किसी ने छोटा सा अपराध किया है तो वह तत्काल भी फल पा सकता है। कर्मों की अपनी -अपनी प्रकृति है। कौन से कर्म का आबाधा काल कितना है?

जैसे- एक कोढ़ा-कोढ़ी सागर वर्ष का आबाधा काल सौ वर्ष है, वह सौ वर्ष के बाद फल देगा।

जैसे- वृक्ष के ऊपर लगे कुछ फल पहले पक जाते हैं और कुछ बाद में पकते हैं। वैसे ही कुछ कर्म तत्काल फल देते हैं और कुछ बाद में फल देते हैं। लेकिन वे कर्म अपने ही हैं चाहे फल आज मिला हो या चाहे कल मिले।

**प्रिय आत्मन् !**

बागवान फलों को लाता है। जो फल पके होते हैं उनका प्रयोग करता है और जो फल नहीं पके होते हैं उन्हें पाल में रखकर पका लेता है। उसी प्रकार से ये कर्म होते हैं अपने-अपने समय पर पकते हैं। और इसी के साथ एक विशेषता है कि जो कर्म उदय में ही नहीं आया है उसके साथ आप बहुत कुछ कर सकते हैं। जो शत्रु सामने आ चुका है उससे तो लड़ना ही पडेगा किन्तु जो शत्रु सामने नहीं आया है उससे आप संधि भी कर सकते हैं और हो सकता है कि युद्ध की आवश्यकता ही ना पड़े।

**प्रिय आत्मन् !**

इसी तरक कर्मों के साथ बंध हुआ है ये कोई महत्वपूर्ण नहीं है। कि मैंने जो कर्म किया है वह मुझे भोगना ही पड़ेगा? जरूरी नहीं।

ज्ञानी जीव! जो सामने आ गया हो या जो थाली में रखा है उसे तो खाना ही पडेगा लेकिन जो बर्तन में रखा है या जो बोरे में रखा है उसे तो तो नहीं खाने की चर्चा करते हो? जो बोरे में रखा है उसे तो नहीं खाने की चर्चा करते हो? जो बोरे में रखा गेहूँ है उसके बारे में सोचना अनावश्यक है मगर तो भोजन थाली में परोस दिया गया है उसके बारे में सोचते अवश्य हो कि इसे खा लेना

चाहिये। बोरे में जो रखा है वह सत्ता में है। थाली में जो रखा है वह उदय है। सत्ता में पड़ा है बोरे में पड़ा हुआ गेहूँ है, टीन में रखा हुआ आटा। सत्ता में पड़ा अभी उदय में नहीं आया है और तो थाली में आ गया है वह उदय में आ गया है। जो कर्म उदय में आ गये हैं उन्हें भोगना तो आवश्यक है मगर जो सत्ता में है उन्हें भोगना आवश्यक नहीं है। क्यों ? कल गेहूँ की रोटी मिली, परसों बेसन के भजिये बनाये ये अंतर क्यों आ गया ? सत्ता में पड़ा है तुम जैसा चाहोगें वैसा ला सकते हो और नहीं बनाना हो तो नहीं बनायेगें। चार दिन के लिये बाहर चले गये ताला डाल दिया नहीं बनाया भोजन।

**प्रिय आत्मन् !**

कर्म मेरा है, जब तक सत्ता में हैं। तब तक हम कुछ भी परिवर्तन कर सकते हैं। उसी आटे से हम रोटी भी बना सकते हैं, उसी आटे से हम पूड़ी भी बना सकते हैं, उसी आटे से हम दाल-बाटी बना सकते हैं क्योंकि अभी वो सत्ता में है। लेकिन बाटी बनने के बाद अगर आप चाहो कि आटा बन जाये तो नहीं बन सकता क्योंकि उदय में आ चुका है जब तक कर्म उदय में नहीं आया है तब तक हम उस कर्म को परिवर्तित कर सकते हैं। अगर ऐसा नहीं होता तो फिर तपस्या करने का क्या प्रयोजन होता ?

**जैसे**- अभी आपके घर में चार अतिथि आये थे तो आपने चार लोगों का भोजन बनाया था। लेकिन पीछे से चार और आ जाते हैं तो उसी आटे में थोड़ा आटा और मिला देते हैं उसी दाल में थोड़ी दाल और मिला देते है इससे आठ लोगों का भोजन तैयार हो जाता।

**ज्ञानी!** उसी तरह से कर्म को हम पहले भी उदय में ला सकते हैं। जब तक कर्म उदय में नहीं आया है। तब तक आप कुछ भी परिवर्तन करो, घटाओ, बढ़ाओं ये स्वयं के विवेक पर निर्भर है।

**जैसे**- आपने तो गृह में सामग्री लाकर रख दी। गृहणी पर निर्भर करता है कि कितनी सामग्री किस मौसम में, किस प्रकार प्रयोग करनी है। उसी तरह कर्म सत्ता में पड़ा है, पूर्व का लाया हुआ है तो ये तुम्हारे ज्ञान और विवेक पर निर्भर करता कि उस कर्म का किस प्रकार उपयोग करते हैं ? ध्यान देना-

दूसरे का किया हुआ कर्म मेरे पास नहीं है। मेरा किया हुआ कर्म ही मेरे पास है। यदि दूसरे का दिया हुआ कर्म फल देने लग जाये तो मेरे द्वारा किये हुये कर्म का फल निष्फल हो जायेगा। क्या यह भी हो सकता है कि रसगुल्ला कोई खाये और मीठा किसी और को लगे ? तो ऐसा नहीं हो सकता। उसी प्रकार बीमारी किसी व्यक्ति को हो और औषधि कोई और ले रहा है तो फल नहीं मिलेगा। कर्मों के साथ भी यही है जिसका कर्म है, फल भी उसी को मिलेगा।

एक फिल्म दस कलाकारों द्वारा बनायी और देखने वाली छह अरब जनता पाप को करती है तथा फल को भोगती है। क्योंकि करने वाले भले ही दश हैं लेकिन उसकी अपुमोदना करने वाले जितने होते हैं वे भी उसके सहभागी बनते हैं।

एक व्यक्ति कर्म करता है। और हजार व्यक्ति फल भोगते हैं। जब हम अच्छे की अनुमोदना करते हैं तो वह भी हमारा कर्म है और जब हम बुरे की अनुमोदना करते हैं तो वह भी हमारा ही कर्म है। इसलिये कृत कर्म को भी स्वीकारना चाहिये। कारित को भी स्वीकारना चाहिये। अनुमोदना को भी स्वीकार करना चाहिये। ऐसा नहीं है कि कृत ही मेरा कर्म है। ऐसा जानकर के निर्णय सत्य कर पाओगे।

**प्रिय आत्मन् !**

इस सिद्धान्त को जानने वाला व्यक्ति रोता नहीं है, बिलखता नहीं है,। सिद्धान्त को जानने वाला सिद्धान्त को जानता है यदि यह सिद्धान्त घर-घर में लागू हो जाये तो सास को बहू से कोई शिकायत ना हो। और बहू को सास से ना कोई शिकायत हो। पिता को पुत्र से कोई शिकायत नहीं होगी और पुत्र को पिता से कोई शिकायत नहीं होगी। जिसके भाग्य में जितना होता है, उतना ही मिलता है। उससे आगे कोई किसी को कुछ नहीं देता है। आत्मा स्वयं मात्रा विशेषज्ञ है। आत्मा जानती है कितना मिलना चाहिये, उतना ही मिलता है।

**प्रिय आत्मन् !**

कर्म सिद्धान्त की जड़ हमारी मजबूत होनी चाहिये। राम स्वीकार करते हैं मुझे दशरथ ने वनवास नहीं दिया है। मुझे मेरे कर्मों ने वनवास भेज दिया है। भला होना होगा, तो जंगल में भला हो जायेगा। और बुरा होना होगा तो राज्य में भी बुरा हो जायेगा।

इसलिये यदि शांति चाहिये, सामायिक का सार चाहिये,। जीवन का सार चाहिये, समता चाहिये तो कर्म सिद्धान्त का प्रतिपालन करते चलो वरना दूसरों को दोष देते-देते लेते-लेते पहले से कर्म बंध हो रहा था अब दूसरे को दोष देने का अन्य कर्म किया। वर्तमान को बुरा कर लिया तीनों काल बिगाड़ लिये। पूर्वकाल अशुभ था। वर्तमान में किसी को दोष दिया और वर्तमान को बुरा कर लिया तो भविष्य काल अपने आप बुरा हो गया। इसलिये तीनों कालों को मंगल बनाने के लिये इतना ध्यान रखो कि पुराना कर्म उदय में आ रहा है उसे समता से सह लो और आगे बढ़ जाओ। जिस प्रकार रास्ते में चलते हैं। बस आती है, तुम ठहर जाते हो। उसी प्रकार कर्म उदय में है, थोड़ा ठहरो, उसे निकल जाने दो, तुम पीछे से निकल जाओ।

**प्रिय आत्मन् !**

**''दुर्घटना से देर भली''।**

कर्म को ही बलवान मत समझो। बलवान तो तुम हो। लेकिन अपनी प्रज्ञा को समझो कर्म मैंने किये हैं तो उसे निष्कर्म भी मैं ही कर सकता हूँ। जिन हाथों से रोटी बना सकता हूँ उन्हीं हाथों से बाटी भी बना सकता हूँ। जिन हाथों से दाल बना सकता हूँ उन्हीं हाथों से भात बना सकता हूँ। सब तुम्हीं पर निर्भर है।

उसी प्रकार अच्छे कर्म अच्छी प्रज्ञा पर निर्भर करते हैं। और बुरे कर्म करना बुरी प्रज्ञा पर निर्भर हैं। इसलिये अपना ज्ञान चारित्र सँभालो प्रत्येक कर्म सँभलता जायेगा। यदि ज्ञान चारित्र नहीं सँभालोगें तो प्रत्येक कर्म बिगड़ता जायेगा। इसलिये हम तत्व को भली भाँति समझें कि कोई दूसरा कर्म नहीं देता है। राम को वनवास किसी और ने नहीं दिया। अंजना को घर से निकाला किसी और ने नहीं दिया है।

हे अंजना! तुझे सास ने नहीं निकाला। ये तेरा अपना कर्म है। अंजना! तूने अगर पूर्व भव में प्रतिमा को नहीं छिपाया होता तो आज केतुमती तुझे घर से नहीं निकालती। सबके जीवन चरित्र को उठा के देखो पूर्व जन्म से जुड़े हुये हैं।

**''जैसा जिनका पूर्व जनम है।**
**वैसा उनका वर्तमान है।।**
**जैसा जिनका वर्तमान है।**
**वैसा उनका भविष्य बनेगा।।''**

**प्रिय आत्मन् !**

अच्छे कर्म को तैयार रहो। बुरे कर्म को छोड़ो और निष्कर्म बनने का उपाय करो। कैसे निष्कर्म बन सकते हैं? यह चिंतन करने वाले पुरूष मुक्ति निकेतन को प्राप्त कर लेते हैं। और निज विभव को प्राप्त करते हैं।

****

# शांतिधारा

**इति द्वात्रिंशतावृत्तैः, परमात्मानमीक्षते।**
**योऽनन्यगत चेतस्को, यात्यसौपदमव्ययम्॥33॥**

**भावार्थ** - इस प्रकार इन बत्तीस छंदों से जो एकाग्रचीत होकर परमात्मा का चिंतन करता है वह अविनाशी मोक्ष पद को प्राप्त कर लेता है।

**प्रिय आत्मन् !**

माँ जिनवाणी, जग कल्याणी, अरिहंत भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य आचरित, उपाध्याय उपासित, सर्वसाधु साधित, जीव तत्त्व प्रबोधिनी, अजीव तत्त्व विवेचनी, सर्वास्रव निरोधनी, कर्म बंध विमोचनी, संवर पथ प्रदायनी, निर्जरा निर्झरणी, मोक्ष महल धारणी, पाप-ताप-संताप हारिणी विश्व कल्याण कारिणी, माँ जिनवाणी की आराधना देवहेधि-देव श्री शांतिनाथ स्वामी के पादमूल में हम करने जा रहे हैं। यह हमारा परम सौभाग्य हैं। आज हे शांतिनाथ प्रभु! हम एक प्रश्न लेकर आये हैं? शांति कहाँ हैं? शांति कैसे मिलती है? बचपन से लेकर अब तक मैंने शांति को पाने का प्रयत्न किया मेरे जीवन का प्रत्येक कर्म शांति के लिये हैं।

चाहे मेरा व्यापार हो, चाहे मेरा घर संसार हो, मेरा उद्देश्य शांति को पाना हैं किन्तु मैंने आज तक आत्म शांति नहीं पायी इसलिये हे प्रभु! शांतिनाथ देव आपके श्री चरणों में मैं जिज्ञासा लेकर आया हूँ। शांति की प्राप्ति कैसे हो? कृपया समाधान दो।

**प्रिय आत्मन् !**

आप सभी शांति चाहते हैं। मैं भी शांति चाहता हूँ। संसार का प्रत्येक जीव आत्म शांति चाहता है, तीन लोक में जितने भी जीव हैं मात्र शांति चाहते हैं और अशांति को दूर हटाना चाहते हैं,

किन्तु पाते अशांति हैं इसलिये आज हम शांति के नायक, शांति के विधायक, शांति के ईश्वर, शांतिनाथ के श्री चरण में शांति का रहस्य, शांति का समाधान पाने आये हैं।

**प्रिय आत्मन् !**

द्रव्य, गुण, पर्याय विवेचन समझो, जैन दर्शन का मनोविज्ञान, जैन दर्शन का तत्त्व विज्ञान, जैन दर्शन का आगम विज्ञान, जैन दर्शन का जीव विज्ञान यह कहता है संसार में यदि कुछ है तो तीन ही चीजे हैं –

(1) **द्रव्य।**

(2) **गुण।**

(3) **पर्याय।**

इसके अलावा संसार में कुछ है ही नहीं, जो पर्याय है, वह गुणों की है। जो गुण है, वह द्रव्य में है। इसलिये मूल रूप से संसार यदि कुछ है तो छः द्रव्यों का नाम संसार है।

छह द्रव्यों में भी मूल दो भेद हैं। जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य। मुझे यह जानना है जिस वस्तु को पाना है वह वस्तु कहाँ मिलती है? उस वस्तु का उत्पत्ति स्थान क्या है? उस वस्तु का निर्माण स्थल क्या हैं? जिस वस्तु को मैं पाना चाहता हूँ उस वस्तु का उत्पत्ति स्थान क्या है? वह वस्तु किसके पास है? उस वस्तु का मालिक कौन है?

यदि यह पता चल जाये तो हम उस वस्तु को आसानी से पा सकते हैं। यदि हमें यही पता नहीं है कि वह वस्तु कहाँ उत्पन्न होती है? कैसे निर्मित होती है? उसका मालिक कौन है? तो आप छोटी सी भी वस्तु नहीं पा सकते हैं। आप अपने व्यापार में यह देखते हैं कि यह वस्तु किस कम्पनी की है, कहाँ मिलती हैं, कहाँ मिलेगी और वहाँ जाकर के ले आते हैं।

मैं शांति के विषय में एक प्रश्न करता हूँ कि शांति क्या हैं? शांति द्रव्य है, कि गुण है कि पर्याय है? जैसे– यह पेन है तो यह पुद्‌गल द्रव्य की पर्याय है। यह पुस्तक है, यह पुद्‌गल द्रव्य की पर्याय है। यह माइक पुद्‌गल द्रव्य की पर्याय है।

इसी तरह शांति जो है वह क्या है? मैं आपको शांति के निकट ले जा रहा हूँ। शांति क्या है? शांति गुण है। गुण है तो किस द्रव्य का गुण है? द्रव्य छह होते हैं। जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल इन छः द्रव्यों में से शांति पुद्‌गल द्रव्य का गुण नहीं है। धर्म, अधर्म, आकाश, काल द्रव्य, का भी गुण नहीं है। एक मात्र जीव द्रव्य ही ऐसा शेष है जिसका गुण शांति है।

**''द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः।''**

जो द्रव्य के आश्रय से रहता है उसे गुण कहते हैं। गुण की यही विशेषता है कि गुण स्वतंत्र नहीं होता है जैसे- दीवाल की सफेदी दीवाल के आश्रित है उसी तरह शांति गुण है और वह गुण जीव द्रव्य के आश्रित है। जीव कहो, आत्मा कहो, चेतना कहो यह सभी पर्यायवाची हैं। चेतना का गुण कहो, आत्मा का गुण कहो, जीव का गुण कहो एक ही है।

**प्रिय आत्मन् !**

कुआ का पानी कहाँ मिलेगा ? जैसे- कुआ का पानी कुआ में मिलेगा। वैसे ही आत्मा की शांति आत्मा में मिलेगी। यदि निर्णय सही है तो हम वहाँ तक पहुँचने का प्रयत्न कर सकते हैं। यदि प्यास लगी है और यह निर्णय हो कि पानी पीने से प्यास बुझती है तो तुम पानी का गिलास उठाओगे। भूख लगी है यदि निर्णय पक्का है कि भोजन करने से भूख मिटती है तभी तुम भोजन ग्रहण करोगे उसी तरह निर्णय हो गया है कि आत्म शांति आत्मा में मिलेगी। घर में नहीं मिलेगी। मन्दिर में नहीं मिलेगी। बाजार में नहीं मिलेगी। किसी पर्यटक स्थल पर नहीं मिलेगी। विदेश में नहीं मिलेगी लोग इस चिंतन में लगे हैं कि शांति पाना है- चलो तीर्थ वंदना कर आयें, शांति पाना है चलो पर्यटन स्थल घूम आयें। शांति पाना है चलो कोई टी.वी चालू कर लें। शांति पाना है चलो बाजार घूम आयें। यह नाना प्रकार की कपोल कल्पित कल्पनायें तुम्हें तीन काल में शांति नहीं दे सकती। क्योंकि जो चीज जहाँ है वहाँ मिलेगी। जैसे- आम के पेड़ में आम के फल मिलेगें। स्वर्णकार की दुकान पर सोने के आभूषण मिलेगें। लोहकार की दुकान पर लोहे की हथकड़ी मिलेगी।

**प्रिय आत्मन् !**

ध्यान देना- आत्मा की शांति मात्र आत्मा में ही मिलेगी। जो ज्ञान, दर्शनमय है उसे आत्मा कहते हैं।

**''दर्शन, ज्ञान, चारित्राणि अतति इति आत्मा।''**

जो सम्यक् दर्शनमय परिणमन करें, जो सम्यक्ज्ञानमय परिणमन करे, जो सम्यक् चारित्रमय परिणमन करे उसे आत्मा कहते हैं।

**आत्मविभ्रमजं दुःख, मात्मज्ञानात् प्रशाम्यति।**
**नायतास्तत्र निर्वान्ति, कृत्वापि परमं तपः॥ 41॥ स.तं.**

आचार्य पूज्यपाद समाधि तंत्र में लिखते हैं। दु:ख क्या है? आत्मा के प्रति भ्रम होना दु:ख है। अशांति क्या है? आत्मा के प्रति भ्रांति होना अशांति है। और आत्मा के प्रति भ्रांति का निकल जाना शांति है। जहाँ भ्रांति है वहाँ अशांति है। और जहाँ भ्रांति नहीं है वहाँ शांति है।

ध्यान देना जब तक आत्मा के विषय में भ्रम रहेगा तब तक अशांति रहेगी। जिस समय भ्रम निकल जायेगा उसी समय शांति आयेगी।

**''आत्म ज्ञानात्।''**

आत्मा के ज्ञान होने से शांति आती है।

**प्रिय आत्मन् !**

संसार के ज्ञान से शांति नहीं मिलेगी, लौकिक ज्ञान से शांति नहीं मिलेगी, आत्मा में ही शांति मिलेगी। हम पाँच इंद्रियों के माध्यम से बाहर जाते हैं। आँखे बाहर ले जाती हैं, कान बाहर की ओर सुनने ले जाते हैं, नाक बाहर की ओर सूंघने ले जाती है ये इन्द्रियाँ तो बाहर की ओर ले जाती हैं। जब हम पंचेन्द्रिय के विषयों से हटकर के पंचेन्द्रियों के विषयों को विराम देते हैं और अपने आप में लीन होने का प्रयास करते हैं तब भीतर की ओर आते हैं जितना-जितना झुकाव हमारा अपने रूप होगा, भीतर की ओर होगा उतनी-उतनी शांति मिलेगी।

कुआ में से पानी निकालते हैं तो बाल्टी को अंदर डालते हैं और गहराई तक डालते हैं तब कहीं कुआ में से पानी निकलता है उसी तरह आत्मा में से शांति को निकालना है।

जैसे- कुआ में जल भरा है वैसे ही आत्मा में शांति भरी हैं। जो लोग कहते हैं कि मुझे शांति नहीं, मैं कहता हूँ तुम्हें अपने आपका निर्णय नहीं है यदि आत्मा का निर्णय होगा तो आत्मा तो शांति का भण्डार है, शांति का खजाना है, शांति का स्थान है, शांति को पाने आत्मा तक आना है आत्मा के बाहर नहीं जाना, बाहर मिलेगी ही नहीं।

**प्रिय आत्मन् !**

मैंने शांतिनाथ से पूछा है हे भगवन्! शांतिनाथ यह आपकी शांत मुद्रा, यह शांति छवि यह शांत रूपता आपने कहाँ से पायी जरा मुझे भी बताओ तो शांतिनाथ भगवन् बोले! मैं आपको बता के क्या करूगाँ? मैंने कहाँ भगवन्! जो शांति आपने पायी है वही शांति पाने के लिये तो मैं आपके पास आया हूँ आप अपनी शांति मत दो, लेकिन शांति उत्पन्न करने की प्रक्रिया बता दो। मैं दूसरे की शांति नहीं लेना चाहता मैं किसी का उधार नहीं लेना चाहता और यह निर्णय है कि एक द्रव्य

दूसरे द्रव्य को अपना गुण देता नहीं है और दे भी नही सकता तुम जितना भी चाहो अपने बेटे के लिये मकान दे सकते हो, धन दे सकते हो, लेकिन अपने बेटे को शांति नहीं दे सकते हो। क्योंकि पिता की आत्मा अलग है, पुत्र की आत्मा अलग है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को अपना गुण नहीं दे सकता। पिता की आत्मा और पुत्र की आत्मा ये दो द्रव्य है। दो द्रव्य मिल के कभी भी तीन काल में एक नहीं हो सकते।

तुम कितना भी कह लेना कि यह मेरा बेटा है, ये मेरी बेटी है लेकिन भगवान महावीर स्वामी का यह वचन है कि बेटे की आत्मा अलग है पिता की आत्मा है। बेटी की आत्मा अलग है। माँ की आत्मा अलग है बेटी का जीव द्रव्य अलग है माँ का जीव द्रव्य अलग है। पिता का जीव द्रव्य अलग है। पुत्र का जीव द्रव्य अलग है। दो द्रव्य मिलके तीन काल में एक नहीं हो सकते हैं।

यदि यह श्रद्धान पक्का हो गया तो इसी क्षण सम्यक् दर्शन हो जायेगा। भगवान महावीर के समवसरण में ऐसे ही निर्णय परख तत्त्वज्ञान मिलता था दिव्य ध्वनि में। और जीवों को सम्यक् दर्शन होता था। दो द्रव्य मिल के तीन काल में एक नहीं हो सकते हैं। ध्यान रखना तुम कितना भी पत्नि को अपनी पत्नि कहना, कितना भी जीवन साथी कहना, लेकिन पत्नि का आत्मद्रव्य अलग है और पति का आत्म द्रव्य अलग है। दो द्रव्य मिल के कभी एक नहीं हो सकते यह दो कागज तो आप चिपकाकर एक कर सकते हो प्रेशर देकर बहुत सारे कागज एक हो सकते हैं लेकिन दो आत्मायें मिल के भूतकाल न एक हुयी हैं। न वर्तमान में एक हो सकती हैं। न भविष्य काल में एक होगी ऐसा पक्का श्रद्धान रखना कि बेटा! तेरा जीव द्रव्य अलग है, मेरा जीव द्रव्य अलग है।

एक द्रव्य में अंनत गुण होते हैं। मेरी आत्मा में अनंत गुण हैं। और आपकी आत्मा में अनंत गुण हैं। एक गुण की अनंत पर्यायें होती हैं। मेरे गुण की पर्याय अलग है। गुण की पर्यायें अलग हैं। ध्यान रखना–कभी भी बेटे का आत्म द्रव्य पिता का नहीं हो सकता। पिता का आत्म द्रव्य बेटे का नहीं हो सकता। बेटे के गुण पिता को नहीं मिल सकते। पिता की आत्मा का गुण बेटा को नहीं मिल सकता। लेकिन पिता जैसे गुण पुत्र में हो सकते हैं लेकिन पिता के गुण नहीं हो सकते। ध्यान देना– ब्रह्मा के गुण तुममें नहीं हो सकते। ब्रह्मा जैसे गुण तुम में हो सकते हैं।

**''वन्दे तद् गुण लब्धये।''**

हे शांतिनाथ स्वामी! मैं आपके गुण पाने के लिये वंदना नहीं करता। मैं आपके समान गुण पाने के लिये वंदना करता हूँ। ध्यान देना– हे शांतिनाथ! तुम मुझे शांति नहीं दे सकते, क्योंकि तुम वीतरागी हो, दूसरी बात–तुम्हारे पास अनंत शक्ति भी है किन्तु तुम सिद्धालय में विराजे हो और

तुम्हारे ही पास निगोदिया जीव बैठे हैं। तुम अनंत सुख को भोग रहे हो और तुम्हारे पास में ही निगोदिया जीव हैं। जो अनंत दु:ख को भोग रहा है। जब तुम सिद्धालय में रहते हुये अपने पास के निगोदिया जीव को अपनी शांति का एक कण नहीं दे पाये तो मुझे क्या दे पाओगे? मैं आपकी आराधना से शुभ परिणाम बनाकर स्वयं ही सुख पाता हूँ।

सिद्धालय में जहाँ अनंतानंत सिद्ध विराजमान हैं उसी सिद्धालय में निगोदिया जीव भी है किन्तु जहाँ सिद्ध अनंत सुख को भोग रहे है सिद्ध भगवान अपने आत्मा के सुख का एक कण भी एक अणु भी निगादिया जीव को नहीं दे सकते। जब भगवान नहीं दे सकते तो पिता क्या देगा? पुत्र क्या देगा?

**प्रिय आत्मन् !**

मोह की लीला कहती है कि पिता सुख देता है, माँ सुख देती है लेकिन महावीर की वाणी कहती है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कुछ नहीं देता है प्रत्येक द्रव्य स्वाधीन है अणु-अणु स्वयं में लीन है। जैन दर्शन की वस्तु स्वतंत्रता को समझो। कब तक वस्तु स्वतंत्रता समझ में नही आयेगी। ओहो! कभी तुमको दु:ख तो नहीं होता पुत्र बात ना मानता हो? मानता है लेकिन कभी-कभी पत्नि बात न मानती हो? हाँ। लेकिन ध्यान देना- विकल्प नहीं करना क्योंकि कितना भी चाहने पर आप अपने शिर के बाल को झड़ने से और सफेद होने से नहीं रोक पाये? तो तुम पत्नि को क्या रोक पाओगे और पुत्र को क्या रोक पाओगे।

जब अपने शरीर के परिणमन को नहीं रोक पाये क्योंकि वस्तु का परिणमन स्वतंत्र है उसको रोक नहीं पाओगे। वस्तु का परिणमन रोक पाना आपके अधिकार के बाहर की बात है। वस्तु का परिणमन स्वतंत्र है। वह आपके आधीन नहीं है।

**प्रिय आत्मन् !**

आदिनाथ स्वामी मारीचि कुमार को नहीं रोक पाये क्योंकि वस्तु का परिणमन स्वतंत्र है

**होता स्वयं जगत परिणाम।**
**मैं जग का कर्ता क्या काम।**

**प्रिय आत्मन् !**

जितना बाहर में जायेगें उतनी अशांति मिलेगी। यह क्या हो रहा? अरे! तू देखकर विकल्प कर रहा है कि ये क्या हो रहा। ज्ञानी! जो दिख रहा है वह अचेतन है। जो दृश्य तू देख रहा है वह दृश्य अचेतन है और अचेतन को देखकर के चेतन रुष्ट क्यों हो?

यहाँ कुछ बच्चे, शोर कर रहे थे कानों में आवाज आयी और मैं गुस्सा हो गया ये क्या हो रहा डिस्टर्व क्यों? बस ज्ञानी! जरा पूछो तो तूने देखा किसको–

**अचेतन मिदं दृश्यं, मदृश्यं चेतनं ततः।**
**''क्व रुष्यामि, क्व तुष्यामि,'' मध्यास्थोऽहं भवाम्यतः॥**
**इदं दृश्यं अचेतनं।**

यह जो दृश्य है अचेतन है। दिखने वाला अचेतन, अचेतन को देखकर के हे चेतन! तूने आत्मा की शांति भंग की। बोलो उन बच्चों ने शांति भंग कि की तुमने शांति भंग की? ध्यान देना– मेरी शांति कोई दूसरा भंग नहीं कर सकता। जब तक मैं अपने आत्म उपादान को स्वयं ना बिगाड़ूँ तब तक मेरी शांति कोई भंग नहीं कर सकता। जब मैं अपने उपादान में अज्ञान का प्रयोग करता हूँ तो अशांति जन्म लेती है और जब मैं अपने उपादान में ज्ञान का प्रयोग करता हूँ तब शांति मिलती है। जो अशांत है वह अज्ञानी है और जो शांत है वह ज्ञानी है। जिस समय शांति है उस समय ज्ञान है और जिस समय अशांति है उस समय अज्ञान है। निर्णय पक्का ठोस निर्णय करो। महाराज श्री! एक प्रश्न पूंछू महाराज श्री मेरा दु:ख कब दूर होगा। कभी नहीं। आचार्य कहते हैं–

**''तत्त्व ज्ञान हीनानाम् दु:खमेव शाश्वतम्।''**

जब तक तुम तत्त्व ज्ञान का प्रयोग नहीं करोगे तो तुम्हारा कोई दु:ख दूर करने वाला नहीं हैं। तुम कहते दु:ख कब दूर होगा मैं कहता हूँ दु:ख अभी दूर होता है। जिस समय तत्त्व ज्ञान का उपयोग करोगे उसी समय दु:ख दूर हो जायेगा। कपड़े का मैल कब दूर होगा। जिस समय साबुन पानी लगाओगे। तत्काल दूर हो जायेगा। ज्ञान का प्रयोग करो दु:ख दूर होता है। कपड़ा मैला कब होता है? जिस समय मिट्टी पर बैठ जाओ, जिस समय कीचड़ डाल लो जिस समय अज्ञान का उपयोग करोगे, दु:ख चला आयेगा और ज्ञान का साबुन दु:ख के मैल को दूर कर देता है। अशांति के मैल को दूर कर देता है।

**प्रिय आत्मन् !**

जिस समय तत्त्व ज्ञान का उपयोग करोगे दु:ख दूर होगा। अभी विकल्प था मेरा बेटा मेरी बात नहीं मानता। सास को दु:ख था, बहु मेरी बात नहीं मानती, बहू को दु:ख था, सास मुझे ऐसा कहती है। ज्ञानी जीव! जब सास ने तत्त्वज्ञान का उपयोग किया। अरे! जीव है क्षयोपशम ज्ञान है

त्रुटि किसी से भी हो सकती है क्षमा करना मेरा गुण हैं चलो हमारा क्या घट जाता है जो गुस्से में कहा यदि मैं उसे प्रेम से कह देता।

**तुम्हारी शान घट जाता,**
**कि रुतबा घट गया होता।**
**जो गुस्से में कहाँ तुमने,**
**वहीं हँसकर कहा होता॥**

**प्रिय आत्मन् !**

गुस्से में कहने की आवश्यकता ही क्या है? अरे! प्रेम की तो आवश्यकता है प्यार से भी तो कहा जा सकता है। यही तत्त्वज्ञान है। तत्त्वज्ञान का जल अशांति की आग को बुझा देता है। फिर भी हम शांतिनाथ के पास चलते हैं और पूछते हैं भगवान। आपकी यह शांत दशा देखकर के मुझे बड़ी जिज्ञासा हो रही है। आपकी शांत छवि को देखकर के ऐसा लगता है कि आप इतने शांत क्यों हो मैं शांत क्यों नहीं हूँ। आपको देखता हूँ आपकी काया शांत है, आपके वचन शांत, आपका मन शांत सब कुछ शांत-शांत है आपकी आत्मा शांत है बोलो भगवन् कुछ विधि बताओ। मैं आपके द्वारे आया हूँ मुझे भी शांति दो ना।

**प्रिय आत्मन् !**

मेरे भगवन् ने मुझे शांति का मंत्र दिया है। मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि। जब मेरे अंदर प्रश्न जागा कि शांति कहाँ है। तब मैं समंतभद्र स्वामी के पास गया समंतभद्र स्वामी आज से उन्नीस सौ साल पहले एक महान आचार्य हुये हैं जिन्हें भस्मक व्याधि रोग हुआ था। जिनकी स्तुति से चन्द्रप्रभु भगवान प्रकट हुये थे। मैं समंतभद्र स्वामी के पास गया और मैंने कहा हे भगवन्! मैं शांतिनाथ की छवि देखता हूँ तो लगता है ऐसी शांति मुझे मिलना चाहिये। मुझे बताओ शांति का उपाय क्या है? तो मेरे समंतभद्र स्वामी ने मुझे बताया।

**त्वं शुद्ध शक्त्या रुदयस्य काष्ठां।**
**तुला व्यतीतां, जिन शांति रूपाम्।**

हे शांतिनाथ देव! आपकी यह शांति छवि, आपका यह शांत रूप ये बता रहा है कि आपकी शुद्धि की शक्ति पराकाष्ठा को प्राप्त हो चुकी है। आप परम शांति रूप हो चुके हैं अर्थात् आपकी

मन शुद्धि उत्कृष्ट है। इसलिये आप उत्कृष्ट मनः शांति से युक्त हैं। आपकी वचन शुद्धि उत्कृष्ट है इसलिये आप वचन शांति को प्राप्त हैं। आपकी काय शुद्धि अर्थात् अविकारता, निर्विकारता उत्कृष्ट है इसलिये आप काय शांति को प्राप्त है। आपकी आत्मीय भावों की निर्मलता उत्कृष्ट है इसलिये आय आत्म शांति को प्राप्त हैं।

**प्रिय आत्मन् !**

**सबसे बड़ा मंत्र है।**

**''मन शुद्धि से, मन शांति।**

**वचन शुद्धि से, वचन शांति।**

**काय शुद्धि से, काय शांति।**

आज तो हमारा मन शांत नहीं है। कुछ लोग ऐसा बोलते हैं। जब कोई व्यक्ति ऐसा बोले कि मेरा मन नहीं लग रहा, मेरा मन शांत नहीं है जब ऐसा महसूस हो मुझे उस समय में एक ही उत्तर है कि मेरा मन शुद्ध नहीं है। ध्यान देना- यदि मन शुद्ध होगा तो मन नियम से शांत होगा। यह केवली भगवान का वचन हैं यह विभवसागर का वचन नहीं है। यह भगवान महावीर की वाणी है, यह तीर्थंकर की वाणी है, यह समोशरण की देशना है।

चौथे काल में गंध कुटी ऐसे ही लगा करती थी जैसी आपने मंदिर में लगायी है।

**प्रिय आत्मन् !**

जितना-जितना मन शुद्ध होगा उतना-उतना मन शांत होगा। जितने-जितने राग-द्वेष का अभाव होगा उतना-उतना मन शुद्ध होगा और जितना-जिनता मन शुद्ध होगा उतना-उतना मन शांत होगा। अशांति आयी कहाँ से, अशुद्धि से। अशुद्धि आयी कहाँ से, राग-द्वेष से। राग-द्वेष मिटे तो मन शुद्ध हो और मन शुद्ध हो तो मन शांत हो। वस्तु व्यवस्था यह है कि जितने ग्रंथों को हम लोग पढ़ते है जीवन काल में उतने समस्त ग्रन्थों का सार आपको एक प्रवचन में मिल जाता है।

जैसे-जैसे मन शुद्धि होगी वैसे-वैसे मन शांत होगा। जैसे-जैसे वचन शुद्धि होगी, आप प्यार से बोले, हित-मित-प्रिय बोले तो झगड़ा नहीं होगा। वचन शुद्ध होगा तो वचन शांति होगी। काय शुद्धि निर्विकारता, आरोग्यता, जैसे-जैसे बढ़ेगी, वैसे-वैसे काय शांति रहेगी। भावों की जितनी निर्मलता होगी, दर्शन, ज्ञान, चरित्र की जितनी पवित्रता होगी उतनी आत्म शांति बढ़ेगी।

**प्रिय आत्मन् !**

कपड़े को शुद्ध करने के लिए साफ करने के लिये आपने साबुन उठा लिया और अब मन को शुद्ध करने के लिये क्या करें ? यह तो बात सत्य है कि राग-द्वेष कम करें ? लेकिन हो कैसे ? आपने यह तो कह दिया कि मैल हटा दो कपड़े का लेकिन हटाये कैसे मैल ?

**प्रिय आत्मन् !**

आप कहते हैं अपने बच्चे से बेटे खुश रहो, हम तुमको खुश देखना चाहते हैं, बच्चो प्रसन्न रहो। अब तुमने कह दिया बच्चो खुश रहो अब वे खुश किसमें रहें तो वे टी.वी खेल लेते हैं या फिल्म देखने लगते हैं या मोबाइल पर गेम चालू कर लेते हैं। पापा जी ने तो बोल दिया खुश रहो, मम्मी ने तो बोल दिया खुश रहो, प्रसन्न रहो। हम यह कहना चाहते हैं। मैं समंतभद्र स्वामी के पास गया समंतभद्र स्वामी ये लोग बोलते हैं खुश रहा करो, प्रसन्न रहा करो, आप बताओ समंतभद्र स्वामी मैं खुश कैसे रहूँ ? मैं प्रसन्न कैसे रहूँ ?

मैं जो भी बोलूंगा आगम से बोलूंगा, शास्त्र से बोलूंगा, जिनवाणी से बोलूंगा, मय प्रमाण के बोलूंगा। तो प्रश्न है कि आप खुश रहो, कैसे खुश रहूँ, कैसे प्रसन्न रहूँ। मैं यह प्रश्न आप पर नहीं छोड़ता। मैं इस प्रश्न के लिये पूछता हूँ आचार्य समंतभद्र से तो समंतभद्र स्वामी कहते हैं-

**''मनः प्रसाद्यं श्रुतैः।''**

शास्त्रों के द्वारा मन प्रसन्न करना चाहिये। मन को प्रसन्न करने का साधन टी.वी. नहीं है, मन को प्रसन्न करने का साधन कोई खेल नहीं है, मन को प्रसन्न करने का साधन कोई गेम नहीं है, मन को प्रसन्न करने का साधन घड़ी नहीं है। शास्त्रों के अध्ययन से, शास्त्रों के सुनने से शांति मिलती है।

**प्रिय आत्मन् !**

आज का प्रवचन आज के लिये नहीं। एक घंटे का प्रवचन एक घंटे के लिये नहीं हैं। अपितु इस एक घंटे का प्रवचन पूरे जीवन काल के लिये है और आज का प्रवचन भव-भव के लिये है। ध्यान लगाकर के प्रवचन सुनना क्योंकि एक बार का दर्शन जीवन के लिये हो सकता है और एक घंटे का प्रवचन भी जीवन भर के लिये हो सकता है। जिन्दगी चुटकुलों के लिये नहीं है। जिन्दगी कहानी किस्सों के लिये नहीं हैं। जिन्दगी कुछ निर्माण के लिये है। वह निर्माण सामायिक-प्रतिक्रमण से होता है।

## प. पू. 108 आचार्य श्री विभवसागर जी महाराज के वर्षायोग स्थल

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | ललितपुर (उ.प्र.) 1995 | 2. | जबलपुर (म.प्र.) 1996 |
| 3. | भिण्ड (म. प्र.) 1997 | 4. | मुरैना (म.प्र.) 1998 |
| 5. | मड़ावरा (उ.प्र.) 1999 | 6. | हजारीबाग (झारखंड) 2000 |
| 7. | कोतमा (म.प्र.) 2001 | 8. | जबलपुर (म.प्र.) 2002 |
| 9. | नागपुर (महाराष्ट्र) 2003 | 10. | परभणी (महाराष्ट्र) 2004 |
| 11. | श्रवणबेल गोला (कर्नाटक) 2005 | 12. | शिरडशाहपुर (महाराष्ट्र) 2006 |
| 13. | नागपुर (महाराष्ट्र) 2007 | 14. | द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र (म.प्र.) 2008 |
| 15. | जबलपुर (म.प्र.) 2009 | 16. | टीकमगढ़ (म.प्र.) 2010 |
| 17. | गढ़ाकोटा (म.प्र.) 2011 | 18. | जयपुर(राज.) 2012 |

## 87 आचार्य श्री द्वारा सृजित साहित्य

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | अमृत गीता | 1997 | भिण्ड वर्षायोग |
| 2. | गुरु पूजा | 1997 | बड़ागाँव धसान |
| 3. | भक्तामर स्तोत्र (अनुवाद) | 1999 | मड़ावरा (वर्षायोग) |
| 4. | रयणसार (अनुवाद) (अप्रकाशित) | 2000 | अयोध्या एवं बनारस |
| 5. | लघु स्वयंभू स्तोत्र (अनुवाद) | 2000 | हजारी बाग, झारखण्ड |
| 6. | प्रवचन भारती | 2001 | कोतमा (वर्षायोग) |
| 7. | विरागाष्टक (हिन्दी) | 2001 | कोतमा (वर्षायोग) |
| 8. | विरागाष्टक (संस्कृत) | 2001 | कोतमा (वर्षायोग) |
| 9. | मंदिर गीता (कल्याणमंदिर स्तोत्र पर भावानुवाद) | 2002 | डिण्डौरी (ग्रीष्मकाल) |
| 10. | एकीभाव स्तोत्र (अनुवाद) | 2003 | भेड़ाघाट, जबलपुर |
| 11. | विषापहार स्तोत्र (अनुवाद) | 2003 | बहोरीबंद, जबलपुर |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 12. | जिनवर गीता (एकीभाव स्तोत्र का भावानुवाद) | 2003 | नागपुर (वर्षायोग) |
| 13. | वंदन गीता (लघुस्वयंभू स्तोत्र पर भावानुवाद) | 2003 | नागपुर |
| 14. | तीर्थंकर विधान | 2003 | नागपुर |
| 15. | एकीभाव विधान | 2003 | डिण्डौरी (म.प्र.) |
| 16. | धर्म भारती (भाग–1) | 2002 | सागर (ग्रीष्मवाचना) |
| 17. | धर्म भारती (भाग–2) | 2003 | सोलापुर (ग्रीष्मवाचना) |
| 18. | धर्म भारती (भाग–3) | 2006 | सोलापुर (ग्रीष्मवाचना) |
| 19. | धर्म भारती (भाग–4) | 2006 | सोलापुर (ग्रीष्मवाचना) |
| 20. | गोमटेश विधान | 2005 | श्रवणवेलगोला (वर्षायोग) |
| 21. | गोमटेश्वर अर्घावली (अप्रकाशित) | 2005 | मुक्तागिरि सिद्धक्षेत्र |
| 22. | मुक्तागिरि (पूजा अर्घावली) (अप्रकाशित) | 2004 | नागपुर (वर्षायोग) |
| 23. | तीर्थंकर शिक्षण | 2003 | परभणी (वर्षायोग) |
| 24. | सुनहरा अवसर (प्रवचन कृति) | 2004 | परभणी (वर्षायोग) |
| 25. | रात्रि भोजन त्याग (प्रवचन कृति) | 2004 | परभणी (वर्षायोग) |
| 26. | जीवन है पानी की बूंद (प्रवचन कृति) | 2004 | परभणी (वर्षायोग) |
| 27. | घर को स्वर्ग कैसे बनायें? (प्रवचन कृति) | 2004 | परभणी (वर्षायोग) |
| 28. | आनंद यात्रा (रचित भजन) | 2004 | परभणी (वर्षायोग) |
| 29. | सम्मेद शिखर वंदना (अप्रकाशित) | 2007 | कामठी क्षेत्र महाराष्ट्र |
| 30. | निर्ग्रन्थ गुरुपूजा | 2008 | द्रोणगिरी वर्षायोग |
| 31. | तीर्थंकर संस्तुति | 2008 | द्रोणगिरी वर्षायोग |
| 32. | द्रोणगिरी विधान | 2008 | द्रोणगिरी वर्षायोग |
| 33. | पात्रकेशरी स्तोत्र (अनुवाद) (अप्रकाशित) | 2003 | नागपुर |
| 34. | अकलंक स्तोत्र (अनुवाद) | 2005 | श्रवणवेलगोला |
| 35. | जिनवरस्तोत्र | 2009 | छतरपुर शीतकाल |
| 36. | कुलभूषण चरित्र (काव्य) | 2005 | कुंथगिरी यात्रा |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 37. | बारह भावना | 2005 | श्रवणवेलगोला |
| 38. | उपसर्गहर स्तोत्र (अनुवाद) | 2009 | पार्श्वगिरी भगवाँ |
| 39. | गुरुमंत्र | 2007 | नागपुर |
| 40. | कुण्डलपुर विधान | 2009 | जबलपुर |
| 41. | हृदय प्रवेश | 2009 | दमोह |
| 42. | दशलक्षण देशना | 2009 | जबलपुर (वर्षायोग) |
| 43. | अक्षर–अमृत | 2009 | जबलपुर |
| 44. | हृदय परिवर्तन | 2009 | जबलपुर |
| 45. | भक्ति भारती | 2010 | टीकमगढ़ (वर्षायोग) |
| 46. | भक्तिभाषा | 2009 | दमोह |
| 47. | संस्तुति सरिता | 2011 | पटेरियाजी |
| 48. | आलोचना सार | 2010 | टीकमगढ़ वाचना |
| 49. | विश्वशान्ति विधान | 2010 | टीकमगढ़ |
| 50. | विधान–विभव | 2013 | जयपुर |
| 51. | भक्तामर शास्त्र | 2012 | जयपुर |
| 52. | अरहनाथ विधान एवं नवागढ़ क्षेत्रपूजा | 2012 | जयपुर |
| 53. | सामायिक शास्त्र | 2012 | जयपुर |
| 54. | भक्ति शास्त्र | 2013 | निवाई |
| 55. | प्रवचन भारती | 2001 | कोतमा |

## गुरुदेव की सर्वप्रिय रचनाएं

| | | | |
|---|---|---|---|
| समाधि भक्ति | 10 पद | 2005 | श्रवणबेलगोला |
| दर्शन भावना | 4 पद | 2005 | श्रवणबेलगोला |
| जिनवाणी स्तुति | 5 पद | 2009 | जबलपुर |
| जिनवाणी स्तुति | 5 पद | 2010 | टीकमगढ़ |

## आ.श्री जी की प्रेरणा से श्री सम्यग्ज्ञान शिक्षण समिति द्वारा प्रकाशित

### अन्य उपयोगी साहित्य

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| * | वर्द्धमान यशोगान | स्व. श्री कृष्ण पाठक | 2003 | नागपुर |
| * | स्वयंभू स्तोत्र | ले. आचार्य समन्तभद्र | | |
| | | स्व. पं. पन्नालाल सा. | 2006 | नागपुर |
| * | इष्टोपदेश प्रवचन | आचार्य विरागसागर | 2006 | नागपुर |
| * | सल्लेखना से समाधि | आचार्य विरागसागर | 2006 | नागपुर |
| * | सम्यग्दर्शन | आचार्य विरागसागर | 2006 | नागपुर |
| * | आगम चक्खु साहू | आचार्य विरागसागर | 2006 | नागपुर |
| * | प्रमेय रत्नमाला | आचार्य लघु अनंतवीर्य | 2009 | नागपुर |
| * | लब्धिसार | आचार्य नेमिचन्द | 2009 | जबलपुर |
| | (अंग्रेजी, हिन्दी, प्राकृत) | प्रस्तोता–एल.सी. जैन, जबलपुर | | |
| * | षट्खण्डागम ध.पु. 8, 11 | आ. पुष्पदन्त भूतबली | 2010 | टीकमगढ़ |
| | | (जीवराज ग्रन्थमाला, सोलापुर) | | |

## जनोपयोगी साहित्य, सी.डी. आदि

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | कल्याणमंदिर गीता | नंद कुमार जैन | जबलपुर |
| 2. | जिनवर गीता | प्रसन्न श्रीवास्तव | जबलपुर |
| 3. | वंदन गीता | संगीता जैन, शिल्पा जैन | जबलपुर |
| 4. | तेरी छत्रच्छाया | नंदकुमार जैन | जबलपुर |
| 5. | मेरा घर मेरी पाठशाला | अनिल आगरकर परिवार | नागपुर |
| 6. | विभव वन्दना | साधना जैन | जबलपुर |
| 7. | विभवसागर के प्रवचन | सी.डी. एवं कैसेट | |
| 8. | भक्तामर प्रवचन 48 | आ. विभवसागर | जयपुर |

****

खाली

खाली